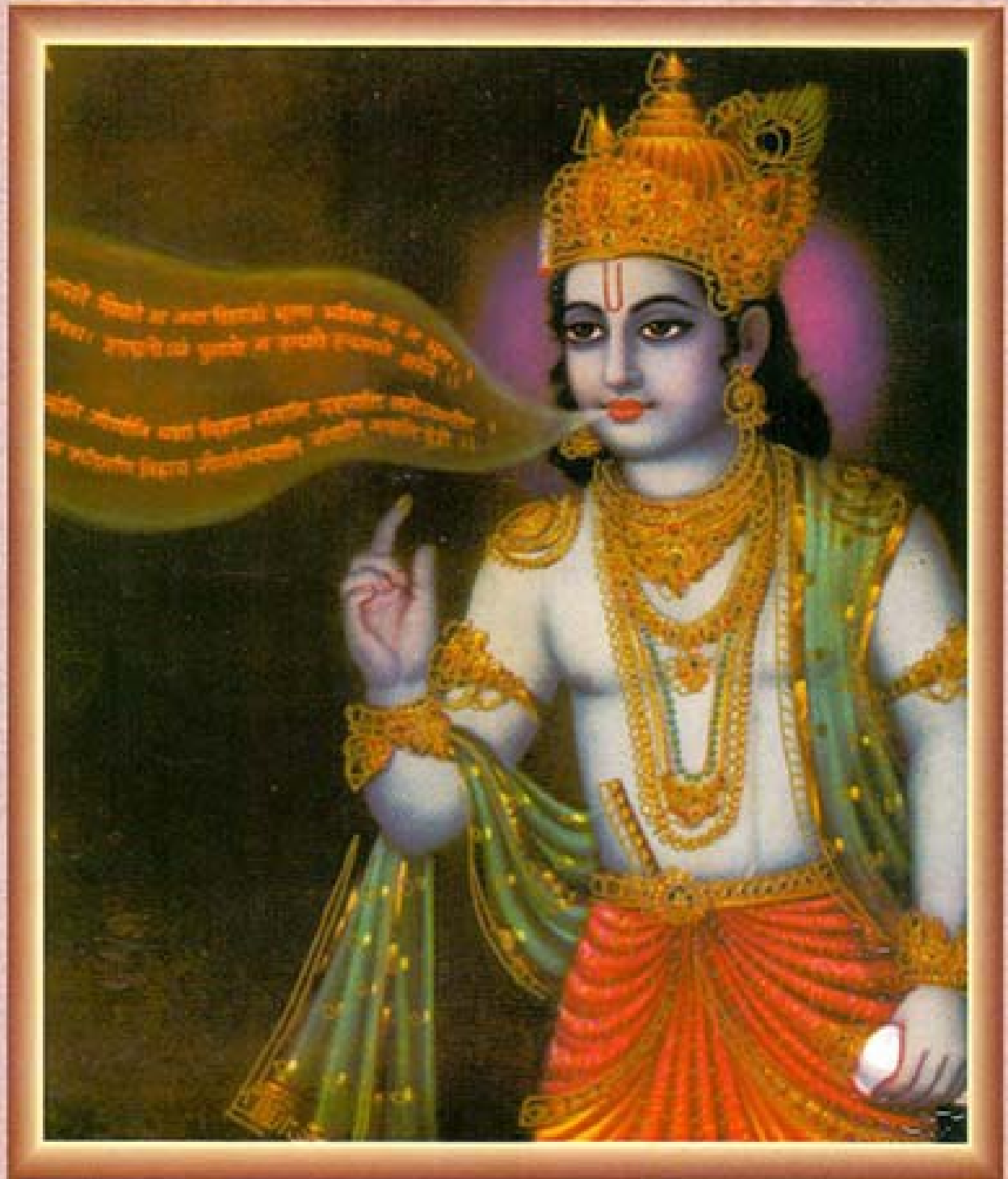


# भागवत की कथाएं



मनुहरि पाठक

# भागवत की कथाएँ



मनुहरि पाठक



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली  
ISO 9001:2008 प्रकाशक

## अनुक्रम

मंगलाशीष

मरुभूमि से गंगातट तक

भागवती प्रभा

मेरा मानस : मेरी भावना

श्रीमद्भागवत का महत्त्व

भागवतपुराण

श्रीमद्भागवत की रचना

अश्वत्थामा का मानमर्दन

श्रीमद्भागवत कथा का प्रारंभ

भगवान् के अवतारों का वर्णन

ब्रह्मा ने सृष्टि रची

कर्दम ऋषि द्वारा सृष्टि की रचना

शिव तथा दक्ष प्रजापति में शत्रुता

ध्रुव का वन गमन

राजा पृथु : विष्णु भगवान् के अंशावतार

पुरंजनोपाख्यान

प्रियव्रत चरित्र

जड़ भरत की कथा

सूर्य की गति एवं रथ का वर्णन

अजामिल की कथा

दक्ष द्वारा सृष्टि-वृद्धि

सम्राट् चित्रकेतु को पार्वती का शाप

जय-विजय की कथा

भक्त प्रह्लाद को नारद का उपदेश

मन्वन्तरोँ का वर्णन

समुद्रमंथन

वामन अवतार

मत्स्यावतार की कथा

च्यवन ऋषि की कथा

नाभाग एवं अंबरीष की कथा

राजा हरिश्चंद्र की कथा

राजा दशरथ और रामावतार

राजा जनक का जन्म तथा अन्य कथाएँ

वसुदेव-देवकी विवाह

कृष्णावतार और कृष्णलीलाएँ

सांदीपनि ऋषि के आश्रम में

उद्धवजी व्रज में

जरासंध का आक्रमण

रुक्मिणी स्वयंवर

[कामदेव का पुनर्जन्म](#)

[स्यमंतक मणि की कथा](#)

[कालिंदी परिणय](#)

[बंदीगृह से कन्याओं की मुक्ति तथा अन्य प्रसंग](#)

[उषा-अनिरुद्ध की प्रणय कथा](#)

[पौंड्रक वध](#)

[राजसूय यज्ञ में कृष्ण](#)

[शाल्व का आक्रमण](#)

[बलरामजी पर ब्रह्महत्या का पाप](#)

[सुदामा की मैत्री तथा अन्य प्रसंग](#)

[अर्जुन का दंभ](#)

[कृष्ण की गृहस्थी और उनका वंश](#)

[दत्तात्रेय के चौबीस गुरु](#)

[यादवों का विनाश](#)

[कृष्ण का महाप्रयाण](#)

[कलियुग के राजवंश](#)

[राजा परीक्षित की परमगति](#)

# मंगलाशीष

**श्री**मद्भागवत परमात्मा श्रीकृष्ण का वाङ्मय स्वरूप है। यह संस्कृत साहित्य का परमोत्कृष्ट रत्न तथा सभी दार्शनिक मतभेदों का समन्वय करनेवाला महान् ग्रंथ है। भगवान् के मधुरतम प्रेम रस का लहराता हुआ सागर है। जिस धर्म में कोई कपट न हो, ऐसा धर्म भागवत का मुख्य विषय है।

रामचरितमानस की भाँति श्रीमद्भागवत भी जन-जन तक पहुँच सके तो समाज प्रेमसूत्र में गुँथकर हिंसा, क्लेश, वैर-विरोध, ईर्ष्या-असूया, कामना-क्रोध जैसे दुर्गुणों से बच सकता है। स्वतंत्र भारत में भवन निर्माण तो हुए, पर मानव निर्माण नहीं हो सका। जनसंख्या तो बढ़ी, किंतु नैतिकता धराशायी होती चली गई। शेषशायी की कथाओं से दूर तरुणाई 'सेजशायी' लौकिक व्यक्तियों से प्रभावित होने लगी है। ऐसे कठिन समय में श्रीमती मनु हरिदत्त पाठक ने श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर जो कथाएँ लिखी हैं वे अत्यंत जनोपयोगी होंगी।

कथा में साधारण समाज का मन भी लगता है। कथा से संस्कार-परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। श्री मनुबेन का परिश्रम सराहनीय है।

अधिकाधिक परिवारों तक यह ग्रंथ पहुँचे और देश पुनः अपने उज्ज्वल अतीत की श्रेष्ठता को वर्तमान की धरा पर स्थापित करने में समर्थ हो, ऐसी मेरी सर्वसमर्थ प्रभु श्रीकृष्ण से प्रार्थना है।

— स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि

(निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य, ज्योतिर्मठ शाखा)  
संस्थापक : भारत माता मंदिर, हरिद्वार

## मरुभूमि से गंगातट तक

मराठी में 'ताई' बड़ी बहन के लिए छोटों की ओर से सम्मान संबोधन है। मैं श्रीमती मनुहरि पाठक के लिए बरसों से यही संबोधन इस्तेमाल कर रहा हूँ। वे मेरी बड़ी बहन से भी बड़ी हैं, इसलिए उनका स्नेह मुझे अकारण मिलता रहता है, जो मेरी पूँजी और मेरा सौभाग्य—दोनों है।

मुझे याद नहीं कि मनुजी और मेरे बीच यह 'ताई-भाई' का रिश्ता कब, कैसे और क्यों बना, परंतु जब से बना है तब से वह एक ऐसी आदर्श महिला पत्रकार के रूप में मेरे सामने रहती हैं जो मैदानी पत्रकारिता के जोखिमों और कठिनाइयों का डटकर मुकाबला करने की सामर्थ्य ही नहीं रखतीं, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी स्वयं को स्थापित करके अपनी विशिष्ट पहचान बनाने का दमखम रखती हैं।

उम्र के छह दशक पार करके सातवें दशक में चल रहीं मनु ताई ने दुर्धर्ष पत्रकारिता की लंबी मरुभूमि की यात्रा तय की है। मरुभूमि राजस्थान से ही उनकी यह संघर्ष यात्रा आरंभ हुई, आज से करीब चालीस बरस पहले। तब किसी महिला का 'पुरुष-क्षेत्र' मानी जानेवाली पत्रकारिता में प्रवेश करना और पैर जमाना, वह भी 'हवेलियों और लंबे घूँघटोंवाले' राजस्थान में, एक बड़ी बात थी। राजस्थान के गौरवशाली प्रकाशन 'राजस्थान पत्रिका' और 'नवज्योति' के अलावा समाचार एजेंसी 'हिंदुस्तान समाचार' के साथ अपना पत्रकारिता का जीवन आरंभ करनेवाली मनु ताई ने राजस्थान की पहली ऐसी महिला पत्रकार होने का गौरव प्राप्त किया जो राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त थी। 'प्रथम' रहने का यह गौरव मनु ताई के साथ लंबे अरसे तक जुड़ा रहा—कभी हरियाणा राज्य के पहले दैनिक पत्र 'हरियाणा पत्रिका' की संस्थापक-संपादक बनने को लेकर, तो कभी संसद् के केंद्रीय कक्ष की मान्यताप्राप्त 'प्रथम' महिला पत्रकार बनने को लेकर।

मनु ताई की लेखनी का विस्तार समय के साथ-साथ बढ़ता गया। एक ओर वे सुप्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के साथ 'नवभारत टाइम्स' जैसे प्रतिष्ठित दैनिक और महिला पत्रिकाओं 'मनोरमा', 'सुधा', 'गुजरात गौरव', 'लोकमत' आदि की नियमित लेखिका के रूप में अपनी पहचान बनाती गई; दूसरी ओर, 'आकाशवाणी' पर संसद् समीक्षा, सामयिकी आदि कार्यक्रमों से जुड़कर उन्होंने ध्वनि माध्यम को भी अभिव्यक्ति के लिए साधन बनाया। यही नहीं, वे 'प्रियदर्शिनी इंदिरा गांधी', 'टिहरी बाँध', 'आज की महिला' आदि वृत्तचित्रों के निर्माण के साथ जुड़कर 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' के क्षेत्र में भी सक्रिय हुईं।

कहानी लेखन, बच्चों के लिए विविध लेखन तथा मराठी-गुजराती के उपन्यासों के अनुवाद करके मनु ताई ने सृजनात्मक-रचनात्मक साहित्य से भी अपना नाता जोड़ा।

अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष १९७५ के दौरान 'आज की महिलाएँ' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में विश्व की जिन बत्तीस महिलाओं पर विशेष लेख प्रकाशित हुए, उनमें मनुहरि पाठक भी शामिल हैं। उस वर्ष उनके कर्तृत्व पर सुप्रसिद्ध कवि-चिंतक पं. भवानीप्रसाद मिश्र ने उन्हें विशेष रूप से सम्मानित भी किया था।

कर्म के आकाश में जीवट के साथ संघर्षों के बादलों के बीच दीप्त नक्षत्र जैसी मनु ताई ने पारिवारिक समरसता का भी अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्रीयुत हरिदत्तजी पाठक के साथ उन्होंने मरुभूमि से जो पत्रकारिता की यात्रा आरंभ की थी, वह आज गंगातट तक आ पहुँची है। गंगा-दर्शन करते हुए महर्षि व्यास के मंदिर को निहारते हुए मनु ताई ने 'श्रीमद्भागवत' को लोकरुचि के अनुरूप प्रस्तुत करने का जो संकल्प पूरा किया है वह उनकी आध्यात्मिक आस्था का और पत्रकार-सुलभ सक्रियता का मिला-जुला प्रमाण है। उम्मीद है, आस्तिक

पाठकों के लिए मनु ताई की इस 'भागवत गंगा' में स्नान का सुख भी हर की पौड़ी के कुंभ-स्नान से कम पुण्यदायी नहीं होगा।

प्राध्यापक-पत्रकार  
हरिद्वार

—कमलकांत बुधकर



## भागवती प्रभा

हिंदी की सुप्रसिद्ध लेखिका, मनस्विनी पत्रकार तथा यशस्वी उद्बोधिका श्रीमती मनुहरि पाठक ने श्रीमद्भागवत की कथाओं को सरल, सुबोध, प्रांजल, रसपूर्ण तथा हृदयग्राही हिंदी में प्रस्तुत कर श्लाघनीय कार्य किया है। इसके लिए श्रीमती पाठक साधुवाद की अधिकारिणी हैं।

श्रीमद्भागवत तथा श्रीकृष्ण एक-दूसरे के पर्याय हैं। माता देवकी ने भगवान् के प्रादुर्भाव पर उन्हें 'सत्त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः' कहकर 'अध्यात्मदीपक' की संज्ञा दी, तो सूतजी ने भागवत को 'कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञान प्रदीपः पुरा' कहकर 'ज्ञानप्रदीप' बताया। दोनों के अवतरण का एक ही उद्देश्य था—प्राणियों को अज्ञान के निविड़ अंधकार से निकालकर मुक्तिप्रभा से आलोकित करना। भारतीय संस्कृति में तमस् चीरकर प्रकाश की ओर बढ़ने की यात्रा का सदैव स्वागत हुआ है और यही कारण है कि जहाँ-जहाँ अज्ञान और जड़ता की कारा में बुद्धि रूपी देवकी कैद है, वहाँ-वहाँ सच्चिदानंद श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की अपेक्षा रहती है। हृदयांधकार में सोते हुए भगवान् को जगाने के लिए श्रीमद्भागवती प्रभा के अवतरण की प्रतीक्षा रहती है तथा वसुदेव रूपी भक्तों के शुद्ध अंतःकरण में माधुर्य मूर्ति नटनागर के स्फुरण की प्रतीक्षा रहती है। देवकी को ईश्वरग्राहिणी बुद्धि तथा वसुदेव को शुद्ध अंतःकरण समझिए—

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितम्।

श्रीमद्भागवत के कथा-श्रवण से भगवत्तत्त्व क्रमशः मन-बुद्धि में अवतरित होता है, फिर हमारे आचरण और कर्म में प्रतिबिंबित होता है और फिर संपूर्ण सृष्टि में भगवद्रूपता का अनुभव कराकर ज्ञान-भक्ति समुच्चय से मुक्ति का आस्वाद कराता है। साधक तत्त्वचिंतन और भावसाधन द्वारा परमगति प्राप्त कर लेता है, यह भागवत का दृष्टिकोण है। वसुदेव और देवकी को भगवान् ने अपने श्रीमुख से इसी सिद्धांत का उपदेश किया—

युवां मां पुत्र भावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।

चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिपराम् ॥

श्रीमद्भागवत व्यास की समाधिसिद्ध वाणी है। वैष्णवाचार्यों ने उसे चतुर्थ प्रस्थान माना है। उसमें वैदिक-आगमिक दर्शनों की विविध सरणियों का सफल विनियोग हुआ है। उपासना-प्रणालियों में भी वेद-उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रंथों के संदर्भों के अतिरिक्त पांचरागमों की मान्यताएँ परिलक्षित होती हैं। यही कारण है कि भागवत को विद्वानों की परीक्षा की कसौटी माना गया है। प्रसिद्ध उक्ति है—'विद्यावतां भागवते परीक्षा।' यह तो है भागवत रूपी नारिकेल का बाह्य पक्ष, पर इसका अंतरंग पक्ष बड़ा रसपेशल है। दशम् स्कंध की लीलाएँ लय कर देनेवाली हैं। इन लीलाओं का प्रयोजन विधाता के कर्तव्य की तरह उद्देश्यमूलक नहीं होता, उनमें विधि-निषेध की मर्यादा नहीं होती, ग्राह्य-अग्राह्य का भेद नहीं होता। श्रीवल्लभाचार्य ने लीला का प्रयोजन लीला को ही बताया है। लीला सिद्धरस है, मूर्च्छित हृदय की संजीवनी है तथा तत्त्वचिंतकों के 'तत् पद' (ब्रह्म) 'मे त्वम्' (जीव) का लय करा देनेवाली है। स्थूल शब्दों में तल्लीनता ही लीला का फल है। यह तल्लीनता वृंदावन के प्राणीमात्र को सुलभ है। गोपियाँ तो 'कृष्णं तदर्थं विनिवर्तितं सर्वकामाः' हैं हीं, अरे, वहाँ की तो हरिणियाँ भी अपना पति 'कृष्णसार' को ही मानकर (कृष्ण ही जीवन के सारतत्त्व हैं अथवा कृष्णसार नामक यज्ञीय मृग) श्रीकृष्ण से एक क्षण वियुक्त नहीं होना चाहतीं। 'कृष्णसार' शब्द बड़ा चमत्कारी है यहाँ—

'आकर्ष्य वणुरणितं सहकृष्णसाराः'

भागवत कठोपनिषद् की तरह मनुष्य को जीवन में चयन करने तथा फिर वरण करने की कला सिखाती है। वहाँ श्रेय और प्रेय, भौतिक सुख और अध्यात्म तथा सार-असार में से एक को चुनने की कला बताई गई है, भागवतकार का कहना है कि संसार को छोड़ा नहीं जा सकता, पर उसे साधना द्वारा रहने योग्य बनाया जा सकता है। 'पूतनामोक्ष' की कथा हमारे सामने यही आदर्श रखती है। इस कुमाता का रूप धारण करनेवाली को भी भगवान् ने वही गति दी जो दूध पिलानेवाली स्नेहमयी माता को। अतः भगवान् से बढ़कर दयालु कौन है? शुकदेवजी तो इस घटना पर लट्टू हो गए। पर भगवान् इस लीला द्वारा प्राणियों को जगत् में रहने की कला सिखाते हैं। पूतना है तो राक्षसी, पर अपूर्व सुंदरी का रूप बनाकर आई है। वह जैसी है, वैसी नहीं दीखती। उसके बाह्य रूप पर आकृष्ट होकर सारी गोपियाँ सबकुछ भूल गई हैं। ऐसे ही यह प्रकृति रूपी पूतना अपने नश्वर रूप को छिपाए, जीवात्माओं को आकृष्ट करने के लिए सुंदर-से-सुंदर रूप में प्रकट होती है। इसमें द्वैत है। पाप-पुण्य, जीवन-मरण, सुख-दुःख, दिन-रात, विष-अमृत, समानता-असमानता तथा ज्ञान-अज्ञान। यह जीवात्मा को गोद में उठाए अपना विषैला स्तन पिलाने के लिए तैयार रहती है और जीवात्मा आँखें मूँदे हुए भोगों का विष पीता रहता है। वह इस विद्या-अविद्या माया प्रकृति के वास्तविक रूप को पहचानता ही नहीं। भगवान् पूतना को देखकर आँखें मूँद लेते हैं — 'चराचरात्माऽऽस निमीलिते क्षणः'—अज्ञानी जीव की दशा का संकेत करने के लिए। उनसे पूर्व इस पूतना ने बहुत से बालकों को मार डाला। वह बालघातिनी है। इस प्रकृति रूपी पूतना ने भी पता नहीं कितने बाल-बुद्धि जड़ जीवों को ग्रास बना लिया। भगवान् का संकेत है कि इस द्विधात्मक जगत् में कैसे जीना चाहिए। बोले—'जहाँ विष और दूध हो, वहाँ चयन-बुद्धि से काम लो। दूध पी लो तथा विष छोड़ दो। विद्या या ज्ञान रूपी दूध ले लो तथा अज्ञान या अविद्या रूपी विष को छोड़ दो।' भगवान् ने यही किया। पूतना का दूध पी लिया तथा विष छोड़ दिया। यह हुआ चयन के बाद वरण। पूतना को भगवान् ने नहीं मारा। अरे, वह तो स्वयं अपने विष से ही मर गई। यदि प्रकृति से श्रेय-रूपी दूध के वरण करने की कला आ गई तो यह अविद्या अपने प्रेय रूपी विष से स्वयं शांत हो जाएगी।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि भागवती कथाओं को अपने जीवन में इसी व्यावहारिक और सैद्धांतिक भूमि पर पाठक उतारने की चेष्टा करेंगे तो उन्हें कथा का सच्चा रस मिल सकेगा। इसी रस को भावुक कथारसिक निरंतर पीते रहते हैं, वे कभी अघाते नहीं। श्री शुकदेव ने स्वयं कहा है—

'पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुविभावुकाः।'

गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में—

'राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेस जाना तिन नाहीं॥'

मनुहरिजी इस रस-विशेष से भलीभाँति परिचित हैं। यह रस उन्हें माता की गोद में शैशव में ही मिल चुका है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मनुहरिजी की यह भागवती प्रभा भक्तों के कंठ का हार बनेगी। मैं एक बार फिर उनके इस रचनात्मक यज्ञ का स्वागत करता हूँ तथा श्रीहरि से उनके सर्वविध कल्याण की कामना करता हूँ।

—आचार्य (डॉ.) विष्णुदत्त राकेश

डी.लिट्.

आचार्य हिंदी विभाग एवं पूर्व मानविकी संकायाध्यक्ष,

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

## मेरा मानस : मेरी भावना

‘श्रीमद्भागवत’ के पारायण के संस्कार बाल्यकाल में प्राप्त हुए। रोज रात्रि में भागवत का पाठ माता-पिता को सुनाना पड़ता था। माता का देहांत हो गया। वर्ष भर में विवाह हुआ तब पिता ने माँ की सीख के रूप में श्रीमद्भागवत का वही गुजराती संस्करण बिदाई में दे दिया। सासूमाँ को बहुत प्रसन्नता हुई। वे यदा-कदा भागवत सुनने की इच्छा करती थीं। कई बार पूरा पारायण, विशेष रूप से दशम स्कंध सुनती थीं। गृहस्थ जीवन के सुख-दुःख की शृंखला में मेरे मन में समाई भागवतकथा ही मेरे ऊपर आँचल की शीतलता देती रही।

१९८९ में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के साथ कनाडा तथा अमेरिका यात्रा के दौरान वाशिंगटन में ‘गर्भवती महिला सेमिनार’ में मुझे भारतीय महिला की स्थिति पर पक्ष प्रस्तुत करने हेतु भेजा गया। संस्कार ही मेरे काम आए। मैंने उन्हें बताया कि भारत में सम्मिलित कुटुंब-प्रणाली है। वहाँ पर गर्भवती स्त्री का घर एक सेमिनार बन जाता है। रिश्ते की सभी संतानवती स्त्रियाँ नई माँ को अनुभवों एवं संस्कारों से परिचित कराती रहती हैं। परिवार की बुजुर्ग महिलाएँ रात्रि में शयन से पूर्व पौराणिक कथाएँ, ‘रामायण’, शूरवीरों की गाथाएँ आदि गर्भवती स्त्री से पढ़वाती हैं तथा इन पर चर्चा होती रहती है।

हमारी मान्यता है कि गर्भकाल में श्रवण चर्चा तथा आचरण के संस्कार ही गर्भस्थ शिशु को मिलते हैं। अभिमन्यु का उदाहरण बताते हुए मैंने संस्कारों का प्रमाण सन्मुख रखा। उसी समय मेरे मन में विचार आया कि हम घर-घर में ‘रामचरितमानस’ पढ़ते हैं। जन-जन को ‘रामायण’ के दोहे व चौपाइयाँ याद हैं। लेकिन श्रीमद्भागवत के पारायण को पर्व के रूप में मनाते हैं, जबकि श्रीमद्भागवत की कथाओं तथा कृष्ण-चरित्र से भारतीय समाज अवगत है।

मैंने मन-ही-मन निश्चय किया कि अठारह हजार श्लोकों की मीमांसा छोटी-छोटी कथाओं के रूप में लिखनी चाहिए।

परिवार के सभी सदस्यों, मित्रों, पत्रकार बंधुओं का सहयोग एवं प्रोत्साहन मुझे पूर्ण रूप से मिला। हरिद्वार में गंगा-दर्शन में रहकर व्यासजी के आश्रम के सन्मुख माँ गंगा के सान्निध्य में मैं अपने निश्चय को पूर्ण कर रही हूँ।

पूज्य स्वामी श्री सत्यमित्रानंद गिरि का आशीर्वाद प्राप्त होते ही मुझे अनुभूति हुई कि निस्स्वार्थ भाव से किया गया कार्य ही पूजा है। मेरी पूजा माँ गंगा को समर्पित है।

— मनुहरि पाठक

## श्रीमद्भागवत का महत्त्व

प्राचीन काल में तुंगभद्रा नदी के किनारे आत्मदेव नाम के एक धनी, कर्मकांडी ब्राह्मण रहते थे। उनकी सुंदर एवं मुखर पत्नी का नाम था धुंधुली। ब्राह्मण देवता को सब सुख था। गाँववाले उनका सम्मान करते थे। पत्नी धुंधुली मुखर होती हुई भी पतिदेव की सेवा करती थी। घर में धन-धान्य था, फिर भी आत्मदेव भिक्षावृत्ति से ही जीवन निर्वाह करते थे। उनको बस एक दुःख था—उनके कोई संतान नहीं थी। सब सुखों के उपभोग के बाद भी आत्मदेव पुत्र नहीं होने से मन में व्याकुल रहते थे। कभी-कभी मन-ही-मन विचार करते—‘मेरा सूना आँगन क्या हमेशा ही इसी तरह सूना रहेगा? यहाँ बच्चे के टुमक-टुमककर चलने का, गिरने का, मिट्टी खाने का, छोटे-छोटे पैरों से भागते समय पैजनियाँ की मीठी आवाज सुनने का सुख मेरे भाग्य में नहीं लिखा है।’ आत्मदेव दुःखी मन से एक दिन घर से निकले और चलते-चलते वन में जा पहुँचे। भूख-प्यास और थकान से वे बेहाल हो रहे थे। एक जलाशय के पास आत्मदेव गिर गए और रोने लगे।

इसी समय उधर से एक तेजस्वी संन्यासी निकल रहे थे। उन्होंने देखा कि कोई दुःखी मनुष्य जमीन पर पड़ा विलाप कर रहा है, तो आत्मदेव के पास चले आए। बोले, “आपके गले में जनेऊ तथा मस्तक पर त्रिपुंड देखकर मुझे लगता है कि आप ब्राह्मण हैं। हे पंडित, आप विलाप क्यों कर रहे हैं?”

आत्मदेव ने रोते-रोते ही संन्यासी को नमन किया। कहा, “संन्यासी महाराज, मैं बहुत दुःखी हूँ। पूर्वजन्मों के पापों के कारण मेरे कोई संतान नहीं है, पुत्रहीन हूँ। मैं इतना पापी हूँ कि मेरे घर की गैया को भी बछड़ा नहीं होता। मेरे यहाँ के वृक्षों तक पर फूल-फल नहीं लगते। इसीलिए मैं अभागा जंगल में चला आया हूँ। संन्यासी महाराज, आप मेरे पापों के नाश का उपाय बताएँ तथा मुझे संतान का आशीर्वाद दें। मेरा पुत्रहीन जीवन व्यर्थ है।” यह कहते हुए दुःखी आत्मदेव ने संन्यासी के पैर पकड़ लिये।

संन्यासी ने आत्मदेव की ओर देखा और कुछ विचारकर कहा, “ब्राह्मण, तुम्हारे भाग्य में संतान है ही नहीं। तुम संसार से निरासक्त होकर ईश्वर भक्ति में मन लगाओ।”

आत्मदेव ने दुःख भरी वाणी में कहा, “सुख का भोग किए बिना तो विरक्ति एवं संन्यास भी व्यर्थ-से हैं, महाराज!”

संन्यासी को ब्राह्मण पर दया आई। उन्होंने अपने तेजबल से हाथ में एक फल प्राप्त किया और आत्मदेव की ओर देखते हुए कहा, “पंडित, यह फल लो। घर जाकर इसे अपनी पत्नी को खिला देना। अपनी धर्मपत्नी से कहना कि वह अच्छे विचारों के साथ नियम से अपने तन-मन को शुद्ध एवं पवित्र रखे। आपके यहाँ निश्चय ही संतान होगी।”

यह कहकर संन्यासी महाराज ‘ॐ’ कहते हुए वहाँ से रवाना हो गए।

आत्मदेव भी प्रसन्न होकर घर की ओर चल दिए।

घर पहुँचकर आत्मदेव ने अपनी सुंदर पत्नी धुंधुली को वह फल दिया और कहा, “एक महात्मा ने प्रसाद दिया है। तुम इसे ग्रहण करो। महात्मा के आशीर्वाद से तुम अवश्य ही पुत्र को जन्म दोगी।”

धुंधुली ने फल लेकर रख लिया। आत्मदेव भिक्षा हेतु निकल गए।

धुंधुली विचार करने लगी कि यह फल खाने से यदि मैं सचमुच गर्भवती हो गई तो मेरा यह सुंदर शरीर बेढंगा दिखेगा। प्रसव-वेदना भी मेरे जैसी कोमल सुंदरी नहीं सह सकेगी। फिर बच्चे का मल-मूत्र साफ करना और दिन भर

उसकी सार-सँभाल में लगे रहना होगा। मेरे यौवन के सुख के दिन व्यर्थ जाएँगे। मुझे संतान उत्पत्ति के लिए ये कष्ट नहीं सहने हैं।

धुंधुली की एक बहन थी। संयोग से वह उसी दिन उसके घर आई। धुंधुली ने उसे महात्मा के फल की कथा सुनाई, साथ ही अपने मन की बात भी कही।

धुंधुली की बहन ने कहा, “मुझे गर्भ है। मुझे संतान होगी तो मैं तुम्हें दे दूँगी। उतने समय तक तुम झूठा स्वाँग करती रहो कि तुम गर्भवती हो गई हो। तुम मेरे पति को धन दे देना। मेरा पति धन पाकर प्रसन्नता के साथ अपनी संतान तुमको दे देगा।” धुंधुली सुनकर खिल उठी। जाते-जाते उसकी बहन बोली, “महात्मा के फल की परीक्षा भी होनी चाहिए। बहन, तुम यह फल अपनी बाँझ गौ को खिला दो।”

धुंधुली ने फल गौ को खिला दिया और कुछ समय बाद स्वयं गर्भवती स्त्री की तरह रहने लगी।

आत्मदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके घर संतान होगी। एक दिन वह समय भी आ गया। ब्राह्मण के यहाँ पुत्र-प्राप्ति की खुशी में उत्सव मनाया गया। आत्मदेव ने पुत्ररत्न की प्राप्ति को महात्मा का आशीर्वाद माना और खूब दान-दक्षिणा दी। उसी अवसर पर एक चमत्कार हुआ—गौमाता ने भी बालक को जन्म दिया। गाय के गर्भ से जनमे मानव रूपी बालक को देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। उस बालक के कान भर गौ के समान थे। आत्मदेव ने दोनों बच्चों का नामकरण संस्कार किया। धुंधुली के पुत्र का नाम उन्होंने ‘धुंधुकारी’ रखा तथा गौमाता के मानव देहवाले पुत्र का नाम ‘गोकर्ण’ रखा।

धुंधुली ने बहाना बनाया कि नवजात शिशु के लिए उसे दूध नहीं उतर रहा है। फिर पति से आग्रह किया कि उसकी बहन के यहाँ भी पुत्र हुआ था, लेकिन उसकी मृत्यु हो गई। धुंधुकारी को दूध पिलाने के लिए उसे ही क्यों न बुला लें! आत्मदेव ने पुत्र वात्सल्य में पत्नी की हर बात मान ली। बालक को दूध पिलाने के लिए उन्होंने अपनी साली को बुला लिया, जो वास्तव में धुंधुकारी की माँ ही थी।

दोनों बालक साथ-साथ बड़े होने लगे। गोकर्ण तो पंडित के-से कर्म करता रहा, जबकि धुंधुकारी बड़ा दुष्ट निकला। उसमें ब्राह्मण-सुलभ आचार-विचार एवं ज्ञान का कोई संस्कार नहीं था। वह बुरी आदतों में फँस गया—चोरी करना, घरों में आग लगाना, छोटे बच्चों को उठाकर कुएँ में फेंक देना, हर समय अपने पास शस्त्र रखना, चांडालों से स्नेह रखना, कुत्तों को साथ लेकर घूमना—यही उसके काम थे। वह भयंकर पापी बन गया।

आत्मदेव पुत्र की हरकतों से बहुत परेशान थे। एक दिन पुत्र माता-पिता को भी मार-पीटकर संपत्ति छीनने लगा तो वे जोर-जोर से विलाप करने लगे—“इससे तो हम निःसंतान ही भले थे!”

उसी समय वहाँ गोकर्ण आ गए। उन्होंने पिता को विलाप करते देखा तो कहा, “हे देवता! कौन पुत्र...कैसा धन? आप क्यों मोह में पड़े हैं! राजा को भी सुख नहीं है। जो मनुष्य विरक्त भाव से मोह-माया को छोड़कर भगवान् की भक्ति करता है और दीन-दुःखियों की सेवा करता है, उसे ही सच्चा सुख मिलता है। अतः आप मोह का त्याग करो और वन में जाकर भगवान् की भक्ति करो।”

आत्मदेव पुत्र गोकर्ण की वाणी से प्रभावित हुए और सबकुछ छोड़कर वन को चल दिए।

पिता के जाते ही धुंधुकारी ने माता को बहुत पीटा। बोला, “धन कहाँ छिपा रखा है? मुझे सब दे दो, वरना जलती लकड़ी से तेरी खबर लूँगा!” धुंधुली ने इस धमकी के डर से कुएँ में छलाँग लगा दी। माता मर गई तो गोकर्ण तीर्थयात्रा के लिए चले गए।

धुंधुकारी अब चार-पाँच वेश्याओं को लेकर उसी घर में रहने लगा। वेश्याओं को धन-दौलत से प्रसन्न रखने के लिए वह अब और बड़े-बड़े अपराध करने लगा—लूटमार, चोरी, हिंसा रोज की आदत बन गई। घर में चोरी का

बहुत सारा माल देखकर चारों वेश्याओं ने धुंधुकारी को ही मार-पीटकर सारा धन छीन लिया। चारों ने मिलकर एक रात धुंधुकारी को बाँधकर खूब पिटाई की और गले में रस्सी डालकर फाँसी लगा दी। लेकिन वह तब भी नहीं मरा तो चारों ने जलती लकड़ी से पीट-पीटकर अंत में उसको मार ही डाला। फिर उसे जमीन में गाड़कर सारा धन समेटा और भाग गई। इस घटना का किसीको पता नहीं चला।

अकाल मृत्यु होने से दुराचारी धुंधुकारी प्रेत बन गया। अपे कुकर्मों के कारण वह विकल भटकता रहता। उसको कहीं शांति नहीं मिली।

गोकर्ण कुछ दिन बाद लौट आए। रात में वह ब्राह्मण देवता के उसी मकान के आँगन में जाकर सो गए। धुंधुकारी प्रेत ने अपने भाई को देखा तो नाना प्रकार के भयंकर रूप धारण करके, भयावनी आवाजें निकालकर वहाँ उत्पात करने लगा। वह कभी भैंसा तो कभी सुअर के विकट डरावने रूप में दिखाई देने लगा। गोकर्ण ने सोचा—कोई दुर्गति को प्राप्त जीव है। उन्होंने धैर्यपूर्वक पूछा, “तू कौन है? तेरी ऐसी दशा क्यों हुई? तू भूत-प्रेत, पिशाच या राक्षस—क्या है?”

तब धुंधुकारी रोने लगा। वाणी न होने के कारण वह संकेत से समझाने लगा। गोकर्ण ने हाथ में गंगाजल लेकर मंत्र पढ़ते हुए उस प्रेतात्मा पर छिड़क दिया। उसके पापों का कुछ शमन हुआ। वह बोला, “मैं तुम्हारा भाई हूँ! अपने दुर्गुणों से मैंने स्वयं अपना मनुष्य जीवन नष्ट कर लिया। भाई, मैंने बहुत पाप किए हैं। अब मुझे इनसे मुक्ति दिला दो!”

गोकर्ण ने कहा, “मैंने तो गयाजी में तुम्हारा श्राद्ध किया, फिर भी तुमको मुक्ति नहीं मिली?”

प्रेत ने कहा, “सैकड़ों बार गया-श्राद्ध करने से भी मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि मैंने घोर पाप किए हैं।” यह कहकर प्रेत रोने लगा और बार-बार कहने लगा, “कोई उपाय करो व मुझे मुक्ति का मार्ग दिखाओ!”

गोकर्ण ने कहा, “मैं अवश्य ही तुम्हारी मुक्ति का उपाय करूँगा।”

गोकर्ण ने सवेरे नगरवासियों को रात की घटना सुनाई। विद्वानों-पंडितों ने अनेक शास्त्रों को देखा; लेकिन कोई उपाय नहीं सूझा। गोकर्ण ने सोचा—‘सूर्य भगवान् सारे विश्व की परिक्रमा करते रहते हैं, इसका मार्ग वही बता सकेंगे।’

गोकर्ण ने अपने तपोबल से सूर्य भगवान् के रथ को रोक दिया और नमस्कार करके भाई की मुक्ति का उपाय पूछा। सूर्य भगवान् ने कहा, “श्रीमद्भागवत से महान् पापी की भी मुक्ति हो सकती है। श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण करो।” दूर से ही यह कहकर सूर्य भगवान् अपनी परिक्रमा पर चल पड़े। सूर्य भगवान् की वाणी सभी ने सुनी। पंडितों ने गोकर्ण से ही कहा, “आप ही श्रीमद्भागवत की कथा सुनाएँ।” गोकर्ण तैयार हो गए।

कथा सुनने के लिए आसपास के गाँवों एवं नगरों से हजारों लोग आए—लूले, लँगड़े व अपंग भी आए। गोकर्ण कथा कहने के लिए व्यास पीठासन पर बैठे। उसी समय धुंधुकारी का प्रेत भी वहाँ आया और इधर-उधर स्थान ढूँढ़ने लगा। वहीं लगे एक सात गाँठवाले बाँस पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह उसी बाँस के छिद्र में घुसकर बैठ गया।

गोकर्ण ने एक वैष्णव ब्राह्मण को प्रमुख श्रोता बनाया और प्रथम स्कंध से ‘भागवतकथा’ सुनानी प्रारंभ कर दी।

सायंकाल में जब पहले दिन की कथा को विश्राम दिया गया तो एक बड़ी विचित्र बात हुई—जिस बाँस में प्रेत बैठा था, उसकी एक गाँठ तड़ाक की आवाज के साथ फट पड़ी।

इसी प्रकार सातों दिन एक-एक करके सात गाँठें फटीं। बारह स्कंध पूर्ण हुए। तब धुंधुकारी प्रेतयोनि से मुक्त हो गया। सुंदर वस्त्र-अलंकारों से सुशोभित धुंधुकारी गोकर्ण के सम्मुख प्रकट हुआ उसने नत-मस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा, “आपने मुझे प्रेतयोनि से मुक्ति दिला दी। हे भाई, आप धन्य हैं!” धुंधुकारी को देवलोक

प्राप्त हुआ।

गोकर्ण ने उसके बाद भागवत-सप्ताह का अनेक स्थानों पर पारायण किया। अंत में भगवान् स्वयं विमान लेकर आए और उन्हें सशरीर गोलोक धाम में ले गए। भागवत सुननेवालों को भी मोक्ष की प्राप्ति हुई।



# भागवतपुराण

नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनकादि ऋषियों ने भगवत् प्राप्ति की इच्छा से एक महान् यज्ञ किया। एक दिन उन्होंने सूतजी का पूजन किया और उनसे अनुरोध किया, “आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रों का अध्ययन एवं व्याख्या की है। आप हमें यह बतलाइए कि उन शास्त्रों, पुराणों तथा गुरुजनों के उपदेशों में से कलियुग में जीवों के कल्याण का सहज साधन क्या है? शास्त्र तो बहुत हैं। अनेक प्रकार के कर्मों का उनमें वर्णन है। वे इतने बड़े हैं कि उनका एक अंश भी सुन पाना कठिन है। आप अपनी बुद्धि से उनका सार निकालकर हमें सुनाइए, जिससे हमारे अंतःकरण की शुद्धि हो।”

सूतजी ने कहा, “शुकदेवजी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था, तभी वे संन्यास लेने के उद्देश्य से अकेले घर से निकल गए। तब उनके परमज्ञानी पिता व्यासजी ने पुत्र-वात्सल्य में पुकारा—‘बेटा! बेटा!’ तब शुकदेवजी की ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया था।” शुकदेवजी ने अपने-आपको जड़-चेतन प्राणियों में लीन कर दिया था। ऐसे सर्वात्मा शुकदेवजी को प्रणाम करके सूतजी ने कहा, “मैं श्रीमद्भागवत की कथा सुनाता हूँ। यह कथा विश्व कल्याण का सबसे सरल साधन है। यह श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति जगानेवाला ग्रंथ है। इसके पठन-पाठन से ज्ञान व वैराग्य स्वतः आते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में जिस मार्ग का प्रतिपादन किया है, वही मुक्ति का विशुद्ध मार्ग है। भगवान् की कथा श्रवण करने मात्र से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य का कल्याण सत्त्व गुणवाले भगवान् विष्णु से ही होता है। महात्मा लोग श्रीविष्णु की ही आराधना करते आए हैं। वे लोग कभी किसीकी निंदा नहीं करते। किसी में दोष नहीं देखते। वेदों का तात्पर्य श्रीकृष्ण में ही है। यज्ञों के उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। तपस्या श्रीकृष्ण के लिए ही की जाती है। कृष्ण के लिए ही धर्म का अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्रीकृष्ण में ही समा जाती हैं। तमोगुणी एवं रजोगुणी व्यक्ति भैरव तथा भूत-प्रेतादि की उपासना करते हैं। धन, ऐश्वर्य, सम्मान इत्यादि की कामनावाले रजोगुणी एवं तमोगुणी पुरुष ही होते हैं।

मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य यह नहीं है कि वह रात-दिन धन-ऐश्वर्य की कामना में लिप्त रहे। जीवन की सार्थकता इसमें है कि भगवत् तत्त्व का जिज्ञासु रहकर उसकी खोज में लीन रहे। मनुष्य को अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमों के अनुकूल रहकर धर्म का उपार्जन करना चाहिए।

श्रीमद्भागवत वेदों के समान पवित्र, भगवान् के चरित्र से परिपूर्ण इस पुराण की रचना भगवान् वेदव्यास ने की है। व्यासजी ने जन-कल्याण हेतु अपने आत्मज्ञानी पुत्र शुकदेवजी को इसे ग्रहण कराया। शुकदेवजी ने यह पुराण राजा परीक्षित को सुनाया था।

महायोगी, समदर्शी और संसार के मायाजाल से दूर रहनेवाले शुकदेवजी ने यह भागवतकथा किस युग में, कहाँ तथा किस कारण सुनाई? और वेदव्यासजी ने इस परमहंस संहिता की रचना कैसे की? महर्षि शौनक की इन शंकाओं का समाधान करते हुए सूतजी ने बताया—

श्री वेदव्यास के पुत्र शुकदेव महायोगी थे—सांसारिक मायाजाल से दूर रहनेवाले। अपने पिता से भी अधिक तेजस्वी एवं योगनिष्ठ शुकदेव संन्यास हेतु घर से निकल पड़े। व्यासजी बेटा-बेटा कहते उनके पीछे-पीछे चल पड़े। उस समय सरोवर में कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। शुकदेवजी को नग्न स्वरूप में देखकर भी स्त्रियाँ भावविहीन होकर स्नान करती रहीं। व्यासजी को पीछे-पीछे आते देखकर उन स्त्रियों ने लज्जावश वस्त्र ओढ़ लिये। व्यासजी ने स्त्रियों से इस आचरण का कारण जानना चाहा। उन स्त्रियों ने कहा, “शुकदेवजी की दृष्टि में स्त्री के किसी रूप से



कोई अंतर नहीं पड़ता। वह निर्विकार हैं। यह भेद होने के कारण आपको सन्मुख देखते ही हमने वस्त्र ओढ़ लिये।”  
ऐसे परमज्ञानी एवं योगी शुकदेवजी सदा मूढ़ से छिपे रहते थे।



## श्रीमद्भागवत की रचना

**द्वा**पर युग में महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में सत्यवती के गर्भ से तेजस्वी योगिराज वेदव्यास ने जन्म लिया। व्यासजी त्रिकालज्ञानी थे। उनकी दृष्टि अचूक थी। एक दिन वे सूर्योदय के समय सरस्वती नदी में आचमन-स्नान करके एकांत में नदी किनारे पवित्र स्थान पर बैठे चिंतन कर रहे थे। उन्होंने ध्यान लगाया तो लोगों को भौतिक कष्टों से दुःखी देखा। प्रजाजन को किसी-न-किसी अभाव का कष्ट था। उनमें नास्तिकता बढ़ती जा रही थी। वे भाग्यहीन दिखाई देने लगे थे।

वेदव्यास ने सोचा—लोकहित कैसे हो? उनके मन में आया कि चातुर्होत्र यज्ञ द्वारा मानव हृदय शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है। उन्होंने जनहित का ध्यान रखकर इस महान् यज्ञ को सरल बनाया। इसके चार भाग कर दिए—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इनके अतिरिक्त इतिहास एवं पुराण को उन्होंने पाँचवाँ वेद बनाया। इन वेदों के भी विभिन्न भाग बनते गए। समस्त मानवजाति को इसका लाभ प्राप्त कराने हेतु व्यासजी ने इन्हें अधिक-से-अधिक सरल बनाया। महाभारत की रचना करके व्यासजी ने समस्त मानवजाति का कल्याण किया। यह सब करने के बाद भी महर्षि को तृप्ति नहीं हुई। वे अनिश्चय की मनःस्थिति में ही रहे।

व्यासजी सरस्वती नदी के किनारे एकांत में जाकर बैठते थे। उनको अब भी संतोष नहीं था। वे निरंतर जन-कल्याण की चिंता करते रहते थे। वे मन-ही-मन विचार करने लगे—‘मैंने महाभारत की रचना की। निस्पृह भाव से वेदों को भी सरल बनाकर मानवजाति को धर्म, कर्म एवं कल्याण के मार्ग बता दिए, फिर भी मेरा मन असंतुष्ट है। मुझे अपूर्ण सा लग रहा है।’ चिंतामग्न महर्षि नदी के प्रवाह की ओर देखते हुए बैठे थे। उसी समय ‘नारायण-नारायण’ कहते देवर्षि नारद वहाँ प्रकट हुए।

व्यासजी ने आदरपूर्वक नारदजी की पूजा की। आग्रहपूर्वक उन्हें बिठाया। नारदजी ने उनकी चिंताग्रस्त मुद्रा देख ली थी। वे बोले, “महाभाग महर्षि व्यास! आपने महाभारत की रचना करके अद्भुत कार्य किया है। आप बधाई के पात्र हैं। पर आप तो जैसे किसी शोक में पड़े दिखाई दे रहे हैं।”

वीणापाणि नारद की बात सुनकर व्यासजी ने कहा, “मुने! आप साक्षात् ब्रह्मा के पुत्र हैं। आप तो सबके मन की बात जानते हैं, मेरी व्यथा को भी आप जान गए हैं। आप ही मुझे बताएँ कि मुझमें क्या कमी रह गई है!”

नारद ने कहा, “महर्षि! आप परमज्ञानी हैं, आपमें कोई कमी नहीं है; किंतु आपने भगवान् के निर्मल यश का गान नहीं किया है। अब आप भगवान् कृष्ण की लीला का गान करें, आपको शांति मिलेगी। भक्ति से आपके ज्ञान को पूर्णता मिलेगी। अपने ज्ञानभंडार में ईश्वरभक्ति मिला लीजिए, इससे जन-कल्याण होगा।”

यह कहकर नारद जाने लगे। व्यासजी ने पूछा, “देवर्षि! आप विश्व परिक्रमा करते-करते भगवान् की लीला का प्रचार करते हैं, इसका क्या रहस्य है?”

नारद हँसकर रुक गए। उन्होंने कहा, “मेरा पूर्वजन्म का इतिहास।”

व्यासजी ने कहा, “आप अपने पूर्वजन्म की कथा सुना दें।”

नारद ने कहा, “व्यासजी! मैं पूर्वजन्म में एक दासी का पुत्र था। वह ब्राह्मणों के घरों में साफ-सफाई तथा बरतन माँजने का काम करती थी। चातुर्मास में ब्राह्मण लोग पूजा-पाठ एवं यज्ञ करते थे। उस समय मैं उनकी सेवा में रहता। बालक होते हुए भी मैं कोई चंचलता नहीं करता था। खेलकूद से दूर रहकर मैं उनकी आज्ञा का पालन करता था और कम बोलता था। मेरी सेवा से पंडित प्रसन्न होते थे। अपने पात्रों में बचा अन्न वे मुझे दे देते थे। उनके

सत्संग में रहने के कारण मेरा हृदय शुद्ध हो गया। उन्हीं की तरह भजन-पूजन में मेरी रुचि बढ़ने लगी। मैं प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ सुनता। महात्माओं के कीर्तन-भजन सुनने से मेरे मन में भी कृष्णभक्ति पैदा हो गई।”

पल भर रुककर नारद ने कहा, “महात्माओं के प्रस्थान के बाद मैं अपनी माता के पास आ गया। एक दिन प्रातःकाल मेरी माता गौ का दूध दुहने बाहर निकली। सर्प पर पैर पड़ गया। सर्पदंश से मेरी माता की मृत्यु हो गई। मुझे भगवान् की प्रेरणा थी। मैं घर से निकला और उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा। पहाड़-मैदान, नदी-नाले पार करता मैं एक भयंकर जंगल में पहुँच गया। मेरा शरीर थक गया था। भूख-प्यास सता रही थी। वहाँ एक झरना दिखाई दिया। मैंने वहीं स्नान किया, जल पिया और एक पीपल के नीचे बैठ गया। मेरी थकावट उतर गई थी। मैंने भगवान् को नमस्कार किया और उनका नाम स्मरण करने लगा। मेरी आँखों में आँसू आने लगे। हृदय में भगवान् का स्वरूप प्रकट हुआ। मैं मोहित हो गया। आँखें खोलकर मैं उसी स्वरूप को ढूँढ़ने लगा। मैं भाग-भागकर भगवान् को पुकारता रहा। मुझे ज्ञान हुआ कि अब मुझे सारी मोह-माया छोड़कर केवल भगवान् का कीर्तन करते रहना चाहिए। मैं उसी स्वरूप में निमग्न हो गया। कुछ समय के बाद मेरी मृत्यु हो गई। एक सहस्र चतुर्युगी बीत जाने पर जब ब्रह्मा जागे और सृष्टि-रचना करने लगे, तब उनके शरीर से मरीचि आदि ऋषियों के साथ मैं भी प्रकट हो गया। पूर्वजन्म के संस्कार के प्रभाव से मैं भगवान् की भक्ति में डूबा रहा और इस जन्म में भी तीनों लोकों में बिना रोक-टोक विचरण करता हूँ और अखंड रूप से भगवान् का नाम स्मरण करता हुआ भ्रमण करता रहता हूँ।”

अपनी कथा सुनाकर देवर्षि नारद ने वीणा बजाते हुए वहाँ से प्रस्थान किया। महर्षि वेदव्यास ने नारद को बारंबार नमन करते हुए अपने आश्रम में जाकर भगवान् की लीला का वर्णन करनेवाले ‘श्रीमद्भागवत महापुराण’ की रचना प्रारंभ कर दी।



## अश्वत्थामा का मानमर्दन

महाभारत के युद्ध में कौरव एवं पांडव, दोनों पक्षों की बहुत हानि हो चुकी थी। अश्वत्थामा ने अपने स्वामी दुर्योधन को प्रसन्न करने हेतु द्रौपदी के सोए हुए पाँचों पुत्रों के सिर काटकर दुर्योधन के सामने प्रस्तुत किए। दुर्योधन को भी यह नीच कार्य अरुचिकर ही लगा था। द्रौपदी अत्यंत व्याकुल हो गई। तब अर्जुन ने उसे सांत्वना देते हुए प्रतिज्ञा की—“मैं उस आततायी ब्राह्मण का शिरच्छेद करके तुम्हें भेंट करूँगा। पुत्रों की अंत्येष्टि क्रिया के बाद तुम अश्वत्थामा के सिर पर पैर रखकर स्नान करोगी। उसके बाद मैं तुम्हारे आँसू पोंछूँगा।”

गांडीव धनुष लेकर अर्जुन रथ पर सवार हो गए। कृष्ण स्वयं अर्जुन के सारथि थे। रथ गुरुपुत्र अश्वत्थामा के पीछे दौड़ा। निर्दोषों की हत्या से अश्वत्थामा भी उद्विग्न हो गया था। उसने जब देखा कि अर्जुन उसे ढूँढ़ रहा है तब वह जहाँ तक भाग सकता था, भागता रहा, लेकिन उसे कहीं आश्रय न मिला। भयभीत अश्वत्थामा ने तब ब्रह्मास्त्र की आराधना की और अपने बचाव के लिए अर्जुन पर प्रचंड एवं तेजस्वी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया।

अर्जुन ने जब देखा कि वह अब विपत्ति में फँस गया है तब उसने श्रीकृष्ण भगवान् की प्रार्थना की। भगवान् ने उसे समझाया कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग अश्वत्थामा ने किया तो है, लेकिन वह इसे लौटाना नहीं जानता। अतः तुम ब्रह्मास्त्र के तेज से ही इसकी प्रचंड अग्नि को बुझा दो। अर्जुन ने वैसा ही किया। दोनों ब्रह्मास्त्रों के टकराने से प्रचंड ज्वाला निकली और उन लपटों से प्रजा जलने लगी। प्रजा का नाश होते देखकर अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के कहने पर दोनों ही ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया। अब अर्जुन ने अश्वत्थामा को झपटकर पकड़ लिया। रस्सी से बाँधकर घसीटते हुए अर्जुन उसे शिविर की ओर ले जा रहे थे। तब भगवान् कृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा, “इस अधम ब्राह्मण ने सोए हुए निरपराध बच्चों की हत्या की है, इसे तो मार ही डालो! द्रौपदी के सामने की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।”

भगवान् कृष्ण अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए ही उसे प्रेरित कर रहे थे।

किंतु अर्जुन का हृदय महान् था। इतने पर भी गुरुपुत्र की हत्या करने की इच्छा उसके मन में जाग्रत नहीं हुई। अर्जुन ने उसे घसीटकर विलाप करती द्रौपदी के सामने डाल दिया।

द्रौपदी ने देखा कि अश्वत्थामा उसके सामने मृतवत् पड़ा है, तो उसने अर्जुन से कहा, “इसे छोड़ दो! यह आपके आचार्य का पुत्र है। इसकी माता को भी इसके मरने से वही दुःख होगा जो मैं भुगत रही हूँ।”

द्रौपदी की बात धर्म एवं न्याय के अनुकूल थी। सभी ने द्रौपदी की बात का समर्थन किया। युधिष्ठिर ने रानी का अभिनंदन किया। लेकिन भीमसेन ने क्रोधित होकर कहा, “मार डालो इसे!”

तब श्रीकृष्ण ने कहा, “धर्म के अनुसार पतित ब्राह्मण का भी वध नहीं करना चाहिए, किंतु आततायी को मार ही डालना चाहिए। अब तुम अपनी प्रतिज्ञा भी सत्य करो तथा भीमसेन, द्रौपदी एवं मुझे जो प्रिय हो, वह भी करो।”

अर्जुन ने विवेक से काम लिया। उन्होंने अपनी तलवार से अश्वत्थामा के सिर की मणि उसके बालों के साथ उतार ली और सिर मूँड़कर उसे शिविर से बाहर निकाल दिया।

कृष्ण भगवान् जब रथ पर बैठकर रवाना होने लगे तो उत्तरा दौड़कर उनके रथ के सामने आई और रोती हुई भगवान् कृष्ण से कहने लगी, “हे महायोगी कृष्ण! वह लोहे का लाल-तपा हुआ बाण मुझे एवं मेरे गर्भ को मारने के लिए आ रहा है। मेरी रक्षा करो।”

भगवान् ने देखा—वह ब्रह्मास्त्र है! उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से उत्तरा के गर्भ को ढक दिया। ब्रह्मास्त्र को

रुकना पड़ा। उत्तरा के गर्भ का बालक ब्रह्मास्त्र के तेज से जब जलने लगा तब गर्भस्थ शिशु परीक्षित ने देखा कि उसकी आँखों के सामने एक ज्योतिर्मय पुरुष है। उसके हाथ में गदा है। तेजस्वी चतुर्भुज पुरुष स्वयं शिशु के चारों ओर घूम-घूमकर ब्रह्मास्त्र से उसकी रक्षा कर रहा था। दस मास के गर्भस्थ शिशु ने देखा कि भगवान् वासुदेव ने ब्रह्मास्त्र के तेज को शांत कर दिया और वे अंतर्धान हो गए। उपयुक्त समय पर शुभ लग्न में पांडु के वंशधर परीक्षित का जन्म हुआ। पौत्र के जन्म की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर अत्यंत प्रसन्न हुए। मंगलवाचन, जातकर्म संस्कार आदि को पूर्ण करवाने पर दान-दक्षिणा से ब्राह्मणों को संतुष्ट करके उन्होंने बालक के उज्ज्वल भविष्य के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की।



# श्रीमद्भागवत कथा का प्रारंभ

**कौ**रव-पांडवों के युद्ध के पश्चात्, ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के गर्भ में परीक्षित की रक्षा करने के बाद भगवान् कृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से द्वारिकाधाम जाने की इच्छा प्रकट की। जब भी भगवान् द्वारिका जाने का नाम लेते तब कभी बुआ कुंती, बहन द्रौपदी अथवा शोकाकुल धर्मराज युधिष्ठिर उन्हें रोक लेते थे।

एक दिन युधिष्ठिर तथा भगवान् श्रीकृष्ण शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह को देखने गए। इच्छामृत्यु प्राप्त भीष्म पितामह के पास उस समय समस्त ब्रह्मज्ञानी—नारद, वेदव्यास, महर्षि अत्रि, गौतम, भारद्वाज, सुदर्शन तथा शुकदेव कुरुक्षेत्र में पधारे थे। भीष्म पितामह सभी का सम्मान कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण को देखते ही वे भावविह्वल हो गए। उन्होंने श्रीकृष्ण की मानसिक पूजा की तथा उनकी स्तुति की।

फिर उन्होंने विनम्र भाव से पास ही बैठे पांडवों से स्नेहपूर्वक कहा, “धर्म का आश्रय लेते हुए तथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण भगवान् की शरण में रहते हुए भी तुम सब को घोर कष्ट सहन करने पड़े हैं। ये सब घटनाएँ ईश्वराधीन हैं। ये सब इन वासुदेव की लीलाएँ ही हैं। भक्तों को कष्टों में डालकर भगवान् उन्हें भक्ति देते हैं। इन श्रीकृष्ण की माया कोई नहीं जान सकता। अब तुम लोग सारा शोक एवं वेदना छोड़कर धर्म से प्रजा का पालन करो।”

पितामह ने पांडवों को दान, राजधर्म इत्यादि के संक्षेप में अलग-अलग भेद बताए। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के साधनों का वर्णन किया।

उसी समय सूर्य उत्तरायण में आ गए। मृत्यु का उचित समय समझकर पितामह ने श्रीकृष्ण भगवान् को हाथ जोड़कर मन को उनमें ही लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना चतुर्भुजी स्वरूप धारण करके उनको दर्शन दिए। भीष्म पितामह ने एकटक कृष्ण वासुदेव की ओर देखते-देखते मन-वचन-कर्म से अपने को भगवान् में लीन कर लिया।

युधिष्ठिर ने उनकी अंत्येष्टि क्रिया की। फिर शोकाकुल परिवार हस्तिनापुर चला आया। हस्तिनापुर में युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बैठाकर तथा सबको यथास्थान अपने-अपने धर्म-कर्म एवं कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने का उपदेश देकर और बुआ कुंती से स्वीकृति लेकर, उत्तरा के पुत्र को आशीर्वाद देकर उन्होंने युधिष्ठिर से द्वारिका जाने की अनुमति माँगी। द्रवित हृदय व अत्यंत विह्वल भाव से सभी ने श्रीकृष्ण को विदाई दी।

विदुरजी अपनी संपूर्ण तीर्थयात्रा करने के पश्चात् हस्तिनापुर आए। वास्तव में स्वयं धर्मराज (यमराज) ने ही विदुरजी के रूप में अवतार लिया था। वह काल की गति को समझते थे। उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को समझाया कि भविष्य में और भी बुरा समय आनेवाला है; अतः तुरंत ही यहाँ से वन की ओर निकल चलिए।

धृतराष्ट्र को भाई के वचन प्रिय लगे। उन्हें प्रज्ञाचक्षु प्राप्त हो गए। वे उसी रात विदुरजी के साथ वन को चले गए। उनके साथ गांधारी और कुंती भी गईं। दूसरे दिन जब राजा युधिष्ठिर को पता चला कि धृतराष्ट्र एवं गांधारी चुपचाप वन को चले गए हैं तो वे अत्यंत शोकाकुल हुए। तब देवर्षि नारद ने आकर उन्हें बताया कि वे अब निरासक्त भाव से भगवान् में ध्यान लगाए हुए हैं। आज से पाँचवें दिन वे शरीर को त्याग देंगे। वन में आग लग जाने के कारण वे उसमें भस्म हो जाएँगे तथा विदुरजी फिर तीर्थयात्रा करने निकल जाएँगे।

धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने तारु के प्रति अपने कर्तव्य-कर्म को पूरा किया।

राजा युधिष्ठिर को सहसा ही श्रीकृष्ण भगवान् का स्मरण हो आया था। अर्जुन काफी दिनों पूर्व द्वारिकापुरी उनसे मिलने गए थे, वे भी अब तक लौटे नहीं थे। इधर युधिष्ठिर को अनेक अपशकुनों का आभास हो रहा था। उन्होंने

भीमसेन के सामने अपनी चिंता व्यक्त की।

उसी समय अर्जुन द्वारिकापुरी से लौट आए। उनकी झुकी हुई गरदन, अश्रु भरे नेत्र एवं कांतिहीन शरीर देखकर धर्मराज युधिष्ठिर घबरा गए। पूछने लगे, “क्या हुआ? सब कुशल तो है?”

अर्जुन ने उनके चरणों में गिरकर रूँधे कंठ से कहा, “हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण परमधाम चले गए।”

शोक से व्याकुल राजा युधिष्ठिर ने भी महाप्रस्थान करने का दृढ़ संकल्प किया। उन्होंने अपने पौत्र परीक्षित को संपूर्ण राज्य देकर हस्तिनापुर में उसका राजतिलक कर दिया। मथुरापुरी में उन्होंने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र का राजतिलक किया और स्वयं ने प्रजापति यज्ञ करके संन्यास ले लिया। धर्मराज ने अन्न-जल का त्याग करके मौन धारण कर लिया। अपने केश खोल दिए और बिना किसीकी ओर देखे उत्तर दिशा की ओर चल दिए। भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव एवं द्रौपदी ने भी उन्हींका अनुसरण किया। पांडव श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न होकर उत्तराखंड की ओर चले गए। विदुरजी ने भी प्रभास-क्षेत्र में होकर शरीर त्याग दिया। पांडवों को महाप्रयाण से अंत में पुण्यलोक की प्राप्ति हुई।

राजा परीक्षित धर्मपूर्वक शासन करने लगे। इरावती के साथ उनका विवाह हुआ था। एक बार वे दिग्विजय के लिए बाहर निकले। तब उन्होंने राजा के वेश में ‘कलियुग’ को एक गाय और बैल को मारते हुए देखा। राजा ने कलियुग को पकड़कर दंड दिया।

इसके पूर्व एक आश्चर्यजनक घटना हुई। धर्म बैल का रूप धारण करके एक पैर से घूम रहा था। उसे एक स्थान पर गाय के रूप में भटकती पृथ्वी मिली। वह बहुत दुःखी एवं कातर थी। धर्म ने उससे पूछा, “कल्याणी, तुम बहुत दुःखी दिखाई दे रही हो! क्या बात है? क्या दुष्टों द्वारा सताई जा रही हो? या मनुष्यों के राक्षसी व्यवहार एवं स्वेच्छाचार से ही त्रस्त हो?”

पृथ्वी ने कहा, “तुम तो जानते ही हो। जिन भगवान् की कृपा से तुम अपने चारों चरण—तप, पवित्रता, दया एवं सत्य सहित सत्ययुग में थे, त्रेतायुग में तुम्हारे केवल तीन चरण रह गए। द्वापर में दो ही चरण रह गए और अब कलियुग में केवल एक ही चरण रह गया है—‘सत्य’। यह अधर्मी कलियुग अपने असत्य से इस सत्य चरण को भी नष्ट कर रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरा भार हलका कर दिया था। अब जब भगवान् गोलोकधाम चले गए तो ये दुष्ट एवं पापी राजा इसे भोगेंगे और पाप करेंगे। इसीसे मैं दुःखी हो रही हूँ।”

बैल रूपी धर्म एवं पृथ्वी रूपी गौ की बातचीत राजा परीक्षित सुन रहे थे। उन्होंने कलियुग को मारने के लिए तीक्ष्ण धारवाली तलवार निकाली। कलियुग ने देखा कि अब वह बच नहीं सकता, तब राजा परीक्षित के चरणों में गिरकर उनसे प्राणरक्षा की याचना करने लगा। राजा ने शरण में आए कलियुग पर दया करके कहा, “शरणागत को मैं नहीं मारता, किंतु तुम अधर्म के साथी हो; अधर्म, पाप, झूठ, चोरी, दरिद्रता आदि उपद्रवों के मूल कारण तुम ही हो। अतः तुम मेरे राज्य में एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकते। मेरे राज्य में धर्म एवं सत्य का निवास है। यहाँ भगवान् की पूजा-भक्ति होती है। तुम इसी क्षण यहाँ से चले जाओ!”

भय से काँपते हुए कलियुग ने राजा परीक्षित से पूछा, “हे राजन, आपका राज्य तो संपूर्ण पृथ्वी पर है। आप ही मुझे ऐसा स्थान बताइए जहाँ मैं रह सकूँ।”

कलियुग की बात सुनकर राजा परीक्षित को उसपर तरस आ गया। उन्होंने कहा, “द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग और हिंसा में असत्य, मद, आसक्ति एवं निर्दयता निवास करते हैं। तुम भी जाकर उन्हीं में रहो।”

कलियुग ने कहा, “राजन, ये स्थान अपर्याप्त हैं।”

तब राजा परीक्षित ने उसे पाँचवाँ स्थान ‘सुवर्ण’ भी बता दिया, जिसमें रजोगुण व शत्रुता का वास है। कलियुग

उसी समय राजा के सिर पर स्वर्णमुकुट देखकर उसीमें प्रवेश कर गया।

राजा परीक्षित धैर्यपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगे। वे महाप्रतापी राजा राजलक्ष्मी से सुशोभित होकर कलियुग को अपने वश में करके धर्म का राज्य कर रहे थे।

एक दिन परीक्षित शिकार खेलने वन में गए। राजा हिरणों के पीछे दौड़ते-दौड़ते थक गए। भूख-प्यास सताने लगी। आसपास कहीं जलाशय भी नहीं दिखाई दिया। पास में एक ऋषि का आश्रम देखकर राजा वहाँ पहुँचे। वहीं पर एक ऋषि आँख बंद करके ध्यानस्थ बैठे थे। तपस्या में लीन ऋषि को राजा के आने से कोई फर्क नहीं पड़ा। उन्होंने आँखें नहीं खोलीं। राजा ने उनसे जल माँगा। किंतु ऋषि तो ध्यानमग्न थे। उन्हें पता नहीं चला। राजा को क्रोध आ गया। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। उनके साथ ऐसी घटना जीवन में पहली बार हुई थी। उन्होंने ऋषि की तपस्या को ढोंग समझा। वे आवेश में आ गए। पास ही उन्हें एक मरा हुआ साँप दिखाई दिया। क्रोधित राजा ने मरे हुए साँप को धनुष की नोक से उठाकर तपस्वी ऋषि के गले में डाल दिया और अपनी राजधानी लौट आए।

ये ध्यानमग्न ऋषि शमीक थे। उनका पुत्र शृंगी अपने साथियों के साथ आश्रम के पास ही खेल रहा था। वह बड़ा तेजस्वी बालक था। उसने सुना कि राजा ने उसके पिता के साथ दुर्व्यवहार किया है तो वह क्रोध से धधक उठा—ये राजा कितना अन्याय करते हैं। मर्यादा भंग करनेवालों को अवश्य ही सजा मिलनी चाहिए। वह अपने साथियों से बोला, “अब मेरा तपोबल भी देखो!” ऋषि पुत्र ने कौशिकी नदी के जल से आचमन किया। फिर हाथ में जल लेकर कहा, “राजा परीक्षित ने मेरे पिता का अपमान किया है, इसलिए मेरे तप के प्रभाव से आज से सातवें दिन उसे तक्षक नाग डस लेगा!” यह शाप देकर, आवेश में भरा वह आश्रम में पहुँचा। वहाँ पिता के गले में मरा हुआ साँप देखकर शृंगी जोर-जोर से रोने लगा।

शमीक की समाधि टूटी। उन्होंने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। गले में मरा हुआ साँप देखकर उन्होंने उसे उतारकर दूर फेंका और बालक को रोते देखकर पूछा, “तुम क्यों रो रहे हो, पुत्र?”

पुत्र ने पिता को सारा हाल सुनाया। ऋषि ने पुत्र द्वारा राजा को दिए गए शाप का अभिनंदन नहीं किया। उनकी दृष्टि में राजा शाप के योग्य नहीं थे। उन्होंने पुत्र से कहा, “तुमने मूर्खता की है! राजा प्रजापालक होता है। एक छोटी सी गलती का इतना बड़ा दंड नहीं होता। विलक्षण कार्यों से ही राजा प्रजा को निर्भय रखता है। उनका कल्याण करता है। राजा के नहीं रहने से उत्पात होंगे, लूटपाट, हिंसा, चोरी आदि भयंकर अपराधों को कौन रोकेगा? राजा परीक्षित ने अश्वमेध यज्ञ किए हैं। वे यशस्वी हैं। ईश्वर में उनकी भक्ति है।” पुत्र द्वारा शाप दिए जाने के कारण शमीक पछता रहे थे।

राजा परीक्षित अपनी राजधानी पहुँचे। उन्हें भी क्षणिक उत्तेजना में आकर किए गए अपने दुष्कर्म पर ग्लानि हो रही थी। वे अत्यंत उदास हो गए। मन-ही-मन वे अपने व्यवहार की निंदा करते रहे। खिन्न मन से सोच रहे थे कि इस दुष्कर्म के कारण उनपर अब विपत्ति अवश्य आएगी।

उन्हें पता चला कि ऋषिपुत्र ने उन्हें तक्षक नाग द्वारा डसे जाने का शाप दे दिया है। उन्होंने निश्चय किया कि राजकार्य की व्यवस्था अपने पुत्र जनमेजय को सौंपकर वे आमरण अनशन का व्रत करेंगे। राज्य की व्यवस्था करके राजा परीक्षित गंगातट पर जाकर बैठ गए। भगवान् कृष्ण में श्रद्धापूर्वक मन लगाकर वे अनशन करने लगे। गंगाजी के किनारे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एवं श्रद्धालु भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। राजा सबके दर्शन कर नमन करते थे। उन्होंने महान् ऋषि-मुनियों का दर्शन करके उन्हें आसन पर बिठाया तथा हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक स्वयं द्वारा ब्राह्मण का अपमान तथा ऋषिकुमार के शाप की घटना सुनाई। राजा ने महर्षियों से पूछा, “जब तक मुझे नागराज



तक्षक दंश नहीं करते तब तक माँ गंगा के तट पर आप लोगों से भगवान् के चरित्र एवं उनकी लीला का वर्णन सुनता रहूँ। आप सब मुझ पापी पर कृपा करके यही आशीर्वाद दीजिए कि हर जन्म में भगवान् कृष्ण के प्रति मेरी भक्ति अविचल रहे। जगत् के प्राणियों के प्रति मेरी मैत्री रहे और मैं सदैव सद्कर्म करता रहूँ।”

ऋषियों ने आपस में विचार करके राजा के देहत्याग तक वहीं रहकर भगवान् का चरित्र-गान करने का निर्णय लिया। राजा ने श्रद्धापूर्वक मुनियों को बार-बार नमन किया और उनसे जिज्ञासा प्रकट की कि इस थोड़े ही समय में मरनेवाले पुरुषों के लिए अंतःकरण और शरीर से करने योग्य विशुद्ध कर्म कौन सा है? (इन दो प्रश्नों का उत्तर ही शुकदेव ने संपूर्ण भागवत में दिया है।)

उसी समय वहाँ वेदव्यास के पुत्र शुकदेव प्रकट हुए। उनकी सोलह वर्ष की अवस्था थी। अवधूत का वेश था। निर्विकार योगी शुकदेव को देखकर सभी ऋषि-मुनि एवं उपस्थित श्रद्धालुजनों सहित राजा परीक्षित उठ खड़े हुए। सभी ने प्रणाम करके उनकी पूजा की। राजा ने हाथ जोड़कर पहले जो प्रश्न ऋषि-मुनियों से पूछे थे, वही शुकदेव से पूछे, “मरणासन्न पुरुष को क्या करना चाहिए? आप योगियों के भी गुरु हैं। मुझे उपदेश दें। मैं अपने लिए तथा लोकहित में ही आपसे यह प्रश्न पूछ रहा हूँ। मुझे इस विषय में गहरी जिज्ञासा हो रही है। मृत्युशय्या पर पड़े हुए मनुष्य को क्या करना चाहिए? वे किसका ध्यान करें? किसका स्मरण करें? तथा माया-मोह का त्याग कैसे करें? भगवन्! मेरे मन की शंकाओं का समाधान करें।”

शुकदेव ने राजा के प्रश्नों की सराहना की। फिर प्राणीमात्र के हित के लिए उन्होंने कहा, “मनुष्य जीवन का यही लाभ है कि ज्ञान से, भक्ति से अथवा धर्म के प्रति अपनी निष्ठा से जीवन को ऐसा ढाल दिया जाए कि मृत्यु के समय भगवान् की स्मृति मानस पटल पर बनी रहे। मृत्यु के समय मनुष्य को बिना घबराए मोह-ममता को छोड़ देना चाहिए और केवल ईश्वर को स्मरण करना चाहिए। मनुष्य को जिस किसी साधन—ध्यान, स्मरण, योग द्वारा तथा अपनी बुद्धि से भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाए, वही कल्याणकारी मार्ग है। बुद्धिमान् पुरुष को भक्तियोग से केवल भगवान् की ही आराधना करनी चाहिए।”

राजा परीक्षित को अपनी मृत्यु का समय ज्ञात था। वे राज्य तथा बंधु-बांधवों की ममता-मोह त्यागकर श्रद्धा से भगवान् कृष्ण की महिमा शुकदेव के मुख से सुनकर गोलोकधाम चले गए। शुकदेव द्वारा कही गई यह कथा ही श्रीमद्भागवत के रूप में मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए आज भी किसी-न-किसी रूप में सुनी जाती है। मनुष्य अपना भवलोक एवं परलोक सुधारनेवाली इस कथा का भक्तिपूर्वक श्रवण एवं मनन करते हैं।



## भगवान् के अवतारों का वर्णन

सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। उन्होंने तत्काल महातत्त्व से विराट् पुरुष-रूप ग्रहण किया। इसमें दस इंद्रियाँ, एक मन और पंचभूत—ये सोलह कलाएँ थीं। वे योगनिद्रा में शयन कर रहे थे, उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ। उसी कमल से प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। क्षीरसागर में शयन करनेवाले नारायण के विराट् स्वरूप में ही संपूर्ण ब्रह्मांड व्याप्त है। उसी विराट् स्वरूप के दर्शन योगीजन करते हैं। यही नारायण-रूप अनेक अवतारों का अक्षयकोष है। इसीसे सारे अवतारों का प्रादुर्भाव होता है।

नारायण ने प्रथम कौमार-सर्ग में 'सनक, सनंदन, सनातन एवं सनत्कुमार'—इन चार ब्रह्मापुत्रों के रूप में अवतार ग्रहण किया। उस समय कठिन, अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया, दूसरी बार इन्हीं भगवान् ने 'वराह अवतार' धारण किया और पृथ्वी को रसातल से निकाल लाए। तीसरी बार 'नारद' के रूप में अवतार लेकर सात्वन्-तंत्र का उपदेश किया। इसमें कर्मों द्वारा किस प्रकार कर्मबंधन से मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है। धर्मपत्नी मूर्ति देवी के गर्भ से उन्होंने 'नर-नारायण' के रूप में चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतार में उन्होंने बदरी वन में ऋषि बनकर कठिन तपस्या की। पाँचवाँ अवतार माता देवहूति के गर्भ से 'कपिल मुनि' के रूप में हुआ। उन्होंने अपनी माता को सांख्यशास्त्र का उपदेश दिया। छठे अवतार में अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया के गर्भ से 'दत्तात्रेय' प्रकट हुए। इन्होंने प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान दिया। सातवें अवतार में आकूति के गर्भ से 'सुयज्ञ' के रूप में अवतार धारण किया। नाभिराजा की पत्नी सुदेवी के गर्भ से 'ऋषभदेव' के रूप में भगवान् का आठवाँ अवतार हुआ। इस रूप में उन्होंने परमहंसों का मार्ग दिखाया। फिर ऋषियों की प्रार्थना पर नौवीं बार वे राजा 'पृथु' के रूप में अवतीर्ण हुए। इन्होंने गौ रूपिणी पृथ्वी से ओषधियों, अन्नों तथा रत्नों का दोहन किया। दसवाँ अवतार 'मत्स्य' भगवान् का हुआ। जब चाक्षुष मन्वंतर में संपूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो गई थी, उस समय पृथ्वी को नौका बनाकर वैवस्वत मनु की रक्षा की थी। ग्यारहवें अवतार में 'कच्छप' का अवतार धारण किया तथा समुद्र मंथन के समय देवता तथा असुरों की सहायता की। बारहवें अवतार में 'धन्वंतरि' के रूप में प्रकट होकर समुद्र मंथन से उत्पन्न अमृतकलश देवताओं को दिया। तेरहवें अवतार में 'मोहिनी' रूप धारण करके उन्होंने देवताओं को अमृत पिलाया। चौदहवें अवतार में 'नृसिंह' रूप धारण करके हिरण्यकशिपु दैत्य को मारकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। पंद्रहवाँ अवतार 'वामन' भगवान् के रूप में लेकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगा और राजा बलि को पाताल भेजकर इंद्र को स्वर्ग का राज्य दिया। सोलहवें भगवान् 'परशुराम' अवतरित हुए। उन्होंने पृथ्वी पर अभिमानी क्षत्रिय राजाओं को इक्कीस बार नष्ट किया। सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से 'वेदव्यास' के रूप में जन्म लिया। इन्होंने वेदों का विभाजन किया तथा और भी अनेक उत्तम ग्रंथों की रचना की। अठारहवाँ अवतार भगवान् 'राम' का हुआ। उन्होंने रावण का वध करके पृथ्वी पर धर्म का विस्तार किया। उन्नीसवें एवं बीसवें अवतार में उन्होंने यदुवंश में 'बलराम' एवं 'श्रीकृष्ण' नाम से प्रकट होकर पृथ्वी का भार उतारा। संपूर्ण कलाओं से परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार के बाद नारायण भगवान् 'बुद्धदेव' का अवतार धारण करेंगे एवं कलियुग के अंत में विष्णुयश नामक ब्राह्मण के गृह में 'कल्कि' भगवान् का अवतार होगा।

जब-जब पृथ्वी पर दुष्टों का भार बढ़ता है, धर्म की हानि होती है, अनीति, अनाचार एवं भ्रष्टाचार का साम्राज्य हो जाता है, तब-तब भगवान् अनेक रूप धारण करके 'अंशावतार' अथवा 'कलावतार' लेते हैं और पापियों का संहार करते हैं। भक्तजनों एवं धर्म की रक्षा करते हैं।



## ब्रह्मा ने सृष्टि रची

सृष्टि की रचना के पूर्व यह संपूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था। केवल भगवान् विष्णु शेषशय्या पर योगनिद्रा में लीन थे। उन्हींकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ और ऊपर उठने लगा। कमल की नाल लंबी थी। उसकी चौदह पंखुड़ियों के बीच ब्रह्मा थे। वे चकित से अपने आसपास देखने लगे। उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। तब वे नाल के भीतर घुस गए और नाभि तक जा पहुँचे। वहाँ भी उन्हें कुछ नहीं दिखाई दिया। वे वापस आकर फिर कमल पर बैठ गए। उन्हें जिज्ञासा हुई कि वे स्वयं कौन हैं, कहाँ आए हैं? कमल की उत्पत्ति कहाँ से हुई? धीरे-धीरे वे समाधि में लीन हो गए। बहुत समय बाद उनको ज्ञान प्राप्त हुआ कि उनकी रचना स्वयं विष्णु भगवान् ने की है। वे भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णु ने उनसे कहा, “तुम अब समय न गँवाओ। सृष्टि की रचना करने के लिए ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है।” भगवान् को प्रणाम करके ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना प्रारंभ कर दी।

उन्होंने अपने मन एवं देह से कई प्रकार की रचनाएँ कीं, उनका विस्तार किया। अपनी पहली रचना पर उन्हें स्वयं संतोष नहीं हुआ। तब उन्होंने दूसरी रचना की। उन्होंने चार मुनि उत्पन्न किए। वे चारों मुनि निवृत्ति-मार्ग पर चले गए। ब्रह्मा ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया लेकिन वे नहीं रुके। ब्रह्मा क्रोधित हुए तो उनकी भौंहों के बीच से एक बालक प्रकट हुआ। वह रोने लगा, अतः उसका नाम ‘रुद्र’ हुआ। ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु की शक्ति से दस पुत्र उत्पन्न किए—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद।

ब्रह्मा ने अपने मुख से देवी सरस्वती को उत्पन्न किया।

इतनी सृष्टि के निर्माण से भी ब्रह्मा को संतोष नहीं हुआ। वे विश्व-विस्तार का विचार करने लगे। उसी समय उनके शरीर के दो भाग हो गए। एक भाग से एक पुरुष एवं दूसरे से स्त्री प्रकट हुई। पुरुष स्वायंभुव ‘मनु’ थे और स्त्री ‘शतरूपा’, जो स्वायंभुव मनु की पत्नी बनीं। उनके दो पुत्र हुए—प्रियव्रत एवं उत्तानपाद। आकृति, देवहूति तथा प्रसूति—उनकी तीन कन्याएँ थीं। मनुजी ने आकृति का विवाह रुचि प्रजापति से किया; देवहूति का कर्दम ऋषि से तथा प्रसूति का दक्ष प्रजापति से। इन तीनों कन्याओं की संतति से ही सारा संसार भर गया।

स्वायंभुव मनु ने ब्रह्मा से पूछा, “मैं और मेरी संतान कहाँ रहेंगे? पृथ्वी तो रसातल में पहुँच गई है।”

ब्रह्मा चिंता में पड़ गए। उसी समय उनकी नाक में से अंगूठे के बराबर एक वराह निकला। देखते-ही-देखते वह वराह हाथी के समान विशालकाय बन गया। ब्रह्मा चकित रह गए। ब्रह्मा एवं उनके पुत्र सोच ही रहे थे कि अवश्य ही यह भगवान् की लीला होगी। आश्चर्य कि यह वराह देखते-ही-देखते पर्वत के समान विशाल हो गया। भगवान् की माया देखकर सभी उनकी प्रार्थना करने लगे। इस वराह ने आकाश में पूछ उठाकर छलाँग मारी और नाक को समुद्र में घुसेड़कर पृथ्वी को ऊपर उठा लिया। अपने दाँतों पर पृथ्वी उठाए वराह ने ब्रह्मा की ओर देखा। ब्रह्मा ने समुद्र पर ही पृथ्वी को स्थापित कर दिया।

तब से अब तक पृथ्वी जल पर ही स्थिर है। पृथ्वी का उद्धार करके भगवान् वराह अंतर्धान हो गए।

ब्रह्मा ने अपने मुख से देवी सरस्वती को उत्पन्न किया था। सरस्वती बहुत ही सुंदर, सुकोमल तथा मनोहारी वाणी की देवी हैं। अपनी अनुपम बुद्धिमती एवं लावण्यमयी पुत्री को देखकर स्वयं पिता ब्रह्मा उनपर मोहित हो गए। कामदेव के वशीभूत ब्रह्मा अपनी पुत्री से ही वासना तृप्त करने पहुँच गए। निर्विकार एवं वासनाहीन पुत्री सरस्वती अपने पिता के इस अधर्म का विरोध कर रही थी। उसी समय ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि ऋषियों ने पिता के इस दुष्कर्मों संकल्प को देखकर उन्हें समझाया कि अपने मन के इस काम-विकार पर नियंत्रण न करके आप पुत्री के

साथ सहगमन जैसा भयंकर पाप कर रहे हैं। ऐसा न तो पहले आपके किसी स्वरूप ने किया है, न भविष्य में ही कोई ऐसा करेगा। आप जैसे सृष्टि रचयिता ही यदि ये पाप-कर्म करने लगेंगे तो आप द्वारा उत्पन्न प्रजा भी आप के ही आचरणों का अनुसरण करके इस सृष्टि को अधोगति में ले जाएगी। आपको तो सृष्टि को कल्याण मार्ग पर ले जानेवाले आचरण करने चाहिए। आपको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीहरि को नमस्कार है। वे ही इस समय धर्म की रक्षा कर सकते हैं।

पुत्र के भर्त्सना भरे वचन सुनकर ब्रह्मा बहुत लज्जित हुए। उन्होंने उसी समय तप द्वारा अपने शरीर का त्याग कर दिया। कहा जाता है कि इस घोर पाप के कारण वह शरीर दिशाओं ने धारण कर लिया था, जो कोहरा तथा अंधकार बन गया।

ब्रह्मा ने अपने तप के प्रभाव से पुनः शरीर धारण करके, सुव्यवस्थित रूप से नई सृष्टि की रचना करने का संकल्प किया। इस बार उनके चार मुखों से चारों वेद प्रकट हुए।

ब्रह्मा मन-ही-मन चिंता करने लगे कि लगातार प्रयत्न करने पर भी सृष्टि की रचना में इतनी बाधाएँ क्यों आ रही हैं! लगता है, मेरा दुर्दैव ही विघ्न डाल रहा है। इस आत्मचिंतन से उन्हें वितृष्णा हुई। उसी समय उनके शरीर के दो भाग हो गए। 'क' ब्रह्मा की संज्ञा है। उन्हीं से विभक्त होने के कारण शरीर को 'काय' कहते हैं।

ब्रह्मा के शरीर के एक भाग से पुरुष स्वायंभुव मनु तथा दूसरे से स्त्री शतरूपा का जन्म हुआ। दोनों ने सृजन के धर्म से प्रजा की उत्पत्ति की। तभी से पति-पत्नी के मैथुन से संतान का सृजन प्रचलित हुआ।



## कर्म ऋषि द्वारा सृष्टि की रचना

ब्रह्मा ने कई बार विभिन्न रूपों में सृष्टि की रचना की। कभी दैत्य, दानव, असुर तो कभी गंधर्व, किन्नर, अप्सरा, तो कभी साध्यगण, पितृगण आदि। फिर भी सृष्टि की वृद्धि न होने के कारण वे बहुत चिंतित हुए और हाथ फैलाकर लेट गए। क्षोभ से उन्होंने अपना शरीर भी त्याग दिया। उससे उनके जो बाल झड़कर गिरे, वे 'अहि' हुए तथा उनके हाथ-पैर सिकोड़कर चलने से क्रुद्ध स्वभाव के सर्प एवं नाग हुए।

एक बार फिर ब्रह्मा ने अपने को कृतकृत्य-सा अनुभव किया। अंत में उन्होंने अपने मन से मनुओं की सृष्टि की।

प्रजा की वृद्धि करनेवाले स्वायंभुव मनु का वंश बड़ा आदरणीय माना गया है। उनके दो पुत्र—प्रियव्रत एवं उत्तानपाद और तीन पुत्रियाँ थीं—आकूति, देवहूति एवं प्रसूति।

ब्रह्मा ने कर्म ऋषि को आज्ञा दी कि तुम प्रजा का सृजन करो। कर्म ऋषि ने दस हजार वर्ष तक सरस्वती नदी के तट पर तपस्या की। वे भगवान् श्रीहरि की आराधना कर रहे थे। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें साक्षात् दर्शन दिए। कर्म ऋषि ने श्रीहरि को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करते हुए कहा, “भगवन्, मैंने तन-मन से आपकी आराधना की है। आपने प्रत्यक्ष दर्शन देकर मुझे कृतकृत्य कर दिया। मैं अपने अनुरूप स्वभाववाली शीलवती कन्या से विवाह करने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।”

श्रीहरि ने कहा, “मैंने इसकी व्यवस्था कर दी है। स्वायंभुव मनु एवं देवी शतरूपा तुम्हारी कुटिया पर आएँगे। वे अपनी शीलवती पुत्री को भी साथ लाएँगे। वह विवाह योग्य सुंदर कन्या है जिसके तुम योग्य हो, इसलिए वे तुम्हें कन्या अर्पित करेंगे। वह शीलवती, रूपसंपन्न कन्या तुम्हारे साथ विवाह करके नौ कन्याओं को जन्म देगी। तुम्हारी उन्हीं कन्याओं से आगे मरीचि आदि ऋषिगणों का जन्म होगा। ऋषिराज, तुम्हारी पत्नी देवहूति के गर्भ से मैं भी अंशरूप में अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्र की रचना करूँगा।” यह कहकर मुनिवर को प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखते हुए श्रीहरि गरुड़ पर बैठकर चले गए।

ऋषि कर्म समय की प्रतीक्षा करते हुए बिंदु सरोवर पर ही ठहरे रहे।

भगवान् श्रीहरि के कथनानुसार एक दिन स्वायंभुव मनु एवं देवी शतरूपा अपनी कन्या देवहूति को लेकर महर्षि कर्म के आश्रम पर आ पहुँचे।

बहुत वर्षों तक तपस्या करने के कारण मुनिश्रेष्ठ अत्यंत तेजस्वी दिखाई दे रहे थे—सुंदर शरीरयष्टि, विशाल नेत्र तथा भगवान् श्रीहरि के प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण कर्म ऋषि का चेहरा प्रफुल्लित था। स्वायंभुव मनु एवं शतरूपा ने अपनी पुत्री के साथ आश्रम में प्रवेश करके ऋषि को प्रणाम किया। कर्म ऋषि ने राजा को पहचान लिया। आदर के साथ उनका स्वागत-सत्कार करके ऋषि ने पूछा, “आपका आगमन कैसे हुआ है? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?”

मुनि के इस प्रकार नम्रभाव से पूछने पर मनु ने अपने मन की बात उनके सन्मुख रखते हुए कहा, “मेरी पुत्री ने एक बार देवर्षि नारद से आपके बारे में सुना था, तभी से वह आपको पतिरूप में स्वीकार करने का निश्चय कर चुकी है।”

ऋषि ने इसको भगवान् की आज्ञा मान ली। उन्होंने कहा, “महाराज, आपकी रूप-गुण-संपन्न शीलवती कन्या का भला कौन आदर नहीं करेगा! जिस कन्या के तेजस्वी स्वरूप पर मोहित होकर एक बार विश्वासु गंधर्व भी अचेत होकर विमान से गिर पड़े थे। वही कन्या स्वयं मेरा वरण करना चाहती है, इससे मैं अपने को सौभाग्यशाली

समझता हूँ। मैं इस साध्वी कन्या को पत्नी रूप में स्वीकार करूँगा। आप हमारा विवाह वैदिक विधि से 'गृष्णामि ते' आदि मंत्रों से संतानोत्पादन के मनोरथवाली पद्धति से करवा दीजिए, ताकि सृष्टि-रचना का कार्य सफल हो सके।

दोनों की परस्पर स्पष्ट सहमति को मानते हुए मनु ने अपनी पुत्री को वस्त्राभूषण एवं गृहस्थोपयोगी समुचित पात्रादि के साथ ऋषि कर्दम को समर्पित कर दिया। सुयोग्य वर के साथ अपनी प्रिय पुत्री का विवाह करके मनु-शतरूपा निश्चित हो गए।

मनु अपने सेवकों सहित वहाँ से राजधानी के लिए रवाना हो गए। मनु ने निरंतर समस्त प्राणियों के कल्याण में लगे हुए अपने मन्वंतर के इकहत्तर चतुर्युग पूरे किए।

माता-पिता के चले जाने पर देवहूति पति की प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी। अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार एवं विश्वास से देवहूति ने पति को प्रसन्न किया। एक दिन कर्दम ऋषि ने देवहूति की कृश काया को देखकर प्रेमपूर्वक कहा, "मैं तुम्हारी सेवा से मुग्ध हो गया हूँ। अपने धर्म के पालन से एवं तपस्या से मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसपर अब तुम्हारा भी अधिकार हो गया है। तुम मुझसे क्या अपेक्षा करती हो?"

पति के मधुर वचन सुनकर देवहूति को अत्यंत प्रसन्नता हुई। मुसकराती हुई देवहूति ने संकोच भरे मधुर शब्दों में पति को स्मरण कराया कि विवाह में उन्होंने संतान उत्पत्ति के लिए प्रतिज्ञा की है। कर्दम ऋषि ने कहा, "मैं वचनबद्ध हूँ कि संतान उत्पत्ति तक मैं गृहस्थ धर्म का पालन करूँगा। गृहस्थ जीवन का उपभोग करते हुए तुम्हें तृप्त करूँगा।" फिर ऋषि ने अपनी दिव्य शक्ति से संपूर्ण वातावरण एवं अपने विहार के लिए वैभव-साधनों से भरपूर एक विमान तैयार किया। देवहूति ने सरस्वती के तट पर स्नान करके सुंदर वस्त्राभूषण एवं अलंकारों से युक्त होकर सखियों की सहायता से उस वैभवशाली सुंदर विमान में प्रवेश किया। पतिव्रता देवहूति गृहस्थ जीवन का सुख भोगती हुई दीर्घकाल तक पति के साथ रमण करती रही। कर्दम ऋषि अपने श्रेष्ठ विमान पर बैठकर अनेक सुंदर वन, उद्यानों एवं मानस-सरोवर आदि का भ्रमण करते हुए अपनी प्रिय पत्नी के साथ अपने आश्रम पर लौट आए। फिर आश्रम में आकर वे युगों तक पत्नी को रतिसुख देते रहे। पत्नी की इच्छा एवं संतान-प्राप्ति की उत्सुकता को देखते हुए उन्होंने ब्रह्मा की आज्ञा का स्मरण किया। देवहूति ने नौ कन्याओं को जन्म दिया। ये सभी कन्याएँ सर्वांग सुंदरी एवं कमलपुष्प के समान कोमल थीं।

शुद्ध स्वभाववाली देवहूति ने अनुभव किया कि उसके पति अब संन्यास लेने का विचार कर रहे हैं। उसने विनम्र भाव से कहा, "आपको इन नौ कन्याओं के लिए योग्य वर खोजने होंगे। मैं भी आप जैसे परम प्रभावी, दिव्य पुरुष को पाकर आपके प्रति अनुराग के कारण परमात्मा से विमुख रही। संसार-बंधन से छूटने की इच्छा भी नहीं की।" कर्दम ने प्रिय पत्नी को समझाते हुए कहा, "हे देवि! तुम संयम-नियम से श्रद्धापूर्वक भगवान् का भजन, तप एवं दान करती रहो। इसी आराधना के फलस्वरूप भगवान् श्रीहरि तुम्हारे उदर से जन्म लेंगे और स्वयं तुम्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश देंगे।"

देवहूति निर्विकार भाव से श्रीहरि की आराधना करने लगी। कुछ समय बीतने पर देवहूति के गर्भ से श्रीहरि ने जन्म लिया। सरस्वती नदी के जल से भरे बिंदु सरोवर पर स्थित महर्षि कर्दम के उस आश्रम में ऋषि-मुनि, देवी-देवता एवं स्वयं ब्रह्मा भी भगवान् के अवतार के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए। भगवान् कपिल भी अवतरित हुए। ब्रह्मा ने कर्दम ऋषि से गद्गद वाणी में कहा, "पुत्र तुमने मेरा सम्मान करते हुए मेरी आज्ञा का पालन किया है। तुम्हारी ये कन्याएँ अपने वंशों द्वारा सृष्टि बढ़ाएँगी। तुम्हारे तप के प्रभाव से पुत्ररूप में स्वयं नारायण सांख्ययोग से भक्तिमार्ग की महिमा का आत्मज्ञान प्रदान करेंगे तथा तुम्हारी कीर्ति को बढ़ाएँगे।" इतना कहकर सभी देवी-देवताओं के साथ ब्रह्मा भगवान् की स्तुति एवं प्रदक्षिणा करके अपने वाहन हंस पर बैठकर ब्रह्मलोक चले गए।

ऋषि कर्दम ने अपनी कला नाम की कन्या मरीचि को, अनसूया अत्रि को, श्रद्धा अंगिरा को और हविर्भू पुलस्त्य को समर्पित की। पुलह ऋषि के योग्य गति नाम की कन्या उन्हें दी। क्रतु के साथ क्रिया का विवाह किया। महर्षि भृगु के साथ ख्याति, वशिष्ठ के साथ अरुंधती एवं अथर्वा ऋषि के साथ शांति नाम की कन्या का विधिपूर्वक विवाह करके सत्कार-सम्मान के साथ अपनी सभी पुत्रियों को विदा किया।

ऋषि कर्दम ने अनन्य भाव से श्रीहरि को अवतरित देखा तो उन्होंने एकांत में उनके पास जाकर विनम्रता से कहा, “भगवन्! आप भक्तों का मान बढ़ानेवाले हैं। आपने सांख्ययोग का उपदेश करने के लिए ही मेरे यहाँ अवतार लिया है। मैं आपकी शरण में हूँ। आज मैं सभी ऋणों से मुक्त हो गया हूँ। अब मैं संन्यास ग्रहण कर आपका चिंतन करता हुआ भ्रमण करूँगा। मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। अब मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ।”

भगवान् कपिल ने कहा, “मुने! आत्मज्ञान का यह सूक्ष्म मार्ग बहुत समय से लुप्त हो गया था। इसे पुनर्स्थापित करने हेतु ही मैंने यह शरीर ग्रहण किया है। तुम इच्छानुसार कर्म करते हुए मोक्ष पद प्राप्त करो। मैं माता देवहूति को संपूर्ण कर्मों से छुड़ानेवाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा। वे संसार से मुक्त हो जाएँगी।”

कर्दम ऋषि संतुष्ट हो गए। उन्होंने कपिल भगवान् की परिक्रमा की और संन्यास धर्म का पालन करने हेतु अग्नि एवं आश्रम का त्याग करके, अपनी बुद्धि को अंतर्मुख एवं शांत करते हुए सबमें अपनी आत्मा को देखने लगे। कर्दम ने अंततः परमपद प्राप्त कर लिया।

पिता के चले जाने पर भगवान् कपिल अपनी माता के लिए उस ‘बिंदुसर तीर्थ’ में ही रहने लगे। एक दिन आसन पर ध्यानमग्न बैठे हुए पुत्र कपिल को देखकर माता ने उनसे कहा, ‘हे पुत्र...हे प्रभो! मेरे मोह को दूर कीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे ज्ञान दीजिए।’

कपिल भगवान् ने मन-ही-मन उनकी प्रशंसा की। बोले, “माता, अध्यात्मयोग ही मनुष्यों के कल्याण का मुख्य साधन है। श्रीहरि के प्रति की हुई भक्ति के समान कोई अन्य मंगलमय मार्ग नहीं है।”

माता ने पूछा, “भगवन्, आपकी समुचित भक्ति का स्वरूप क्या है?”

भगवान् कपिल ने प्रकृति आदि तत्त्वों का निरूपण करनेवाले शास्त्र का—जिसे ‘सांख्य’ कहते हैं—उपदेश दिया। उन्होंने भक्ति एवं योग का विस्तार से वर्णन किया। कपिल मुनि ने कहा, “संसार में मनुष्य के लिए सबसे बड़ी कल्याण-प्राप्ति यही है कि उसका चित्त भक्ति-योग द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाए। आत्मदर्शन रूपी ज्ञान ही पुरुष के मोक्ष का कारण है। भक्ति, वैराग्य एवं चित्त की एकाग्रता से प्रकट हुए इस ज्ञान के द्वारा अंतरात्मा स्वरूप श्रेत्रज्ञ परमात्मा को इस शरीर में स्थित जानकर उसका चिंतन करना चाहिए।”

“माता, अब मैं तुम्हें योग का लक्षण बताता हूँ। यथाशक्ति शास्त्रविहित स्वधर्म का पालन करना, शास्त्रविरुद्ध आचरण का परित्याग करना, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाए, उसी में संतुष्ट रहना, आत्मज्ञानियों की पूजा करना, विषय-वासना को उत्तेजित करनेवाले कर्मों से दूर रहना, संसार-बंधन से छुड़ानेवाले धर्म का आचरण करना, पवित्र एवं परिमित भोजन करना, निरंतर एकांत और निर्भय स्थान में रहना; मन, वाणी और शरीर से किसी जीव को न सताना, सत्य बोलना, चोरी न करना, बाहर-भीतर से पवित्र रहना, शास्त्रों का अध्ययन करना, भगवान् की पूजा करना, वाणी पर संयम रखना, उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरतापूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायाम के द्वारा श्वास को जीतना, इंद्रियों को मन के द्वारा विषयों से हटाकर अपने हृदय में ले जाना, मूलाधार आदि किसी एक केंद्र में मन सहित प्राणों को स्थिर करना, निरंतर भगवान् की लीलाओं का चिंतन एवं चित्त को समाहित करना। इनसे तथा व्रत-दानादि दूसरे साधनों से भी सावधानी के साथ प्राणों को जीतकर मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि के द्वारा अपने कुमार्गगामी, दुष्ट चित्त को धीरे-धीरे एकाग्र करे तथा परमात्मा के ध्यान में लगाए। ध्यान से दुर्गुणों को दूर करे।”



माता देवहूति को उपदेश देने के पश्चात् भगवान् कपिल उनकी अनुमति लेकर आश्रम से रवाना हो गए। देवहूति आश्रम में पुत्र के उपदेश के अनुसार योग साधना करती हुई समाधि में स्थित हो गई।

## मनु पुत्रियों का वंश

स्वायंभुव मनु ने अपनी पुत्री आकूति का विवाह रुचि प्रजापति के साथ 'पुत्रिका धर्म' के अनुसार किया। पुत्रिका धर्म के अनुसार किए जानेवाले विवाह में कन्या के प्रथम पुत्र को कन्या के पिता ले लेते हैं। उनकी तीसरी कन्या प्रसूति का पाणिग्रहण दक्ष प्रजापति ने किया था। मनु की इन पाँचों संतानों ने ही संपूर्ण त्रिलोक में सृष्टि का विस्तार किया था। कर्दम ऋषि की कला नामक पुत्री से पूर्णिमा नाम का पुत्र था। उसके भी एक कन्या एवं दो पुत्र थे। कन्या का नाम देवकुल्या था। यही पुत्री अगले जन्म में गंगा नदी के रूप में प्रकट हुई। अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया से भगवान् दत्तात्रेय का अवतार हुआ। ब्रह्मा ने अत्रि ऋषि को भी सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी थी। अत्रि ऋषि ने भगवान् की आराधना की। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों ने एक साथ आकर अत्रि ऋषि एवं अनसूया को दर्शन दिए। ऋषि ने प्रार्थना की, "आप तीनों मेरा संकल्प पूर्ण करने के लिए मेरे ही घर में आएँ।" भगवान् ने 'तथास्तु' कहा।

समय आने पर विष्णु भगवान् ने दत्तात्रेय के रूप में, महादेवजी के अंश ने दुर्वासा ऋषि के रूप में तथा ब्रह्मा ने चंद्रमा के रूप में अत्रि ऋषि के यहाँ जन्म लिया।

मनु की तीसरी पुत्री प्रसूति दक्ष प्रजापति से ब्याही गई थी। उनके सोलह कन्याएँ हुईं। उनमें से तेरह कन्याएँ धर्म की, एक कन्या अग्नि की, एक कन्या पितृगण की पत्नी बनीं। सती नाम की कन्या ने संतान उत्पन्न होने से पूर्व ही अपने-आपको भस्म कर लिया था। दक्ष प्रजापति की उद्दंडता और मिथ्या अभिमान के कारण, भगवान् शिव के प्रति किए गए अपमानजनक व्यवहार से क्रोधित होकर सती ने अपने पिता को उनके अपराध का दंड देने के लिए अपने शरीर को योगाग्नि से जलाकर भस्म कर दिया था।



## शिव तथा दक्ष प्रजापति में शत्रुता

**भ**गवान् शिव तथा प्रजापति दक्ष में मनोमालिन्य के कारण ही उक्त घटना हुई थी। एक बार प्रजापति के यहाँ यज्ञ हो रहा था। वहाँ सभी ऋषि-मुनि, देवी-देवता एवं ब्रह्मा और शिव भी पधारे थे। दक्ष प्रजापति वहाँ आए तो सभी ने उठकर उनका स्वागत किया। ब्रह्मा एवं शिव—दोनों अपने स्थान पर बैठे रहे। प्रजापति दक्ष को इससे घोर अपमान अनुभव हुआ। ब्रह्मा तो उनके पिता थे, लेकिन शिव से उन्होंने अपनी पुत्री सती का विवाह किया था। क्रोध में दक्ष प्रजापति ने शिव की कटु शब्दों में आलोचना की—“शिव जैसे अमंगलस्वरूप, भूत-प्रेत के साथी तथा मतवाले, अपवित्र एवं भ्रष्ट कर्म करनेवाले पागल को मैंने अपनी सुंदर, सुकोमल कन्या देकर भूल की है!” ऐसे अनेक कटु वाक्यों से दक्ष ने शिव का अपमान किया। भगवान् शिव चुपचाप बैठे रहे। इससे दक्ष प्रजापति का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने उठकर शाप दिया—“शिव को देवताओं के साथ यज्ञ का भाग न मिले!” यह कहकर क्रोध से दहकते दक्ष प्रजापति वहाँ से चले गए।

जब महादेव के गण नंदीश्वर को इस शाप का पता चला तो उन्होंने दक्ष प्रजापति को शाप दे दिया—“जो भगवान् शंकर से वैर करता है, वह दक्ष पशु के समान है। इसका मुख बकरे का हो जाए तथा जो दक्ष के साथी, सहयोगी अथवा अनुयायी हैं और भगवान् शंकर से द्वेष करते हैं, वे भी कर्मकांड करके भक्ष्य-अभक्ष्य अन्न ग्रहण करें तथा सदैव भीख माँगते फिरें।”

नंदी के शाप को सुनकर दक्ष के अनुयायी महर्षि भृगु को भी क्रोध आ गया। उन्होंने भी शाप दिया—“शिवभक्त शास्त्रों के विरुद्ध कर्म करनेवाले, पाखंडी एवं सुरापानी होंगे।”

लगातार इस तरह के उत्तेजनापूर्ण शापों को सुनकर भगवान् शिव खिन्न हो गए और वहाँ से उठकर चले गए।

ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को सभी प्रजापतियों का अधिपति बना दिया था। अब तो दक्ष का गर्व और भी बढ़ गया। उन्होंने भगवान् शंकर को नीचा दिखाने के लिए पुनः एक यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें शिव को यज्ञ-भाग नहीं देना था। उस यज्ञोत्सव में भगवान् शंकर को छोड़कर सभी को निमंत्रण दिया गया। सभी देवता, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, पितृगण आदि अपनी पत्नियों सहित अपने-अपने विमानों में बैठकर दक्ष के यहाँ उत्सव में भाग लेने के लिए निकल पड़े। कैलाश पर्वत पर अपने पति शिव के साथ बैठी सती ने जब असंख्य विमानों में यक्ष, गंधर्व, देवर्षियों को अपनी सजी-सँवरी, सुशोभित पत्नियों के साथ जाते देखा तथा पिता के यज्ञ की चर्चा भी सुनी तो उन्हें भी अपने पिता के यहाँ जाने की उत्सुकता हुई। उन्होंने भगवान् शंकर से कहा, “देव! आपके ससुर, दक्ष प्रजापति के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। सभी वहाँ पहुँच रहे हैं। मेरी बहनें भी आई होंगी। मेरा मन भी इस अवसर पर मित्र, संबंधी एवं माता-पिता से मिलने का हो रहा है। मैं अपनी जन्मभूमि भी देखना चाहती हूँ। पति, माता-पिता एवं गुरु के यहाँ तो बिन बुलाए जाने में भी कोई दोष नहीं।”

सती की उत्सुकता देखकर भगवान् शिव मन-ही-मन मुसकरा रहे थे। वे समझ रहे थे कि अब सती का विनाश काल आ गया है। उन्हें किस तरह समझाया जाए कि तुम वहाँ अपमान सह नहीं सकोगी। फिर भी एक बार शिव ने प्रेमपूर्ण आग्रह से सती को समझाने का प्रयास किया—“दक्ष प्रजापति अभिमानी हैं। उनका विवेक नष्ट हो चुका है। अहंकारी एवं अनादर करनेवाले संबंधी के यहाँ कदापि नहीं जाना चाहिए। तुम उनकी पुत्री हो और मेरी पत्नी, इसलिए मैंने उनको प्रणाम नहीं किया। उनका अंतःकरण शुद्ध नहीं है, इसलिए उन्होंने इसे अपमान समझा। इसीसे यह सारा मनोमालिन्य उत्पन्न हुआ है। यद्यपि दक्ष प्रजापति तुम्हारे पिता हैं, किंतु वे तुम्हारे पति के शत्रु हैं, इसलिए

तुमको वहाँ कदापि नहीं जाना चाहिए, अन्यथा घोर अनिष्ट हो सकता है।”

यह कहकर भगवान् शिव चुप हो गए। लेकिन सती को तो पिता के यहाँ जाने की प्रबल इच्छा हो रही थी। वे क्षुब्ध होकर बार-बार अंदर-बाहर आ-जा रही थीं। अंत में सती से रहा नहीं गया। वे सोचने लगीं—‘मैं अकेली ही चली जाती हूँ।’

भगवान् शिव ने जब सती की यह भावना देखी तो दुःखी मन से उन्होंने अपने गण नंदी तथा अन्य अनुचरों को उनके साथ कर दिया। शिव ने सती को नंदी पर सवार कराकर, छत्र, चँवर, माला आदि राजचिह्नों से सुसज्जित करके एवं शंख, बाँसुरी आदि ध्वनि यंत्रों के साथ यात्रा पर रवाना कर दिया।

## सती का आत्मदाह

सती दक्ष की यज्ञशाला में पहुँची। वहाँ वेदध्वनि के बीच यज्ञ का उत्सव धूमधाम से हो रहा था। सती को वहाँ देखकर भी दक्ष के क्रोध के भय से सब चुप रह गए; लेकिन सती की माता एवं बहनों ने उठकर उनका स्वागत किया। पिता द्वारा अपने पति की अवहेलना एवं यज्ञ में देवादिदेव शिव का भाग न देखकर सती को माता एवं बहनों द्वारा किया गया स्वागत भी नहीं सुहाया। वे आवेश में तमतमाकर पिता के सन्मुख खड़ी हो गईं। ऐसा लग रहा था कि वे क्रोधाग्नि से सारे संसार को ही भस्म कर देंगीं। सती ने अपमान की अग्नि से दहकते हुए कहा, “पिताजी! भगवान् शंकर से बढ़कर बड़ा तो ब्रह्मांड में कोई भी नहीं है। दो अक्षरों का नाम ‘शिव’ अनायास भी मुख से निकल जाए तो प्राणीमात्र के संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कल्याणकारी शिव से आप शत्रुता करते हैं। आप मेरे पति त्रिगुणात्मक भगवान् शंकर की निंदा करते हैं, इसलिए मैं आपसे उत्पन्न इस शरीर को ही समाप्त किए देती हूँ। आपके रक्त से बना यह शरीर अपवित्र है। आप आत्मज्ञानी भगवान् शिव के प्रति अपराध करनेवाले हैं। इसका उचित दंड मैं अपना शरीर त्यागकर दूँगीं।”

सती ने आचमन लेकर अपने अंतःकरण को शुद्ध किया। फिर पीला वस्त्र ओढ़कर, नेत्र बंद करके योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया।

शिवगणों ने सती को प्राणत्याग करते देखा तो वहाँ भयंकर हाहाकार मच गया। कोलाहल के बीच भगवान् शंकर के द्रोही दक्ष की आलोचना होने लगी। सभी भयभीत हो गए। भगवान् शंकर के गण अत्यंत क्रुद्ध होकर यज्ञ को तहस-नहस करने लगे। वे दक्ष प्रजापति को मार डालने के लिए झपट पड़े। महर्षि भृगु ने यज्ञ में यह विघ्न देखा तो मंत्र द्वारा आहुति डाली, जिसके प्रभाव से यज्ञकुंड से ‘ऋभु’ नाम के सहस्रों देवता उत्पन्न हो गए। ब्रह्मतेज से बलवान् ऋभुओं ने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर शिवगणों पर आक्रमण कर दिया। शिवगण इधर-उधर भाग निकले।

भगवान् शिव ने जब यह सुना कि सती ने यज्ञकुंड में देहत्याग कर दिया और उनके सेवक एवं गणों को यज्ञवेदी से प्रकट हुए ऋभु देवों ने मारकर भगा दिया तो उन्हें प्रचंड क्रोध आया। शिव का ‘संहारक’ उग्र स्वरूप प्रकट हुआ। उन्होंने जटाएँ खोल दीं और उसमें से एक जटा उखाड़कर भयंकर अट्टहास के साथ उसे पृथ्वी पर जोर से पटक दी। उसमें से सहस्रों हाथों और तीन प्रखर नेत्रोंवाला नरमुंडधारी एक महान् तेजस्वी वीर प्रकट हुआ। वह रुद्र का ही एक अंश था—‘वीरभद्र’! उसने हाथ जोड़कर भगवान् शिव से कहा, “देव! मुझे क्या आज्ञा है?”

शिव ने गंभीर वाणी में कहा, “पुत्र! इन समस्त गणों के अधिपति बनकर जाओ और दक्ष एवं उसके यज्ञ को नष्ट कर दो!”

वीरभद्र भगवान् शिव की परिक्रमा करके सिंहगर्जना करता हुआ वेग से वहाँ से दौड़ पड़ा।

यज्ञशाला में हाहाकार मचाती हुई भीड़ ने देखा कि उत्तर दिशा से महाभयंकर आँधी-सी आ रही है। वे और भी भयभीत हो उठे—अब क्या संकट आएगा? कहीं प्रलय तो नहीं होनेवाला! दक्ष की पत्नी प्रसूता व्याकुल होकर

अपनी बेटियों से कहने लगी, “निरपराध सती के तिरस्कार के पाप का फल भोगने के लिए तैयार हो जाना चाहिए! भगवान् शिव का तीसरा नेत्र खुल गया है। वे तांडव नृत्य करते हुए संहार के लिए निकल पड़े हैं। त्रिगुणात्मक भगवान् शंकर का अपमान करनेवालों का कभी कल्याण नहीं हो सकता!”

उसी समय आकाश एवं पृथ्वी तथा सभी दिशाओं में उत्पात होने लगे। शिवगणों ने यज्ञशाला में घुसकर सभामंडप आदि तोड़-फोड़ दिए। ऋषि-मुनियों में भी जो दक्ष के अनुचर थे, उन्हें बाँध दिया। प्रजापति दक्ष को पकड़ लिया। भयंकर कोलाहल मचाते हुए उन्होंने महर्षि भृगु की दाढ़ी नोच ली। भग देवता की आँखें निकाल लीं, क्योंकि उन्होंने दक्ष को आँख के इशारे से शिव का अपमान करने के लिए उकसाया था। पूषा के दाँत उखाड़ लिये। फिर दक्ष प्रजापति की छाती पर चढ़कर वे तलवार से उनका सिर काटने लगे। जब बहुत प्रयत्न करके भी उनकी मोटी खाल नहीं कटी, तब वीरभद्र को आश्चर्य हुआ। वीरभद्र के ध्यान में आया कि यज्ञमंडप में जिस प्रकार पशु-बलि के समय एक ही वार में पशुओं का सिर धड़ से अलग करके हवन किया जाता है उसी प्रकार इस पशु का भी वध करना चाहिए। तत्क्षण वीरभद्र ने बलि-पशुओं को मारनेवाला हथियार उठा लिया और दक्ष के सिर पर वार करके एक झटके में ही सिर घड़ से अलग कर दिया और उसे यज्ञकुंड में फेंक दिया। फिर यज्ञशाला को आग लगाकर वे अपनी सेना के साथ कैलाश पर्वत के लिए रवाना हो गए।

## यज्ञपशु बकरे का सिर दक्ष के धड़ पर

यज्ञोत्सव में उपस्थित देवी-देवता भयभीत होकर ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा एवं श्रीहरि इस ‘भावी’ को जानते थे, इसलिए यज्ञ में नहीं गए थे। ब्रह्मा ने देवर्षियों एवं महर्षियों से कहा, “तुम लोगों ने भगवान् शिव को यज्ञभाग न देकर उनका घोर अपमान किया है। तुम सब अब उन्हीं के पैर पकड़कर उनसे क्षमा माँगो और उन्हें प्रसन्न करो। तभी तुम इस यज्ञ को पुनः आरंभ करके पूर्ण कर सकते हो। शिव को अप्रसन्न करके तुम यज्ञ तो क्या, इस विश्व को भी नहीं बचा सकोगे!” ब्रह्मा के इस प्रकार समझाने पर सभी देवता एवं ऋषि-मुनि ब्रह्मा के साथ ही कैलाश पर्वत पर गए।

कैलाश पर्वत पर शिव ध्यान-मुद्रा में बैठे थे। देवताओं तथा ऋषि-मुनियों के साथ ब्रह्मा को देखकर शिव उठ खड़े हुए। ब्रह्मा ने नम्रतापूर्वक कहा, “हे महादेव! आप परब्रह्म हैं। आपके प्रभाव को जानने में मैं भी असमर्थ ही हूँ। दक्ष ने यज्ञ में आपका महाभाग न देकर घोर पाप किया, इसी कारण उसके यज्ञ का नाश हुआ है। महादेव, आप यज्ञपुरुष हैं, इसलिए आपको यज्ञ का भाग पाने का पूर्ण अधिकार है। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तथा यज्ञ को पूर्ण करने की कृपा करें। प्रभु, आप सर्वज्ञ हैं। आप इस अपूर्ण यज्ञ के पुनरुद्धार हेतु कुछ ऐसा कीजिए जिससे यज्ञमान दक्ष पुनः जी उठे। भग देवता को नेत्र तथा भृगु की दाढ़ी-मूँछ एवं पूषा के दाँत फिर निकल आएँ। आपके गणों द्वारा की गई तोड़-फोड़ से जिन-जिनके अंग-भंग हो गए हैं, उन्हें पुनः वे अंग प्राप्त हो जाएँ तथा वे यज्ञ को पूर्ण कर सकें। हे प्रभो! यह विध्वस्त यज्ञ आपके ही भाग से पूर्ण हो।”

भगवान् शंकर ब्रह्मा की प्रार्थना तर्कमुद्रा में ही खड़े-खड़े सुन रहे थे। वे प्रसन्न होकर बोले, “मैं दक्ष जैसे दुर्बुद्धि, अज्ञानी के दोषों की ओर कभी ध्यान नहीं देता, न चर्चा ही करता। मैंने तो शिक्षा देने के लिए नाममात्र का दंड उन्हें दिया है। दक्ष का सिर अग्नि में जल गया है, अतः यज्ञ के बलिपशु बकरे का शीश ही अब उनके मस्तक पर होगा। भृगु देवता को नेत्र तथा पूषा के दाँत नष्ट हो गए हैं, अतः वे दक्ष के दाँतों से अपना भोजन करेंगे। भृगु की दाढ़ी-मूँछें बकरे के समान हो जाएँगी।” भगवान् शंकर स्वयं भी ब्रह्मा के साथ दक्ष प्रजापति के यज्ञ में आए। उन्होंने यज्ञपशु बकरे का सिर प्रजापति दक्ष के धड़ पर जोड़ दिया। उनकी एक दिव्य दृष्टि से ही दक्ष प्रजापति जीवित होकर उठ बैठे। उन्होंने भगवान् शंकर की हाथ जोड़कर प्रार्थना की तथा अपनी प्रिय पुत्री सती का स्मरण

करके रो पड़े। उन्होंने पुनः-पुनः शिवजी को प्रणाम किया और कहा, “मैं आपका अपराधी हूँ, मुझ पर दया कीजिए।” भगवान् शिव प्रसन्न हुए। उनकी कृपा से यज्ञ पूर्ण हुआ। यज्ञपुरुष साक्षात् भगवान् विष्णु का भी वहाँ आगमन हुआ। दक्ष ने शंकर भगवान् की पूजा करके उनको श्रद्धा एवं आदरपूर्वक यज्ञ-भाग प्रदान किया।

देवी सती ने दूसरे जन्म में हिमालय की पत्नी मैना के गर्भ से पार्वती के रूप में जन्म लिया और भगवान् शंकर से ही विवाह किया। शिव-पार्वती का स्वरूप संपूर्ण विश्व में पूजा जाता है। हिमालय में आज भी शिव-पार्वती के प्रत्यक्ष अस्तित्व की धारणा बनी हुई है।



## ध्रुव का वन गमन

**स्वा**यंभुव मनु एवं शतरूपा के दो पुत्र थे—प्रियव्रत एवं उत्तानपाद। उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं—सुनीति एवं सुरुचि। सुनीति बड़ी रानी थी। उसके पुत्र थे—ध्रुव। छोटी रानी सुरुचि राजा की परमप्रिय थी। उससे उत्तम नाम का पुत्र था।

एक दिन पाँच वर्षीय बालक ध्रुव खेलता हुआ अपने पिता के पास पहुँच गया। पिता की गोद में उत्तम को बैठा देखकर बालक ध्रुव की इच्छा भी पिता की गोद में बैठने की हुई। ध्रुव पिता के पास आकर खड़ा हुआ। राजा ने ध्रुव को भी गोद में बैठा लिया। इतने में राजा की लाड़ली रानी सुरुचि वहाँ आ पहुँची। मत्सर एवं ईर्ष्या से उत्तेजित होकर रानी ने बालक ध्रुव को पिता की गोद से धकेल दिया और कहा, “राजा की गोद में बैठने का अधिकार तुमको नहीं है। यदि तुम्हें यहाँ बैठना है तो मेरी कोख से पैदा होना पड़ेगा।”

सौतेली माँ की प्रताड़ना से बालक ध्रुव रोने लगा। उपेक्षिता रानी सुनीति ने बालक को रोते देखा तो व्याकुल होकर उसे गोद में उठा लिया। बालक ध्रुव ने रो-रोकर विमाता की प्रताड़ना तथा कटु शब्दों के विषय में माता को बताया तो सुनीति को बहुत दुःख हुआ। उसने अत्यंत शोकग्रस्त होकर पुत्र से कहा, “बेटा! तुम मुझ अभागिनी की कोख से पैदा हुए हो। तुम्हें न तो पिता की गोद मिलेगी न यह राज-पाट ही। तुम्हें तो अब श्रीहरि की शरण में ही जाना होगा। वे ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुम भगवान् श्रीनारायण की आराधना करो तभी यह दुःख दूर होगा।”

सुनीति ने बालक ध्रुव को समझाया कि तुम्हारे दादा स्वायंभुव मनु ने भी भगवान् की आराधना, यज्ञ एवं तपस्या से उन्हें प्रसन्न करके ही मोक्षपद की प्राप्ति की थी।

बालक ध्रुव ने माता सुनीति के सार्थक वचनों को सुनकर सोचा। फिर दृढ़ निश्चय करके पिता के नगर से निकल पड़े। वे जंगल में जा रहे थे तो मार्ग में ‘नारायण-नारायण’ कीर्तन करते वीणा हाथ में लिये नारद उनके सामने खड़े हो गए। उन्होंने मन-ही-मन विस्मित होकर सोचा—भगवान् की कैसी लीला है! क्षत्रिय का यह अद्भुत तेज है, थोड़ा सा मानभंग भी यह छोटा सा बालक नहीं सह सका। सौतेली माता के कटु वचन बालक के हृदय में कैसे बिंध गए हैं!

नारद ने बालक ध्रुव के सिर पर हाथ फेरते हुए स्निग्ध वाणी में कहा, “बेटा! पाँच वर्ष की उम्र में ही तुम अकेले कहाँ जा रहे हो? तुम्हारे तो खेलने-कूदने के दिन हैं। तुम इस उम्र में भला मान-अपमान की चिंता क्यों कर हो? भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है; किंतु भगवान् की प्राप्ति सहज ही नहीं होती। तुम अभी बहुत छोटे हो। घर लौट जाओ।”

बालक ध्रुव तो दृढ़ निश्चय से घर छोड़कर आए थे। बोले, “भगवन्! मैं क्षत्रिय हूँ। मेरा स्वभाव भी क्रोधी है। मुझे माता सुरुचि के शब्द शूल की तरह चुभ रहे हैं। मुझे तो आप केवल वह मार्ग बताइए जिससे मैं श्रीहरि का दर्शन प्राप्त कर सकूँ। आपसे बढ़कर उत्तम गुरु मुझे अन्य कोई नहीं मिलेगा।”

नारद बालक ध्रुव की ज्ञानयुक्त वाणी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। बोले, “बेटा, भगवान् नारायण की आराधना ही आपको प्राप्त करने का सुगम मार्ग है। उन्हींकी कृपा से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अब तुम कालिंदी तट पर मधुवन में जाओ। वह भगवान् श्रीहरि का नित्य-निवास है।”

भगवान् के सुंदर स्वरूप का वर्णन करते हुए नारद ने बालक ध्रुव को द्वादशाक्षर मंत्र ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’ का जप करने का उपदेश दिया।

नारद से उपदेश ग्रहण करके ध्रुव ने उनकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रणाम किया और मधुबन के लिए चल पड़े। नारद वहाँ से राजा उत्तानपाद के पास पहुँचे। राजा को उदास देखकर नारद ने पूछा, “राजन्! तुम किस सोच-विचार में पड़े हुए हो? तुम्हारे सुख में कोई कमी तो नहीं आ गई?”

राजा ने कहा, “भगवन्, मैं बड़ा ही पापी, निर्दयी और स्त्री का गुलाम हूँ। मेरी कुटिलता से ही पाँच वर्ष का सरल, बुद्धिमान् बालक घर से चला गया है!”

नारद बोले, “राजन्! तुम चिंता न करो। वह बालक बड़ा प्रभावशाली है। उसके रक्षक तो साक्षात् परमात्मा हैं। यह बालक अपना यश संपूर्ण पृथ्वी पर फैलाएगा। तुम्हारे पिता मनु एवं उनके भी पिता भगवान् ब्रह्मा के समान यह तुम्हारा पुत्र भी ब्रह्मज्ञानी होगा। इसके प्रभाव से तुम्हारा यश भी इस संसार में फैलेगा।”

ध्रुव ने मधुबन में जाकर यमुना में स्नान किया। फिर नारद के उपदेशानुसार उन्होंने रात्रि में उपवास रखकर श्रीनारायण की उपासना प्रारंभ कर दी। उन्होंने तीन दिन में एक बार बेर अथवा कैथ खाकर एक मास व्यतीत किया। दूसरे माह में उन्होंने छह-छह दिन में सूखी घास एवं पत्ते खाकर, तीसरे मास में नौ-नौ दिन बाद केवल जल पीकर श्रीहरि की आराधना की। चौथे मास में वे श्वास को जीतकर बारह-बारह दिन में वायु का पान करके ध्यानयोग द्वारा श्रीहरि की आराधना करते रहे। पाँचवें मास में ध्रुव श्वास को जीतकर एक पैर पर खड़े-खड़े परब्रह्म के चिंतन में लीन रहे। मन में श्रीहरि के स्वरूप का ध्यान करके उन्होंने चित्त वहीं स्थिर कर लिया।

ध्रुव की इस कठिन तपस्या से तीनों लोक काँप उठे। जब वह एक पैर से धरती पर खड़े थे तो उनके अँगूठे से पृथ्वी झुक गई। ध्रुव ने अपने प्राणों को रोककर श्रीहरि में ध्यान लगाया तो जीवमात्र के श्वास रुक से गए। इस कारण देवता घबराकर भगवान् श्रीहरि की शरण में पहुँचे। इस संकट से मुक्त करने का आग्रह किया।

भगवान् नारायण ने देवताओं को अभयदान दिया और कहा, “मैं ध्रुव को तप से निवृत्त करने जा रहा हूँ।”

भगवान् गरुड़ पर बैठकर अपने प्रिय भक्त को देखने मधुबन में आए। उस समय ध्रुव योगाभ्यास से अपने हृदय में देदीप्यमान मूर्ति को स्थिर करके ध्यानमग्न थे। वह मूर्ति सहसा अदृश्य हो गई। ध्रुव ने घबराकर आँखें खोल दीं। सामने वही मूर्ति प्रत्यक्ष देखकर ध्रुव ने पृथ्वी पर लोटकर प्रणाम किया। वे बड़े कुतूहल से भगवान् को देख रहे थे जैसे नेत्रों से, मुख से, श्वास से भगवान् की छवि को पी जाना चाहते थे। वे शब्दों से उनकी स्तुति करना चाहते थे, लेकिन श्रीहरि की ओर टकटकी लगाए देखते ही रह गए। भगवान् ने उनकी भावना को समझा और शंख से उनके गाल को छू दिया। शंख का स्पर्श होते ही ध्रुव को दिव्यवाणी प्राप्त हो गई। वे भक्ति-भाव से स्तुति करने लगे—

“मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे तो आप अपने भक्तजनों का संग प्रदान करें, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है। उनके संग मैं आपकी लीलाओं की कथा सुनकर मुक्त हो जाऊँगा और सहज ही इस संसार-सागर से पार हो जाऊँगा।”

भगवान् श्रीहरि ने कहा, “तुम्हारे संकल्प को मैं जानता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें वह दुर्लभ पद प्राप्त होगा जिसके चारों ओर ज्योतिश्चक्र घूमता रहता है, तथा जिसके चारों ओर ग्रह-नक्षत्र घूमते हैं। प्रलयकाल में भी जिसका नाश नहीं होता। सप्तर्षि भी जिसकी प्रदक्षिणा करते रहे हैं—वह ‘ध्रुवपद’ तुमको प्राप्त होगा। इस लोक में पृथ्वी पर हजारों वर्ष शासन करके, सभी ऐश्वर्य भोगकर तुम अंत में मेरे लोक को प्राप्त करोगे।” ऐसा वर देकर भगवान् नारायण अपने लोक को चले गए।

## ध्रुव का यक्षों से युद्ध

ध्रुव अपने नगर को लौट आए किंतु उनका चित्त प्रसन्न नहीं था। वे सोचते थे—‘श्रीहरि के साक्षात् दर्शन के बाद भी मोक्ष न माँगकर मैंने यह क्या किया!’ इस विचार से अस्वस्थ से हुए ध्रुव सोचने लगे—‘मुक्तिदाता श्रीहरि के

दर्शन के समय भी मेरे मन में सौतेली माता के कटु वचनों की स्मृति ने ही मुझे मुक्ति नहीं माँगने दी। अब पश्चात्ताप से क्या होगा? मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ।’

राजा उत्तानपाद ने जब सुना कि उनका पुत्र वापस आ रहा है तो वे सभी मंत्रियों, बंधु-बंधवों के साथ मांगलिक वाद्य तथा उत्तम सवारियों को लेकर ध्रुव की अगवानी के लिए चल पड़े। पुत्र को देखते ही वे दौड़कर पास पहुँचे और ध्रुव को बाहुपाश में बाँधकर गोद में उठा लिया। वे उन्हें बार-बार प्यार करने लगे।

ध्रुव ने पिता तथा दोनों माताओं के चरण स्पर्श किए, भाई उत्तम को गले लगाया। माता सुरुचि ने भी उन्हें हृदय से लगाकर चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। माँ सुनीति ने पुत्र को छाती से लगा लिया। छोटे भाई उत्तम के साथ ध्रुव हाथी पर सवार होकर महल में पहुँचे।

समय आने पर पिता उत्तानपाद ध्रुव को राजसिंहासन देकर तपस्या के लिए वन को चले गए।

ध्रुव का विवाह हो गया। छोटे भाई उत्तम का अभी विवाह नहीं हुआ था। एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया। वहीं पर यक्षों ने उसे मार डाला। पुत्र शोक में माता सुरुचि स्वयं अग्नि में भस्म हो गई।

ध्रुव ने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए यक्षों पर आक्रमण कर दिया और उनका विनाश करने लगे। अकेले ही धनुर्धारी ध्रुव ने असंख्य यक्षों को मार डाला तो उनके दादा स्वायंभुव मनु ने आकर उनसे कहा, “इतना क्रोध मत करो बेटा! निर्दोष यक्षों को मारकर प्राणी-हिंसा करना भक्तजनों के लिए उचित नहीं है। तुम इस हत्या को रोक दो। ये यक्ष लोग भगवान् शंकर के मित्र कुबेर के सेवक हैं। तुम्हारे भाई की हत्या करनेवाले ये यक्ष नहीं हैं। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।”

मनु के समझाने पर ध्रुव ने अपने धनुष-बाण रथ में रख दिए। इस घटना से कुबेर प्रसन्न हुए। उन्होंने ध्रुव को भगवान् की सतत स्मृति का वरदान दिया।

धर्मपूर्वक छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् ध्रुव राज-पाट तथा समस्त ऐश्वर्य का त्याग करके बद्रिकाश्रम में चले गए। वहाँ भगवान् के पार्षद एक सुंदर विमान लेकर आए और ध्रुव को विष्णुलोक ले गए। माता सुनीति के विषय में पूछने पर पार्षदों ने बताया कि वे पहले ही उस मार्ग से जा रही हैं। ध्रुव ने अपनी तपस्या की अद्भुत शक्ति से भगवान् श्रीहरि को अपने वश में कर लिया। अंततः उन्होंने ध्रुवलोक प्राप्त कर लिया, जहाँ अविनाशी परमात्मा का ज्योतिश्चक्र सदा घूमता रहता है। ध्रुव का वह अटल स्थान हम आकाश में ‘ध्रुव तारे’ के चारों ओर घूमते हुए सप्तर्षि मंडल के साथ देखते हैं।





## राजा पृथु : विष्णु भगवान् के अंशावतार

ध्रुव के वनगमन के पश्चात् उनके पुत्र उत्कल को राजसिंहासन पर बैठाया गया। लेकिन वे ज्ञानी एवं विरक्त पुरुष थे, अतः प्रजा ने उन्हें मूढ़ एवं पागल समझकर राजगद्दी से हटा दिया और उनके छोटे भाई भ्रमिपुत्र वत्सर को राजगद्दी पर बिठाया। उन्होंने तथा उनके पुत्रों ने लंबी अवधि तक शासन किया।

उनके ही वंश में एक राजा हुए—अंग। उनके यहाँ वेन नाम का पुत्र हुआ। वेन की क्रूरता तथा निर्दयता से दुःखी होकर राजा अंग वन को चले गए। वेन ने राजगद्दी सँभाल ली। वह और भी निरंकुश हो गया। अत्यंत दुष्ट प्रकृति का होने के कारण अंत में ऋषियों ने उसे शाप देकर मार डाला। वेन की कोई संतान नहीं थी। अतः उसकी दाहिनी भुजा का मंथन किया गया। तब राजा पृथु का जन्म हुआ।

ध्रुव के वंश में वेन जैसा क्रूर जीव क्यों पैदा हुआ। इसके पीछे क्या रहस्य है—यह जानने की इच्छा बड़ी स्वाभाविक है। अंग राजा ने अपनी प्रजा को सुखी रखा था। एक बार उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। उस समय देवताओं ने अपना भाग ग्रहण नहीं किया; क्योंकि अंग राजा के कोई संतान नहीं थी। मुनियों के कथनानुसार, अंग राजा ने उस यज्ञ को अधूरा ही छोड़कर पुत्र प्राप्ति के लिए दूसरा यज्ञ किया। आहुति देते ही यज्ञ में से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। उसने राजा को खीर का एक पात्र दिया। राजा ने खीर का पात्र लेकर उसे सूँघा फिर अपनी पत्नी को दे दिया। पत्नी ने उस खीर को ग्रहण किया।

समय आने पर उसके गर्भ से एक पुत्र हुआ; किंतु माता अधर्मी वंश की पुत्री थी, इस कारण वह संतान अधर्मी हुई। यही अंग राजा का पुत्र वेन था।

वेन के अंश से राजा पृथु हुए। पृथु की हस्तरेखाओं तथा पाँव में कमलचिह्न था। हाथ में चक्र का चिह्न था। वे विष्णु भगवान् के ही अंश थे। ब्राह्मणों ने राजा पृथु का राज्याभिषेक किया और उन्हें सम्राट् बना दिया। उस समय पृथ्वी अन्नहीन थी। प्रजा भूखी मर रही थी। लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। प्रजा का करुण क्रंदन सुनकर राजा पृथु अति दुःखी हुए। जब उन्हें मालूम हुआ कि पृथ्वी माता ने अन्न, ओषधि आदि को अपने उदर में छिपा लिया है तो वे धनुष-बाण लेकर पृथ्वी को ही मारने के लिए दौड़ पड़े। पृथ्वी ने जब देखा कि अब उसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता तो वह राजा पृथु की शरण में ही आई। जीवनदान की याचना करती हुई वह बोली, “मुझे मारकर अपनी प्रजा को जल पर कैसे रखेंगे?”

पृथु ने कहा, “स्त्री पर हाथ उठाना अवश्य ही अनुचित है; लेकिन जो पालनकर्ता अन्य प्राणियों के साथ निर्दयता का व्यवहार करता है, उसे दंड अवश्य ही देना चाहिए।” पृथ्वी ने राजा को नमस्कार करके कहा, “मेरा दोहन करके आप सबकुछ प्राप्त करें। आपको मेरे योग्य बछड़ा और दोहन-पात्र का प्रबंध करना पड़ेगा। मेरी संपूर्ण संपदा को दुराचारी चोर लूट रहे थे, अतः मैंने यह सामग्री अपने गर्भ में सुरक्षित रखी है। मुझे आप समतल बना दीजिए।”

राजा पृथु संतुष्ट हुए। उन्होंने मनु को बछड़ा बनाया एवं स्वयं अपने हाथों से पृथ्वी का दोहन करके अपार धन-धान्य प्राप्त किया। फिर देवताओं तथा महर्षियों को भी पृथ्वी के योग्य बछड़ा बनाकर विभिन्न वनस्पति, अमृत, सुवर्ण आदि इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कीं। पृथ्वी के दोहन से विपुल संपत्ति एवं धन-धान्य पाकर राजा पृथु अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने पृथ्वी को अपनी कन्या के रूप में स्वीकार किया। पृथ्वी को समतल बनाकर पृथु ने स्वयं पिता की भाँति प्रजाजनों के कल्याण एवं पालन-पोषण का कर्तव्य पूरा किया।

राजा पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए। स्वयं भगवान् यज्ञेश्वर उन यज्ञों में आए साथ ही सब देवता भी आए। पृथु

के इस उत्कर्ष को देखकर इंद्र को ईर्ष्या हुई। उनको संदेह हुआ कि कहीं राजा पृथु इंद्रपद न प्राप्त कर लें। उन्होंने सौवें यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। जब इंद्र घोड़ा लेकर आकाश मार्ग से भाग रहे थे तो अत्रि ऋषि ने उन्हें देख लिया। उन्होंने राजा को बताया और इंद्र को पकड़ने के लिए कहा। राजा ने अपने पुत्र को आदेश दिया। पृथुकुमार ने भागते हुए इंद्र का पीछा किया। इंद्र ने वेश बदल रखा था। पृथु के पुत्र ने जब देखा कि भागनेवाला जटाजूट एवं भस्म लगाए हुए है तो उसे धार्मिक व्यक्ति समझकर बाण चलाना उपयुक्त नहीं समझा। वह लौट आया और अत्रि मुनि ने उसे पुनः पकड़ने के लिए भेजा। फिर से पीछा करते पृथुकुमार को देखकर इंद्र घोड़े को वहीं छोड़कर अंतर्धान हो गए। पृथुकुमार अश्व को लेकर यज्ञशाला में आए। सभी ने उनके पराक्रम की स्तुति की। अश्व को पशुशाला में बाँध दिया गया। इंद्र ने छिपकर पुनः अश्व को चुरा लिया। अत्रि ऋषि ने यह देखा तो पृथुकुमार से कहा। पृथुकुमार ने इंद्र को बाण का लक्ष्य बनाया तो इंद्र ने अश्व को छोड़ दिया और भाग गया। इंद्र के इस षड्यंत्र का पता पृथु को चला तो उन्हें बहुत क्रोध आया। ऋषियों ने राजा को शांत किया और कहा, “आप व्रती हैं, यज्ञपशु के अतिरिक्त आप किसीका भी वध नहीं कर सकते। लेकिन हम मंत्र द्वारा इंद्र को ही हवनकुंड में भस्म किए देते हैं।” यह कहकर ऋत्विजों ने मंत्र से इंद्र का आह्वान किया। वे आहुति डालना ही चाहते थे कि ब्रह्मा वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने सबको रोक दिया। उन्होंने राजा पृथु से कहा, “तुम और इंद्र दोनों ही परमात्मा के अंश हो। तुम तो मोक्ष के अभिलाषी हो। इन यज्ञों की क्या आवश्यकता है? तुम्हारा यह सौवाँ यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ है, इसकी चिंता मत करो। यज्ञ को रोक दो। इंद्र के पाखंड से जो अधर्म उत्पन्न हो रहा है, उसका नाश करो।”

भगवान् विष्णु स्वयं इंद्र को साथ लेकर पृथु की यज्ञशाला में प्रकट हुए। उन्होंने पृथु से कहा, “मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। यज्ञ में विघ्न डालनेवाले इस इंद्र को तुम क्षमा कर दो। राजा का धर्म प्रजा की रक्षा करना है। तुम तत्त्वज्ञानी हो। भगवत्प्रेमी शत्रु को भी समभाव से देखते हैं। तुम मेरे परमभक्त हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो।”

राजा पृथु भगवान् के प्रिय वचनों से प्रसन्न थे। इंद्र लज्जित होकर राजा पृथु के चरणों में गिर पड़े। पृथु ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया।

राजा पृथु ने भगवान् से कहा, “भगवान्, सांसारिक भोगों का वरदान मुझे नहीं चाहिए। यदि आप देना ही चाहते हैं तो मुझे सहस्र कान दीजिए, जिससे आपका कीर्तन, कथा एवं गुणानुवाद हजारों कानों से श्रवण करता रहूँ। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए।”

भगवान् श्रीहरि ने कहा, “राजन्! तुम्हारी अविचल भक्ति से मैं अभिभूत हूँ। तुम धर्म से प्रजा का पालन करो।”

राजा पृथु ने पूजा करके उनका चरणोदक सिर पर चढ़ा लिया।

राजा पृथु की अवस्था जब ढलने लगी तो उन्होंने अपने पुत्र को राज्य का भार सौंपकर पत्नी अर्चि के साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया। वे कठोर तपस्या करने लगे। अंत में तप के प्रभाव से भगवान् में चित्त स्थिर करके उन्होंने देह का त्याग कर दिया। उनकी पतिव्रता पत्नी महारानी अर्चि पति के साथ ही अग्नि में भस्म हो गई। दोनों को परमधाम प्राप्त हुआ।

## राजा प्राचीनबर्हि

राजा पृथु के वंश में ही राजा प्राचीनबर्हि ने जन्म लिया। उनका विवाह समुद्र-कन्या शतद्रुति से हुआ था। सर्वांगसुंदरी समुद्र-पुत्री शतद्रुति की जब वहाँ भाँवरें पड़ रही थीं तब स्वयं अग्निदेव भी उसपर मोहित हो गए थे। देवी, देवता, असुर, मुनि, गंधर्व, सिद्ध, मनुष्य—सभी उसकी सुंदरता से उसके वश में हो गए थे। इनके प्रचेता नामक दस पुत्र हुए। सभी दस हजार वर्ष तक श्रीहरि की आराधना-तपस्या करने के लिए घर से निकल पड़े। मार्ग में एक स्थान पर उन्हें समुद्र जैसा विशाल, अत्यंत रमणीक सरोवर दिखाई दिया। वृक्ष एवं लताओं की भीनी-भीनी

सुगंध एवं भौरों की गुंजन से मन को मोहनेवाली ध्वनि सुनकर प्रचेता मुग्ध होकर देखने लगे। उन्होंने देखा—भगवान् शंकर स्वर्ण समान कांतिवान, नीलकंठ, त्रिनेत्र से शोभायमान उस सरोवर से बाहर निकल रहे थे। प्रचेताओं ने शंकर के चरणों में प्रणाम किया। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर कहा, “प्राचीनबर्हि के पुत्रो! तुम्हारे संकल्प को मैं जानता हूँ। तुम भगवान् के अनन्य भक्त हो, तुम्हारा कल्याण हो! भगवद् भक्त होने से तुम लोग मुझे भगवान् के समान ही प्रिय हो। मैं तुम्हें कल्याणकारी एवं मंगलमय स्तोत्र सुनाता हूँ। तुम शुद्ध भाव से उसका वाचन करना।”

भगवान् शंकर ने राजकुमारों को स्तोत्र सुनाया। भगवान् के सर्वांगगुणों के वर्णन से युक्त स्तोत्र का मनन-चिंतन करते हुए भगवान् शिव के चरणों में प्रणाम किया। भगवान् शंकर अंतर्धान हो गए। सभी प्रचेता जल में खड़े होकर भगवान् रुद्र के बताए स्तोत्र का पाठ करते हुए हजारों वर्ष तपस्या करते रहे।



## पुरंजनोपाख्यान

प्राचीनकाल में पुरंजन नाम का एक यशस्वी राजा था। उसका एक अविज्ञात नाम का मित्र था। उसकी बातों को कोई समझ नहीं सकता था। राजा एक बार अपने रहने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज कर रहा था, लेकिन उसे कहीं भी उसके अनुरूप स्थान नहीं मिला। एक दिन घूमते-घूमते वह हिमालय की दक्षिणी तलहटी में पहुँचा। वहाँ उसे नौ द्वारोंवाला एक नगर दिखाई दिया। नगर के बाहर सुंदर सरोवर एवं एक बगीचा भी था। वहाँ के सुरम्य वातावरण, पक्षियों के कलरव तथा लता एवं वृक्षों की मोहक सुगंध से राजा आकर्षित हुआ। वह उस बगीचे में घूमने लगा। उसी समय वहाँ एक बहुत ही रूपवती युवती ने प्रवेश किया। युवती अकस्मात् वहीं चली आई जहाँ राजा घूम रहा था। दस सेवक तथा पाँच फनोंवाला एक नाग उस युवती की रक्षा करते थे। वह सुंदरी विवाह के लिए पति की खोज में निकली थी। राजा पुरंजन उसके सलौने, सुंदर स्वरूप को देखकर मोहित हो गया। उसने कन्या से पूछा, “देवी! तुम किसकी कन्या हो? या कोई स्वर्गलोक से उतरी हुई देवी हो! तुमको देखकर मेरा मन बेकाबू हो रहा है। तुम मुझ पर कृपा करो।”

युवती भी राजा पर मोहित हो गई थी। उसने कहा, “मुझे उत्पन्न करनेवाले का मुझे पता नहीं है, न मैं किसी नाम या गोत्र को जानती हूँ। आज हम इस पुरी में हैं, मात्र इतना ही मुझे ज्ञान है। आप यहाँ पधारे, मेरे लिए सौभाग्य की बात है। मैं आपकी सेवा में अपने-आपको समर्पित कर रही हूँ। इस नौ द्वारोंवाली पुरी में आपके साथ रमण करते हुए मैं आनंद का उपभोग करूँगी।”

राजा पुरंजन अपनी इस सुंदरी रानी के मोहपाश में पूर्णरूप से बँध गया।

एक दिन राजा अकेला ही शिकार के लिए अपने पाँच द्रुत गतिवाले घोड़ों के रथ पर सवार होकर वन में गया। राजा के रथ में दो दंड, दो पहिए, एक धुरी, तीन ध्वजदंड तथा पाँच डोरियों की लगाम, सारथि तथा बैठने का स्थान था। उसपर दो जुए, पाँच आयुध और सात आवरण थे। वह रथ पाँच प्रकार की चाल से चलता था। उस दिन राजा को शिकार का इतना शौक चढ़ा कि अपनी प्रिया को छोड़कर क्षण के लिए भी उससे कभी दूर न जानेवाला राजा लगातार वन में घूम-घूमकर निर्दोष पशुओं का वध करता रहा। दिन-रात पशु-पक्षियों का संहार करते-करते राजा थक गया, तब भूख-प्यास से व्याकुल होकर राजमहल में लौट आया। स्नान, भोजन एवं विश्राम के बाद उसे अपनी रानी की याद आई। अपनी प्रिया को कहीं न देखकर उदास राजा ने अंतःपुर की स्त्रियाँ से पूछताछ की। राजा बिना कुछ खाए-पीए रानी से बिना पूछे ही शिकार के लिए निकल गया था, अतः रानी रूठी बैठी थी। पुरंजन ने उससे अनुरोध किया, “मेरे अपराध को क्षमा करके तुम मुझसे प्रसन्न होकर बात करो।” बहुत नाज-नखरे के बाद रानी प्रसन्न हुई। स्नान करके वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह राजा के पास आई। राजा ने उसे स्नेह से अपने निकट बुला लिया। राजा इतना मोहित हुआ कि उसे काल की गति का भी ध्यान नहीं रहा। राजा की यौवन अवस्था इसी वासना-विहार में निकल गई। बहुत सी संतानों की उत्पत्ति और सबके योग्य विवाह एवं वंशवृद्धि में ही वह फँसा रहा। अंत में वृद्धावस्था के समय आत्मा के कल्याण करनेवाले कर्मों की ओर से अनभिज्ञ राजा पुरंजन के उस नगर पर गंधर्वराज चंडवेग ने आक्रमण कर दिया और अपने अनुचरों के साथ नगर को लूटने लगा।

इन्हीं दिनों काल की एक कन्या ‘जरा’ वर की खोज में त्रिलोक में भटक रही थी। एक बार पुरु राजा ने अपने पिता को अपना यौवन देने के लिए अपनी ही इच्छा से जरा को वर लिया था। तब प्रसन्न होकर उसने पुरु को राज्य प्राप्ति का वर दिया था।

नारद ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर विचरण करने हेतु आए। जरा ने उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपनी कामाग्नि शांत करने हेतु वरना चाहा। नारद ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, तब उसने क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया—‘तुम कभी एक स्थान पर ठहर नहीं सकोगे।’

वहाँ से जरा यवनराज मय के पास पहुँची। यवनराज ने काल कन्या की बात सुनकर उससे विधाता का एक गुप्त कार्य कराने के उद्देश्य से कहा, “मैंने तेरे लिए उपयुक्त पति का निश्चय किया है। तू सबका अनिष्ट करनेवाली है, इसीसे किसीको भी अच्छी नहीं लगती। तू इस कर्मजनित लोक को अलक्षित होकर बलात्कार से भोग! कोई भी तेरा सामना नहीं कर सकेगा। तू मेरी बहन बनकर संपूर्ण पृथ्वी पर विचरण कर, मैं और मेरा भाई तेरी रक्षा करेंगे।”

उसकी बात मानकर जरा ने पुरंजनपुरी को घेर लिया। उसने संपूर्ण प्रजा को पीड़ित किया तथा राजा पुरंजन को भी घोर कष्ट दिया। कालकन्या के स्पर्श एवं आलिंगन से राजा श्रीहीन हो गया और उसकी विवेकशक्ति नष्ट हो गई। राजा अपार चिंता में पड़ गया। अज्ञानवश मोह में फँसा राजा अपनी स्त्री एवं पुत्रों के लिए शोक करने लगा। तब यवन लोग उसे पशु के समान बाँधकर अपने स्थान को ले चले। राजा ने जिन पशु-पक्षियों एवं अन्य प्राणियों का निर्दयता से वध किया था, वे सभी मार्ग में मिले और क्रोधपूर्वक उस दीन-हीन राजा पर कुठाराघात करने लगे। वर्षों तक राजा अंधकूप में पड़ा कष्ट भोगता रहा। अंत समय तक स्त्री में आसक्ति के कारण राजा दूसरे जन्म में विदर्भराज के यहाँ सुंदर कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ। मलयध्वज महाराज ने उस रूपवती कन्या से विवाह किया, जिसके वंशधर द्रविड़ देश के राजा हुए। मलयध्वज अपने पुत्रों को राज्य बाँटकर वन में चले गए। उनकी पत्नी भी उनके साथ थी। अंत में भगवान् श्रीहरि की आराधना करते हुए परब्रह्म में लीन हो गए। उनकी रानी ने राजा के वियोग में अत्यंत शोकग्रस्त होकर सती होने का निश्चय किया। उस समय उनका एक पुराना मित्र आत्मज्ञानी ब्राह्मण वहाँ आया। उसने रानी को समझाया।

ब्राह्मण ने कहा, “सखि, मैं तुम्हारा शुभचिंतक एवं पुराना मित्र हूँ। अविज्ञात मेरा नाम है। हम पहले हंस थे और मानसरोवर में रहते थे। हम सहस्रों वर्ष साथ रहे, लेकिन तुम विषय-भोग की इच्छा से मेरा त्याग करके पृथ्वी पर चली आई।” ब्राह्मण ने सखि को आत्मज्ञान दिया। उन्होंने बताया कि इंद्रियों के पाँच विषय थे; नौ इंद्रिय शरीर के छिद्रद्वार; तेज, जल एवं अन्न तीन परकोटे; मन तथा पाँचों ज्ञानेंद्रियों सहित छह वैश्यकुल थे। बुद्धिशक्ति स्वामिनी थी। यह ऐसा नगर था जिसमें प्रवेश करने पर पुरुष ज्ञानशून्य हो जाता है और अपने स्वरूप को भूल जाता है। तुम भी अपने स्वरूप को उस पुरुष के साथ विहार करते-करते भूल गई थीं। आज उसीके संग से तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है। हम दोनों तो हंस हैं। मैं ईश्वर और तुम जीव हो। मैं वही हूँ जो तुम हो। विद्या और अविद्या की उपाधि के भेद से यह एक ही आत्मा अपने को ईश्वर और जीव के रूप में दो प्रकार से दिखाई देती है।

इस प्रकार जब ईश्वर ने जीव को सावधान किया तो उस स्त्री में आत्मज्ञान का प्रकाश हुआ।

यह शरीर रथ है। नाक, कान आदि द्वार हैं। हृदय अंतःपुर है। उसमें रहने वाला मन सेवक है। जीव विभिन्न हर्ष, प्रसन्नता, शोक आदि मोह को प्राप्त होता है। बुद्धि राजमहर्षि है। आत्मा उसी बुद्धि के गुणों से लिप्त होकर अनुकरण करने को बाध्य होती है। पाप-पुण्य दोनों शरीर रूपी रथ के दो पहिए हैं। पाँच प्राण डोरियाँ हैं। मन बागडोर है। बुद्धि सारथि है। हृदय बैठने का स्थान है। सुख-दुख—दोनों जुए की धुरी हैं। और यह जीव मृगतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ता है। संवत्सर चंडवेग नाम का गंधर्वराज है और उसके साथ की तीन सौ साठ गंधर्वियाँ दिन एवं रात हैं। वृद्धावस्था ही साक्षात् कालकन्या जरा है। यह जीवचित्त में कई प्रकार की वासनाओं के अधीन होकर मार्ग-कुमार्ग से भटकता रहता है तथा कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता रहता है। जब तक यह अज्ञान-निद्रा भंग नहीं होती, जीव को जन्म-मरण के इस चक्र से मुक्ति नहीं मिलती। इसकी निवृत्ति का एकमात्र मार्ग है—

श्रीहरि में सुदृढ़ भक्ति।

नारद ने राजा प्राचीनबर्हि को जीव एवं ईश्वर के स्वरूप का दिव्यदर्शन कराया और सिद्धलोक को चले गए। राजा ने प्रजापालन का भार अपने पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं तपस्या के लिए कपिलाश्रम को चले गए।

प्रचेताओं ने समुद्र में खड़े होकर तपस्या की। भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हुए और गरुड़ पर बैठकर प्रचेताओं के सामने प्रकट हुए। भगवान् ने प्रचेताओं को उत्तम, गुणी पुत्र प्राप्त करने का वरदान दिया। भगवान् श्रीहरि ने आज्ञा दी कि, “प्रम्लोचा नाम की अप्सरा की कमलनयनी कन्या से तुम दसों भाई विवाह करो!”

प्रचेताओं ने समुद्र से निकलकर देखा कि ऊँचे-ऊँचे वृक्षों ने पृथ्वी को ढक लिया है, तो वे बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने पृथ्वी को वृक्षहीन करने के लिए मुख से प्रचंड वायु एवं अग्नि छोड़ी। तब ब्रह्मा ने प्रचेताओं को समझाकर शांत किया। फिर वनस्पति जगत् ने प्रम्लोचा अप्सरा की जिस कन्या का लालन-पालन किया था, उसे लाकर प्रचेताओं को समर्पित किया। ब्रह्मा के कहने पर दूसरे प्रचेताओं ने उस कन्या का पाणिग्रहण किया। पूर्व जन्म में राजा दक्ष को महादेव की अवज्ञा के कारण शरीर त्यागना पड़ा था। वही दक्ष प्रचेताओं के यहाँ उस कन्या के गर्भ से प्रजापति के नाम से उत्पन्न हुए। बहुत वर्ष तक राज्य करने के बाद प्रचेताओं ने प्रजापति को राज्यभार सौंप दिया और पत्नी के साथ परब्रह्म का चिंतन करने समुद्र तट पर चले गए।



## प्रियव्रत चरित्र

**स्वा**यंभुव मनु के दो पुत्र थे—प्रियव्रत एवं उत्तानपाद। उत्तानपाद के वंश में ध्रुव थे। प्रियव्रत बड़े आत्मज्ञानी थे। उन्होंने नारद से परमार्थ तत्त्व का उपदेश ग्रहण करके ब्रह्माभ्यास में जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प कर लिया। ब्रह्मा को चिंता हुई कि प्रियव्रत के इस परमार्थ तत्त्व के आग्रह से तो सृष्टि का विस्तार ही रुक जाएगा। स्वायंभुव मनु की आज्ञा का भी इस आत्मयोगी राजकुमार ने मान नहीं किया है। वे हंस पर आरूढ़ होकर राजकुमार प्रियव्रत के पास आए। नारद भी वहीं थे। ब्रह्मा को देखते ही नारद, स्वायंभुव मनु तथा प्रियव्रत उठ खड़े हुए और प्रणाम-सत्कार किया। ब्रह्मा ने सभी को आशीर्वाद देकर आसन ग्रहण किया।

ब्रह्मा ने प्रियव्रत से कहा, “बेटा! मैं तुमसे सत्य सिद्धांत की बात कहता हूँ। हम सब—तुम्हारे पिता, तुम्हारे गुरु, यह नारद, भगवान् महादेव तथा मैं स्वयं भी भगवान् श्रीहरि की ही आज्ञा मानकर सारे कर्म करते हैं। उनके विधान को कोई नहीं जान सकता। उनकी इच्छानुसार ही सब कर्मों को भोगते हुए हम अपना जन्म सफल करने हेतु निस्संग होकर श्रीहरि के आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। जिनका चित्त श्रीहरि के पवित्र कथा-कीर्तन में डूब गया है, वे किसी भी प्रकार की बाधा या रुकावट के कारण श्रीहरि के कथाश्रवण रूपी कल्याण मार्ग को नहीं छोड़ते।”

ब्रह्मा ने प्रियव्रत को उपदेश दिया कि भगवान् के चरणों में मन लगाकर तो तुमने परमार्थ प्राप्ति का मार्ग पहले ही ढूँढ़ लिया है, अब तुम श्रीहरि द्वारा किए गए विधान अनुसार भोगों को भोगो और अंत में परमात्मा में लीन हो जाओ।

प्रियव्रत ने नतमस्तक होकर ब्रह्मा की आज्ञा मान ली। मनु ने प्रियव्रत का विवाह प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से कर दिया और शासन का संपूर्ण दायित्व प्रियव्रत के ऊपर छोड़कर श्रीहरि के भजन-कीर्तन के लिए वन प्रस्थान कर गए।

राजा प्रियव्रत ने हजारों वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया। उनके दस पुत्र तथा एक कन्या हुई। उस कन्या का विवाह शुक्राचार्य के साथ हुआ था।

एक बार राजा प्रियव्रत ने संकल्प किया कि मैं रात को भी दिन बना दूँगा। वे सूर्य के समान तेजस्वी एवं वेगवान् रथ पर बैठे और द्वितीय सूर्य की तरह ही उनके पीछे-पीछे पृथ्वी की सात परिक्रमा कर गए। उस समय उनके रथ के पहिए से जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र बन गए। उनके कारण पृथ्वी पर सात-सात द्वीप बन गए।

राजा प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को एक-एक द्वीप दे दिया। उनके तीन पुत्र बाल्यावस्था से ही निवृत्तिमार्ग पर निकल गए थे और संन्यास लेकर प्रपंच से दूर हो गए थे। राजा प्रियव्रत सब कर्मों से निवृत्त होकर पुनः अपने गुरु नारद की शरण में पहुँचे। उन्होंने प्रार्थना की, “भगवन्, अब बहुत हो गया। अब मेरी सद्गति का मार्ग मुझे दिखाइए।” अपनी पत्नी को भी साम्राज्य भोगने के लिए छोड़कर, नारद के बताए मार्ग का अनुसरण करते हुए उन्होंने भगवान् श्रीहरि की उपासना में अपना चित्त स्थिर कर लिया।

प्रियव्रत के तपस्या में संलग्न हो जाने पर उनके पुत्र आग्नीध्र धर्मानुसार अपनी प्रजा का पालन करने लगे। एक बार वे मंदराचल की सुरम्य घाटी में गए और वहीं तपस्या करने लगे। ब्रह्मा को फिर चिंता हुई। उन्होंने अपनी सभा की अप्सरा पूर्वचित्ति को राजकुमार का तपोभंग करने भेजा। अप्सरा पूर्वचित्ति ने तपस्या में लीन तपस्वी राजकुमार का अपनी मोहक सुगंध, नुपूर ध्वनि एवं विभिन्न मादक कलाओं द्वारा ध्यान भंग किया। राजकुमार ने आँखें खोलीं। अप्सरा के रूप-सौंदर्य पर मोहित होकर वह अप्सरा के साथ विलास में लिप्त हो गए। अत्यंत आसक्त होकर उन्होंने

अप्सरा को प्रसन्न कर लिया। उनके नौ पुत्र हुए। उन्होंने हजारों वर्ष तक राज्यसुख भोगा। अप्सरा को भी वे परम पुरुषार्थ का स्वरूप समझते रहे।

## राजा नाभि का चरित्र

राजा आग्नीध्र का पुत्र था—नाभि। वह निस्संतान था। उसने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ करवाया। यज्ञदेवता प्रसन्न हुए। उन्होंने साक्षात् दर्शन दिए। ऋत्विजों ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा, “आप राजा नाभि की आराधना से प्रसन्न होकर प्रकट हुए हैं। हमारे लिए आपके दर्शन से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। आप हमारे ऊपर तो इतनी सी कृपा करें कि हम खाते-पीते, गिरते-उठते तथा रोग, मरणादि के समय सदा आपके नाम का उच्चारण करते रहें। हमारी एक तुच्छ प्रार्थना है—राजा नाभि के कोई पुत्र नहीं है। इन्हें आपके ही समान पुत्र प्राप्त हो, यही हम दुर्बुद्धियों की कामना है! आप भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं। हमारी इस तुच्छ कामना को भी पूर्ण करें!”

भगवान् श्रीहरि ने हँसकर ऋत्विजों से कहा, “ब्राह्मणो, आपने बहुत कठिन वर माँगा है, क्योंकि मेरे समान तो सिर्फ मैं ही हूँ। तुम्हारा वचन मिथ्या न हो, इसलिए मैं स्वयं ही नाभि के यहाँ पुत्र रूप में अवतार लूँगा।”

समय आने पर राजा नाभि के यहाँ भगवान् ने जन्म लिया। राजा ने उनका नाम ऋषभ रखा। एक बार जब राज्य में वर्षा नहीं हुई तो ऋषभदेव ने अपनी योगमाया से जल बरसाया। सभी ने उनकी स्तुति की। राजा ने सबकी इच्छा देखकर प्रसन्नता से ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया। पहले ऋषभदेव ने गुरुकुल में जाकर शिक्षा ली थी। इंद्र ने प्रसन्न होकर ऋषभदेव से अपनी कन्या जयंती का विवाह कर दिया। उनके सौ पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र भरत थे। इन्हीं भरत के नाम पर इस भूमिखंड का नाम ‘भारतवर्ष’ हुआ। भगवान् ऋषभदेव संसार के हित के लिए कर्म कर रहे थे, जिससे संसार के लोग उनका अनुकरण करें। एक बार वे भ्रमण करते हुए ब्रह्म समाज में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षा दी—‘जगत् में मनुष्य-देह प्राप्त करके विषय-भोग में लिप्त हो जाना पाप का मार्ग है। मनुष्य-देह से तो केवल दिव्य तप करना चाहिए। स्त्री, धन, पुत्र आदि के लौकिक मोह में फँसकर मनुष्य भोगवृत्ति में ही रह जाता है। उसे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। ‘मैं’ और ‘मेरा’—यह अहंकार भाव छोड़ देने से यह परमपद प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि अज्ञानियों का पथ प्रदर्शन करें। मैंने यह शरीर अपनी इच्छा से धारण किया है। मेरा स्वरूप शुद्ध सात्त्विक एवं धर्म का है। तुम सब मेरे अंश हो। भरत तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता है। वह परमज्ञानी एवं महायोगी है। तुम सब भाई उसकी सेवा करना।’

भगवान् ऋषभदेव ने अपने योग्य पुत्रों को उत्तम शिक्षा देने के बाद भरत को राजसिंहासन पर बैठा दिया और सबकुछ त्यागकर दिगंबर हो गए। वे अवधूत बनकर बीहड़ों, जंगलों में पागल जैसी चेष्टाएँ करते। अंधे, गूँगे, बहरे की भाँति, मल-मूत्र में लिपटे इधर-उधर पड़े रहते। कई प्रकार की सिद्धियाँ भगवान् की सेवा के लिए तत्पर थीं, फिर भी उन्होंने किसी में भी आसक्ति नहीं रखी। अंत में उन्होंने अपने शरीर को योग से भस्म कर दिया।





## जड़ भरत की कथा

**रा**जा भरत बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा से स्नेह करनेवाले थे। वे निस्पृह रहकर राजधर्म का निर्वाह करते थे। उन्होंने धर्मपूर्वक राज्य किया। तत्पश्चात् राजमोह त्यागकर पृथ्वी का राज्यभार अपने पुत्रों को सौंप दिया। फिर हरिहर क्षेत्र में गंडकी नदी के तट पर भगवान् की आराधना में लग गए।

हरिहर क्षेत्र में मृग बहुत रहते थे। एक समय भरतजी गंडकी में स्नान कर रहे थे। उसी समय एक हिरनी जल पीने आई। सिंह गर्जना से डरकर वह नदी में कूद पड़ी। वह अति व्याकुल हो रही थी। नदी में ही उसका प्रसव हो गया और बच्चा जल में गिर गया। इस दृश्य को देखकर राजर्षि भरत का मन द्रवित हो गया। उन्होंने बच्चे को गोद में उठा लिया। वे बड़े लाड़-प्यार से उसे पालने लगे।

राजर्षि भरत उस मृगशावक के मोह में ऐसे फँसे कि उनका ध्यान भगवद्-भजन से अधिक उस मृगशावक की सेवा में ही लगा रहता। उस शावक को हाथ से तृण खिलाना, ठंडा जल पिलाना, अपनी गोद में हर समय रखना तथा रात-दिन उसकी चिंता करना—यही उनका दैनिक कर्म बन गया। मृगशावक यदि थोड़ी देर के लिए भी इधर-उधर जाता तो उसके पीछे-पीछे जाकर उसे गोद में उठा लेते। इस मोहपाश में भरत अपने आत्मस्वरूप को भी भूल गए। उनकी पूजा-भजन, स्नान-संध्या—सब धीरे-धीरे छूटते गए। शावक के वात्सल्य में वे अपने-आपको भी भूल गए थे। इसी अवस्था में उनका देहावसान हो गया।

मृगशावक में मोह रखने के कारण भरत ने मृग का ही जन्म पाया। तब भी पूर्वजन्म का ज्ञान उन्हें बना रहा। मृगयोनि में वे गंडकी के तट पर पुलह ऋषि के आश्रम में ही रहने लगे। सूखे पत्ते और घास खाकर, किसी में आसक्ति न रखते हुए वे अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे। अंत में गंडकी नदी के तट पर देह त्याग दी। भरत ने पुनः आंगिरस गोत्री ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। उन्हें अब भी पूर्वजन्म की स्मृति बनी हुई थी। वे निरासक्त भाव से रह रहे थे। पिता का उनपर बहुत स्नेह था। भरत की विद्याध्ययन अथवा किसी भी प्रकार के कर्म में आसक्ति नहीं थी। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों ने भरत पर खेती का काम लाद दिया। उन्हें रूखा-सूखा भोजन दिया जाता था। वे मूढ़ की भाँति जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन खेत में बैठे हुए भरत को डाकुओं ने पकड़ लिया और उन्हें बाँधकर देवी पर बलि चढ़ाने के लिए अपने सरदार के पास ले गए। देवी के मंदिर में उनकी बलिपशु की तरह पूजा करके डाकू तलवार से उनका सिर काटने लगे। तभी देवी ने प्रकट होकर डाकुओं को मार डाला और भगवान् के भक्त की रक्षा कर ली।

एक दिन भरत खेत में काम कर रहे थे। उसी समय सिंधु-सौवीर के राजा रहूगण पालकी से कहीं जा रहे थे। उनका एक कहार थक गया था। भरत को देखते ही राजा ने उन्हें पकड़ लाने को कहा। उन्हें पालकी ढोने में लगा दिया गया। वे चुपचाप पालकी ढोने लगे। उनका ध्यान पैरों के नीचे आनेवाले जीव-जंतुओं को बचाकर चलने में था। इस कारण पालकी बार-बार झटका खाकर ऊँची-नीची होती रही। राजा ने कहारों को डाँटा। तब कहारों ने कहा, “यह नया आदमी ठीक से नहीं चलता!” राजा ने भरत को डाँटकर कहा, “इतने हट्टे-कट्टे होते हुए भी तुम्हें पालकी उठाने से थकान आ रही है क्या?” भरत बिना उत्तर दिए चुपचाप अपनी चाल से चलते रहे। राजा को क्रोध आया। राजा होने के अभिमान ने रहूगण को अविवेकी बना दिया। उन्होंने जड़ भरत से कहा, “तू निरा पागल और मूर्ख है! तुझे मालूम नहीं, मैं राजा हूँ! तुझे भयंकर दंड दे सकता हूँ।”

राजा का क्रोध देखकर जड़ भरत ने मुसकराते हुए कहा, “राजन्, तुम्हारा वचन सत्य है। मार्ग पर भार ढोने का

कार्य शरीर कर रहा है। पैर ही मार्ग पर चलते हैं और मोटा-दुबलापन इस स्थूल शरीर का है, जो पंचभूतों से बना है। जीव को तो कुछ महसूस ही नहीं होता। विकार भी शरीर के होते हैं। स्वामी-सेवक का भाव संसार के लौकिक व्यवहार में है। मूर्ख-पागल को दंड देकर भी चतुर अथवा बुद्धिमान् नहीं बनाया जा सकता!”

राजा ने ये सारपूर्ण बातें सुनीं तो उन्होंने तत्काल पालकी नीचे उतरवाई। भरत को प्रणाम किया और पूछा, “हे अवधूत, आप कौन हैं? आपके गले में पड़ा जनेऊ बता रहा है कि आप ब्राह्मण कुल के हैं। मैंने ब्राह्मण कुल से पालकी उठवाकर बहुत पाप किया है। अब तो मेरी रक्षा स्वयं भगवान् शंकर भी नहीं कर सकते!” राजा ने आग्रह किया, “देव, आपने जो वचन अभी कहे हैं, मुझे उनका ज्ञान कराएँ।”

भरत ने राजा को समझाया कि तुम ज्ञानी नहीं हो। जो मनुष्य कर्मों को ही प्रधान मानता है, उसे तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सबसे प्रधान वस्तु मन है। मन ही जीव को नरक में डालता है और विषयहीन मन ही मोक्षपद प्राप्त कराता है। भरत ने कहा, “यह शरीर मेरा, आपका, कहारों का अथवा अन्य प्राणियों का, जो बना है वह पृथ्वी तत्त्व से ही बना है। पाषाण आदि भी पृथ्वी तत्त्व से ही बने हैं। शरीर एवं पाषाण में क्या भेद है? शरीर चलता है, पत्थर नहीं चलता। शरीर में चेतना-शक्ति है। वह इस पार्थिव तत्त्व को चलाती है। जब चेतना समाप्त हो जाती है तो यह शरीर भी पत्थर बन जाता है। पालकी का भार पार्थिव शरीर पर था, जीव पर नहीं। जीव में क्या भेद है? केवल व्यावहारिक नाम का—आप राजा हैं, मैं जड़ भरत हूँ।”

“राजन्, पूर्वजन्म में मैं ही चक्रवर्ती राजा भरत था। मेरे नाम पर ही देश का नाम ‘भारतवर्ष’ पड़ा है। मैं विरक्त रहकर भगवत्-भजन कर रहा था; लेकिन प्रारब्धवश एक मृगशावक की ममता में फँस गया और मृगयोनि भोगी। भगवान् की कृपा से मुझे पुनः यह मनुष्य योनि मिली। पूर्वजन्म की स्मृतिवश मैं अब संसार से आसक्ति का त्याग करते हुए छिपा रहता हूँ। राजा रहूँ, तुम भी मोह के बंधन को काटकर भगवान् का स्मरण करो और इस संसार-चक्र से मुक्ति का मार्ग अपनाओ। तुम अपनी दंडनीति को बदलकर सबको अपना मित्र बनाओ!”

“यह गृहस्थाश्रम कर्मभूमि है। इसमें कर्मों का सर्वथा उच्छेद कभी नहीं होता, क्योंकि यह घर कामनाओं की पिटारी है।”

“गृहस्थाश्रम में आसक्त हुए मिथ्या व्यसनों में फँसकर मानव मृगतृष्णावश विषयों की ओर दौड़ता रहता है। इस शरीर को जीवित रखनेवाले घर, अन्न, जल, सुख-साधन के लिए मार्ग-कुमार्ग से दौड़-धूप करते-करते विवेकहीन कर्म में उलझ जाता है और पूर्वपुण्य क्षीण हो जाने पर इस लोक में दुःख देनेवाले पाखंड में फँसा रहता है।”

“गृहस्थाश्रम के लिए जिस कर्म-विधि का महान् विस्तार किया गया है, उसका अनुष्ठान किसी पर्वत की कड़ी चढ़ाई के समान ही है। इस मार्ग में सुख-दुःख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा, पिपासा, आधि, व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि अनेक भयंकर विघ्न हैं। इसमें आसक्त मनुष्य अंधकारमय नरक में जाता है!”

“कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णु का आयुध है। कोई भी उसकी गति में बाधा नहीं डाल सकता। मनुष्य उन भगवान् की आराधना छोड़कर पाखंडियों के चक्कर में बहिष्कृत देवताओं का आश्रय लेता है। जब दुःखी होता है तब ब्राह्मणों की शरण लेता है; किंतु भगवान् की आराधना करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह आसक्ति एवं विषयभोग में ही सारा जीवन बिता देता है। यह जीव अपने पुण्यकर्म के आश्रय से यदि नरक से अथवा आपत्तियों से छुटकारा पा भी जाता है, तथापि संसार-चक्र में भटकता रहता है।”

“श्रीहरि की आराधना में अनुरक्त होकर ‘यह मेरा है, मैं ही सब करता हूँ’ का भाव त्यागकर निर्विकार एवं निस्पृह मन से संसार-भोग का त्याग करके श्रीहरि की सेवा में दृढ़ता से चित्त स्थिर करनेवाला जीव मोक्ष का

अधिकारी बन जाता है।”

भरत के वंश में ही राजा गया हुए। उनकी कीर्ति अमर है। सदैव प्रजा के सुख, साधु-संतों की सेवा एवं निष्काम भाव से प्रभु-कीर्तन में लीन रहनेवाले राजा गया का गंगा आदि पवित्र नदियों ने प्रसन्नता से अभिषेक किया था। उनकी इच्छा न होने पर भी वसुंधरा ने उनके गुणों पर रीझकर प्रजा को धन-रत्नादि पदार्थ दिए। कर्मों ने उन्हें सब प्रकार के भोग दिए। उनके यज्ञ में बहुत अधिक सोमपान करने से देवराज इंद्र उन्मत्त हो गए थे। राजा प्रियव्रत के वंश के गया राजा का वंश आगे बढ़ा। राजा विरज ने भी अपने सुयश से प्रियव्रत के वंश को विभूषित किया था।

## गंगा अवतरण

श्रीमद्भागवत में भूमंडल की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। राजा बलि की यज्ञशाला में जब भगवान् विष्णु ने त्रैलोक्य को नापने के लिए पैर फैलाया, उस समय उनके बाएँ पैर के अँगूठे के नख से ब्रह्मांड का ऊपर का भाग फट गया। उस छिद्र में होकर निर्मल जल की एक धारा निकली। उस जल के स्पर्शमात्र से संसार के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उस धारा का नाम ‘भगवत्पदी’ था। सहस्रों युग बीतने पर वह धारा ध्रुवलोक में आई। वहाँ उसका नाम ‘विष्णुपदी’ पड़ा। ध्रुव नित्य उस जल को अपने शीश पर चढ़ाते हैं। वह विष्णुपदी आकाश मार्ग से उतरती हुई मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती रही। उस स्थान से विष्णुपदी सीता, अलकनंदा, चक्षु तथा भद्रा नाम की चार धाराओं में बँट गई और चारों दिशाओं को सींचती हुई ये पवित्र धाराएँ समुद्र में आ गिरीं। अलकनंदा ब्रह्मपुरी से निकलकर हेमकूट पर्वत पर गिरी। वहाँ से हिमालय के शिखरों को चीरकर वह भारतवर्ष के मैदानों में प्रकट हुई। वही हमारी पतित-पावनी भागीरथी माँ गंगा के नाम से इहलोक में जीवमात्र के पापों का नाश करके मोक्षपद की प्राप्ति का निर्मल मार्ग उज्ज्वल कर रही है। उनके कारण ही हमारा भारतवर्ष संपूर्ण विश्व में श्रेष्ठ कर्मभूमि है।



## सूर्य की गति एवं रथ का वर्णन

भूलोक एवं द्युलोक के मध्य में अंतरिक्ष लोक है। सूर्य भगवान् द्युलोक में निवास करते हैं और त्रिलोक को प्रकाशित करते रहते हैं। सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन तथा विषुवत् नामक मंद, शीघ्र एवं समान गतियों से चलते हुए मकरादि राशियों में ऊँचे-नीचे तथा समान स्थानों में जाकर दिन-रात को छोटा-बड़ा और समान करते हैं। आज के विज्ञान युग में हम जितनी जानकारियों से अवगत होते हैं, वे सब वृत्तांत श्रीमद्भागवत में उद्धृत हैं। सूर्य को ग्रह नहीं, देवता मानकर ही संपूर्ण विस्तृत जानकारी प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। कुछ मोटी-मोटी बातें आपके सन्मुख रखी हैं। सूर्य और भगवान् मेष या तुला राशि पर आते हैं तो रात और दिन समान हो जाते हैं। वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या—जब सूर्य इन पाँच राशियों में चलते हैं तब प्रतिमास रात्रियों में एक-एक घड़ी कम हो जाती है और उसी हिसाब से दिन बढ़ते जाते हैं। जब सूर्य वृश्चिक, मकर, कुंभ, मीन तथा मेष राशियों में भ्रमण करते हैं तब दिन प्रतिमास एक-एक घड़ी बढ़ता है और रात्रि कम होती जाती है। दक्षिणायन आरंभ होने तक दिन बढ़ते हैं और उत्तरायण लगने तक रात्रियाँ बढ़ती हैं।

सूर्य की परिक्रमा का मार्ग मानसोत्तर पर्वत पर नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है। मेरु के चारों ओर सूर्य परिक्रमा करते हैं, इसलिए यहाँ समय-समय पर सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और अर्धरात्रि होती रहती हैं। जो लोग सुमेरु पर्वत के निवासी हैं, उन्हें सूर्य भगवान् सदैव मध्यकालीन रहकर तपाते रहते हैं। जिस पुरी में सूर्य भगवान् का उदय होता है, ठीक उसी समय विपरीत दिशा में दूसरी पुरी में सूर्यास्त होता है। जहाँ मध्याह्न होता है, उसकी विपरीत दिशा में मध्यरात्रि हो जाती है।

जिस प्रकार सूर्य भगवान् परिक्रमा करते रहते हैं, उसी प्रकार चंद्रमा आदि अन्य ग्रह ज्योतिश्चक्र में अन्य नक्षत्रों के साथ-साथ उदित एवं अस्त होते रहते हैं। सूर्य भगवान् का रथ एक मुहूर्त में चौत्तीस लाख आठ सौ योजन की परिधि में घूमता है। इस रथ के एक पहिए का नाम 'संवत्सर' है, जिसके बारह अरें हैं, जो वर्ष के बारह मास हैं; छह नेमियाँ (हाल) हैं, जो छहों ऋतुएँ हैं; तीन नाभि (आँवन) हैं, जो चतुर्मासी हैं।

रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है। अरुण नाम के सारथि ने इसमें सात घोड़े जोत रखे हैं। वे ही इस रथ पर बैठे हुए सूर्य भगवान् को लेकर चलते हैं। इस प्रकार सूर्य भगवान् भूमंडल में नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लंबे घेरे में से प्रत्येक क्षण में दो हजार दो योजन की दूरी पार कर लेते हैं।

सूर्य भगवान् के साथ-साथ ग्रह, नक्षत्र, तारे और चंद्रमा अपनी-अपनी गति पर चलते हैं। कालभेद के अनुसार सबकी गति भिन्न होती है। भगवान् भुवनभास्कर का काल बारह मास है। एक राशि में अवधि एक मास की है। दो मास की छह ऋतुएँ होती हैं। प्रत्येक मास चंद्रमा के प्रभाव से शुक्ल तथा कृष्ण—दो पक्षों का माना गया है।



## अजामिल की कथा

प्राचीन काल में कन्नौज नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम अजामिल था। वह सदाचारी पुरुष था किंतु एक दिन उसने एक शूद्र व्यक्ति को शराब पीकर एक अर्धनग्न, निर्लज्ज वेश्या के साथ मार्ग में देख लिया। उसकी प्रवृत्ति भी उस वेश्या की ओर हो गई। अजामिल ने अपनी पत्नी को त्याग दिया और उस वेश्या के साथ ही रहने लगा। उस वेश्या की मनोकामना पूरी करने के लिए वह ब्राह्मण चोरी, धोखेबाजी, जुआ आदि निंदनीय मार्गों से धन प्राप्त करता था। अजामिल के दस पुत्र थे। सबसे छोटे बेटे का नाम नारायण था। अजामिल अपने छोटे बेटे नारायण को बहुत प्यार करता था। वह अस्सी वर्ष का हुआ तो उसकी मृत्यु का समय निकट आ गया। उस समय उसे केवल अपने छोटे पुत्र नारायण की विशेष चिंता हुई। उसके हृदय में 'नारायण' ही रह गया।

अजामिल के सिर पर यमदूत मँडरा रहे थे। वह अति व्याकुल हुआ। भयभीत होकर अजामिल उच्च स्वर से 'नारायण-नारायण' पुकारने लगा। उसी समय भगवान् विष्णु के पार्षदों ने आकर अजामिल के प्राण खींच रहे यमदूतों को रोक दिया। यमदूतों ने विरोध किया और पूछा, "धर्मराज की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले आप लोग कौन हैं?"

पार्षदों ने हँसकर कहा, "यमदूतो, पहले आप हमें यह बताओ कि धर्म का लक्षण एवं तत्त्व क्या है? दंड किसको दिया जाता है? तथा दंड का क्या विधान है? क्या सभी पाप करनेवाले दंडनीय हैं? अथवा कुछ ही दंड देने योग्य हैं?"

यमदूतों ने कहा, "वेदों ने जिन कर्मों को उत्तम कहा है, वे धर्म हैं तथा जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं। मनुष्य पाप-पुण्य मिश्रित कर्म करता है। इन कर्मों के साक्षी सूर्य, अग्नि, वायु, आकाश, चंद्रमा, संध्या, दिन-रात, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल तथा धर्म हैं। इन्हीं के द्वारा मनुष्य दंड पाता है।"

"हे देवताओ, यह अजामिल घोर पापी, हत्यारा एवं दुराचारी है। इसके सब अच्छे कर्म क्षीण हो गए हैं। अब यह यमराज के यहाँ दंड भुगतेगा।"

पार्षदों ने यमदूतों से कहा, "अजामिल तो धर्मात्मा है! तुम नहीं जानते, इस ब्राह्मण ने चाहे करोड़ों पाप किए हैं, किंतु मृत्यु के समय किसी भी भाव से क्यों न हो, इसने भगवान् नारायण के नाम का उच्चारण किया है! इसने बार-बार 'नारायण-नारायण' पुकारकर संकीर्तन किया है। अतः इसने पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है। यह भगवान् का भक्त है।"

पार्षदों ने अजामिल को यमदूतों से बचा लिया। अजामिल ने पार्षदों को सिर झुकाकर प्रणाम किया। पार्षद अंतर्धान हो गए। अजामिल ने यमदूतों तथा पार्षदों का संवाद सुन लिया था। एक क्षण के सत्संग ने अजामिल में परिवर्तन ला दिया। उसे अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह वहाँ से हरिद्वार चला गया और एक मंदिर में आसन लगाकर योग-साधन द्वारा भगवान् की आराधना में मग्न हो गया। ब्राह्मण ने पुनः उन्हीं पार्षदों को अपने सन्मुख देखा। ब्राह्मण ने उन्हें नमस्कार किया तथा गंगाजी के तट पर अपना शरीर छोड़ दिया। अजामिल को केवल 'नारायण-नारायण' पुकारने मात्र से वैकुण्ठधाम प्राप्त हो गया।



## दक्ष द्वारा सृष्टि-वृद्धि

प्रचेताओं के पुत्र दक्ष की सृष्टि से तीनों लोक व्याप्त हो गए। दक्ष ने सर्वप्रथम यह सृष्टि अपने संकल्प से उत्पन्न की थी। लेकिन उन्होंने जब देखा कि सृष्टि की वृद्धि नहीं हो रही है तब उन्होंने 'हंसगुह्य' नामक स्तोत्र से भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने प्रकट होकर दक्ष से कहा, "तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। अब तक मानसी सृष्टि होती थी। अब तुम प्रजापति पंचजन की इस सुंदर कन्या असिकनी से विवाह करो और उसके साथ सहवास करके सृष्टि-वृद्धि करो।"

दक्ष प्रजापति ने भगवान् श्रीहरि के वरदान से दस हजार पुत्र उत्पन्न किए और उन्हें भी संतान उत्पन्न करने के लिए कहा। किंतु वे सभी दस हजार पुत्र तपस्या के लिए चल दिए। नारद उस मार्ग से निकले। उन्होंने दक्षपुत्रों से कहा, "तुम लोग बड़े मूर्ख हो। यह आत्मा बंधन है। ईश्वर एक है। वह सबका आश्रय है। वही परमात्मा है।" दक्षपुत्रों ने नारद के वचन सुने। उनकी परिक्रमा की और मोक्षपद प्राप्त करने का निश्चय कर लिया।

नारद की यह करतूत दक्ष प्रजापति को ज्ञात हुई तो वे खिन्न हो गए।

दक्ष ने पुनः एक हजार पुत्र उत्पन्न किए। वे भी नारायण सरोवर पर जाकर कठोर तप करने लगे। उसी समय देवर्षि नारद आए और इन्हें भी समझाने लगे। प्रजापति के इन पुत्रों ने भी बड़े भाइयों का अनुकरण किया और विरक्त हो गए।

दक्ष प्रजापति को जब पुनः पता चला कि मेरे पुत्रों को नारद ही कर्तव्यच्युत कर रहे हैं, तब वे अति क्रोधित हुए। नारद उसी समय वहाँ आ पहुँचे; उन्हें देखते ही दक्ष ने कहा, "अरे नारद! तुमने पाखंड से यह साधुवेश धारण किया है। मेरे भोले-भाले पुत्रों को भिक्षुओं का मार्ग दिखाकर तुमने हमारा बड़ा अपकार किया है। अरे, बिना सांसारिक अनुभव के सच्चा वैराग्य प्राप्त नहीं होता। अभी उन्होंने ब्रह्मचर्य से ऋषिऋण, यज्ञ से देवऋण एवं पुत्रोत्पत्ति से पितृऋण नहीं उतारा था। स्वयं जो वैराग्य प्राप्त होता है, वह दूसरों के बहकावे से नहीं होता। हम अपनी धर्म-मर्यादा का पालन करते हैं। तुम हमारी वंश-परंपरा का नाश करने पर तुले हो। इसलिए हे मूढ़, मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम निरंतर लोक-लोकांतर में भटकते रहो। कहीं भी तुम्हारे लिए ठहरने की ठौर नहीं होगी।"

देवर्षि नारद ने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्ष के शाप को स्वीकार कर लिया। साधुता इसीका नाम है कि बदला लेने की शक्ति रहने पर भी दूसरे का किया हुआ अपकार भी सह लिया जाए।

ब्रह्मा के कहने पर दक्ष ने पुनः साठ पुत्रियों को जन्म दिया। इन्हीं कन्याओं के वंश से त्रिलोक में सृष्टि का विस्तार हुआ। दक्ष ने अपनी सभी पुत्रियों का उत्तम वरों से विवाह कर दिया। इन्हीं दक्ष-कन्याओं के गर्भ से देवी-देवता, ऋषि-मुनि, गंधर्व, रुद्रगण, वनस्पति, पशु, नाग, बिच्छू आदि हुए। दक्ष-कन्या आदिति के गर्भ से धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इंद्र तथा त्रिविक्रम (वामन) आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुए; यही बारह 'आदित्य' हैं।

एक बार देवराज इंद्र प्रमाद एवं अहंकार से उन्मत्त अपनी सभा में बैठे थे। वहाँ नृत्य-संगीत से वातावरण गूँज रहा था। इंद्राणी शची भी इंद्र के पास बैठी थी। उसी समय देवगुरु बृहस्पति वहाँ आए। उन्माद से भरे हुए इंद्र ने उनकी घोर उपेक्षा की। उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। यह देखकर बृहस्पति उलटे पैर वहाँ से लौट आए।

तब देवराज इंद्र को होश आया। वह मन-ही-मन पछताने लगे। मैंने गुरुदेव की अवहेलना की! सचमुच मेरा यह कर्म अत्यंत निंदनीय है। मैंने बड़ी शठता की!

इंद्र ने अपने गुरु को बहुत ढुँढ़वाया, किंतु वे तो अंतर्धान हो गए थे। उनका कहीं पता नहीं लगा तो इंद्र अशांत हो

गए। अब वे अपनी बुद्धि के अनुसार स्वर्ग की रक्षा का उपाय सोचने लगे, क्योंकि गुरु के बिना वे असुरक्षित हो गए थे। जब असुरों को देवराज इंद्र और गुरु की अनबन का पता चला तो अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेशानुसार उन्होंने देवताओं पर धावा बोल दिया। देवताओं की पराजय होने लगी तो इंद्र ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने देखा कि देवताओं की दुर्दशा हो रही है तो उन्होंने खेद के साथ कहा, “ऐश्वर्य के मद से अंधे होकर तुमने अपने ज्ञानी गुरु का अपमान किया, यह इसीका फल है। ये दैत्य लोग शुक्राचार्य के बल पर ब्रह्मांड भी छीन लेंगे। अब तुम लोग तत्काल विश्वरूप के पास जाओ। वे तपस्वी और योग्य हैं। उनको मनाकर यदि तुम गुरु के रूप में ला सकोगे तो तुम्हारी रक्षा हो सकेगी।”

तपस्वी विश्वरूप दैत्य-पक्ष की कन्या के पुत्र थे। उनका स्वाभाविक प्रेम असुरों के प्रति था। देवता वहाँ पहुँचे और उनसे कहा, “संतानवाले सत्पुत्रों का सबसे बड़ा धर्म है कि वे अपने माता-पिता एवं गुरुजनों की सेवा करें। जो ब्रह्मचारी हैं, उनका तो कहना ही क्या! आचार्य वेद की, पिता ब्रह्मा की, भाई इंद्र की और माता पृथ्वी की प्रतिमा होती है। आप ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं, अतः हमारे गुरु हैं। आप आचार्य के रूप में हमारे साथ चलें। हम शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे।”

तपस्वी विश्वरूप ने कहा, “पुरोहिती का काम ब्रह्मतेज को क्षीण करनेवाला है, किंतु आप मेरे पितर हैं। अतः आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है।”

उन्होंने देवों का आचार्य पद स्वीकार किया। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने अपने नीतिबल से असुरों की संपत्ति सुरक्षित कर ली थी, फिर भी आचार्य विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से उनसे वह संपत्ति छीनकर देवराज इंद्र को दिला दी।

## नारायण कवच

विश्वरूप ने इंद्र को विजय प्राप्ति के लिए नारायण-कवच का उपदेश दिया। उसमें सभी देवताओं से अलग-अलग स्थानों की तथा शरीर के विभिन्न अवधानों की रक्षा का भार सौंपने की प्रार्थना की गई। विश्वरूप ने कहा, “भगवान् श्रीहरि के विभिन्न स्वरूपों को इस नारायण-कवच द्वारा धारण करके संपूर्ण विधि-मंत्रों सहित एकाग्रचित्त होकर स्वयं को सुरक्षित कर लो!”

इस वैष्णवी विद्या को धारण करके इंद्र ने रणभूमि में असुरों को जीत लिया।

## विश्वरूप वध

विश्वरूप के तीन सिर तथा तीन ही मुख थे। एक मुख से वे सोमरस का पान करते थे, दूसरे से मदिरा पान और तीसरे मुख से अन्न भक्षण करते थे। विश्वरूप का जन्म असुर कुल की कन्या एवं आदित्य के पुत्र से हुआ था, अतः वे देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए तो मंत्रोच्चार ऊँचे स्वर में करते थे, किंतु गुप्त रूप से यज्ञभाग असुरों को भी देते रहते थे। इस कपट-व्यवहार का इंद्र को पता चला तो उन्होंने विश्वरूप के तीनों शीश कटवा दिए। इस ब्रह्महत्या के पाप को इंद्र ने चार भागों में बाँट दिया। पृथ्वी, जल, वृक्ष एवं स्त्री ने ब्रह्महत्या के पाप का एक-एक भाग स्वीकार किया और उसके बदले में इंद्र से एक-एक वरदान प्राप्त किया।

पृथ्वी को वरदान में मिला कि जहाँ कहीं भी गड्ढा होगा, वह अपने-आप भर जाएगा। ब्रह्महत्या ऊसर रूप में दिखाई पड़ती है। ब्रह्महत्या के पाप के एवज में वृक्षों को वरदान मिला कि कोई भी हिस्सा कट जाने पर, फिर जम जाएगा। स्त्रियों को वरदान मिला कि वे सर्वदा पुरुष का सहवास प्राप्त कर सकेंगी। उनके हिस्से की ब्रह्महत्या का पाप प्रत्येक माह में रजस्वला होने पर दिखाई देता है। जल ने वरदान पाया कि खर्च करते रहने पर भी निर्झर जल

बढ़ता ही जाएगा। जल पर फेन, बुद्बुद आदि के रूप में ब्रह्महत्या दिखाई पड़ती है।

विश्वरूप की मृत्यु के कारण उसके पिता त्वष्टा अति क्रोधित हुए। उन्होंने इंद्र को मारने के लिए यज्ञ किया। यज्ञकुंड से एक प्रचंड शक्तिशाली असुर उत्पन्न हुआ। उसका नाम वृत्रासुर था। उस भयंकर तामसी योद्धा से पृथ्वी भी काँप उठी। इंद्र ने सभी देवताओं को लेकर उसपर आक्रमण किया, किंतु वृत्रासुर ने अकेले ही सबको पराजित किया। तब सब देवता भगवान् की शरण में गए। भगवान् ने उन्हें ऋषि दधीचि की हड्डियों से विश्वकर्मा द्वारा एक वज्र आयुध बनाने का आदेश दिया और उसमें स्वयं प्रविष्ट होने का आश्वासन दिया।

इंद्र सहित सब देवता अश्विनीकुमारों को साथ लेकर दधीचि ऋषि के आश्रम पर गए और अपने आने का मंतव्य स्पष्ट रूप से उनके सन्मुख रखा। दधीचि ऋषि आत्मज्ञानी थे। उन्होंने दूसरों की भलाई में काम आनेवाले धर्म का महत्त्व ध्यान में रखकर 'तथास्तु' कहते हुए अपना शरीर त्याग दिया। देवता लोग उनकी हड्डियाँ ले आए। विश्वकर्मा ने आयुध बनाकर देवराज इंद्र को दे दिया। भगवान् श्रीहरि ने अपनी शक्ति से उसे परिपूर्ण कर दिया। इंद्र ने वज्र को धारण किया और ऐरावत हाथी पर चढ़कर वृत्रासुर पर टूट पड़े। वृत्रासुर की असुर सेना तहस-नहस हो गई। महाबली वृत्रासुर भयानक आकृतिवाला भयंकर गर्जना करता हुआ, त्रिशूल हाथ में लेकर इंद्र के सन्मुख आ गया।

## वृत्रासुर वध

त्रिशूल लेकर वृत्रासुर इंद्र पर टूट पड़ा। इंद्र ने वज्र से उसकी त्रिशूलयुक्त भुजाएँ काट दीं। वृत्रासुर ने इंद्र की ठोड़ी एवं ऐरावत पर ऐसी चोट की कि इंद्र के हाथ से वज्र छूटकर वृत्रासुर के निकट जा गिरा। इंद्र ने लज्जित होकर अपना आयुध नहीं उठाया। सभी भयभीत हो गए। तब वृत्रासुर ने इंद्र से कहा, "यह जय-पराजय सबकुछ तो परमात्मा के अधीन है!"

इंद्र ने वज्र को उठा लिया। दोनों महाबली युद्ध करने लगे। इंद्र ने वृत्रासुर की दूसरी भुजा भी काट दी। तब वृत्रासुर ने अपना मुख फाड़कर ऐरावत सहित इंद्र को निगल लिया। इंद्र नारायण-कवच के प्रभाव से सुरक्षित बच गए। उन्होंने वज्र की नोक से वृत्रासुर का पेट फाड़ दिया और बाहर निकल आए। वज्र से उन्होंने वृत्रासुर का सिर काट दिया।

वृत्रासुर के वध से सभी देवी-देवता प्रसन्न हो गए; लेकिन इंद्र के मन में खिन्नता भर गई। उनके मन में विचार आया कि पहले एक ब्रह्महत्या हुई थी। अब त्वष्टा के इस पुत्र की हत्या से पुनः ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। ऋषि-मुनियों ने देवर्षि को विश्वास दिलाया कि वे अश्वमेध यज्ञ कराकर इस ब्रह्महत्या के पाप से उन्हें मुक्त कराएँगे।

वृत्रासुर की मृत्यु हुई तो ब्रह्महत्या चांडालिनी के रूप में इंद्र के पीछे-पीछे दौड़ने लगी। देवराज इंद्र तीनों लोकों में भागते फिरे और कहीं भी उन्हें इससे छुटकारा नहीं मिला। तब वे मानसरोवर में जाकर कमलनाल में छिप गए। इंद्र एक सहस्र वर्ष तक भूखे-प्यासे वहीं छिपे रहे। उस समय राजा नहुष ने इंद्रपद पाकर देवलोक का शासन सँभाला। लेकिन एक बार मदांध होकर राजा नहुष ने इंद्राणी पर कुदृष्टि डाली और उनके साथ भोग करने हेतु तुल गए। तब इंद्राणी ने ब्राह्मणों की सहायता से राजा नहुष को स्वर्ग से नीचे गिरा दिया। अंत में अश्वमेध यज्ञ द्वारा इंद्रदेव को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त कराया गया।





## सम्राट् चित्रकेतु को पार्वती का शाप

प्राचीन काल में शूरसेन देश में चक्रवर्ती सम्राट् चित्रकेतु राज्य करते थे। उनकी एक करोड़ रानियाँ थीं। राजा को किसी बात की कोई कमी नहीं थी। लेकिन पुत्र नहीं होने से वे सदैव चिंतित रहते। एक दिन ऋषि अंगिरा भ्रमण करते हुए राजा चित्रकेतु के महल में भी पधारे। राजा ने उनका स्वागत-सत्कार किया और विनयपूर्वक उनके सामने बैठ गया। ऋषि ने अनुभव किया कि राजा कुछ चिंतित से लग रहे हैं। उनके पूछने पर राजा ने कहा, “महर्षि, आप सबकुछ जानते हुए भी पूछ रहे हैं, इसीलिए मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ। सब सुख होने के बावजूद एक पुत्र नहीं होने से मेरा मन अशांत रहता है। इस दुःख से छुटकारा मिले, ऐसा कोई उपाय बताएँ।”

ऋषि अंगिरा ने त्वष्टा देवता के योग्य ‘चरु’ का निर्माण किया तथा राजा से कहा कि इसे अपनी रानी को दे दो। राजा ने ऋषि के इस प्रसाद को अपनी प्रिय रानी को दे दिया। प्रसाद की महिमा से रानी को गर्भ रह गया। समय आने पर एक सुंदर पुत्र का जन्म हुआ। सम्राट् चित्रकेतु बहुत ही आनंदित हुए। अपने पुत्र तथा उसकी माता में उन्हें कुछ अधिक ही स्नेह एवं आसक्ति हो गई। इस कारण राजा की दूसरी रानियाँ ईर्ष्यावश मन-ही-मन जलने लगीं। रानियों ने षड्यंत्र किया। उन्होंने राजकुमार को विष दे दिया। बालक को माता ने जाकर देखा तो उसके प्राण निकल चुके थे। राजा चित्रकेतु ने जब यह सुना तो विलाप करने लगे। प्रजा भी राजा के पुत्रवियोग से दुःखी थी; किंतु राजा के शोक को शांत करने के लिए सांत्वना देने का साहस किसी में नहीं था।

उसी समय देवर्षि नारद तथा अंगिरा ऋषि वहाँ आए। उन्होंने राजा को समझाया, “राजन्, भगवान् की माया से ही प्राणी उत्पन्न एवं नष्ट होता है। यह बालक पूर्वजन्म में तुम्हारा कौन था? जीवात्मा सदा अमर रहती है। केवल एक शरीर से दूसरे शरीर में भ्रमण मात्र करती है। अतः तुम शोक छोड़कर भगवान् की आराधना करो, वही तुम्हारा कल्याण करेंगे।”

राजा ने नारद के बताए हुए मार्ग से सात दिन तक केवल जल पीकर शांत चित्त से अनुष्ठान किया। कुछ काल पश्चात् राजा चित्रकेतु को भगवान् के दर्शन हुए। राजा ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा, “मैं ही इस जगत् के समस्त प्राणियों में व्याप्त हूँ। यह जगत् मुझमें स्थित है। मैं ही ब्रह्म हूँ। केवल मनुष्य-जन्म ही ऐसा है कि इसमें मुझे पहचानने का ज्ञान प्राप्त होता है। जीवात्मा की भलाई इसीमें है कि वह ब्रह्म तथा आत्मा की एकता को समझे।”

चित्रकेतु भगवद्-दर्शन से चैतन्य होकर स्वच्छंद विचरने लगे। उनको एक विमान प्राप्त हो गया था। एक बार वे कैलाश पर्वत के ऊपर से जा रहे थे। उन्होंने देखा कि भगवान् शंकर पार्वती को गोद में बैठाकर सामने बैठे सिद्ध-चारणों को उपदेश दे रहे हैं। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि महादेव ने सभी के सामने अपनी पत्नी को निर्लज्ज की तरह गोद में बिठा रखा है!

उनकी भावना को शिव ने तो अनदेखा कर दिया लेकिन पार्वती से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, “जिन शंकर की सेवा सभी ऋषि-मुनि, देवता करते हैं, उन्हें तुम मर्यादा का मार्ग सिखाने आए हो। दुर्बुद्धि, तुम असुर योनि में जन्म लो!” पार्वती का शाप सुनकर चित्रकेतु रथ से उतरकर नीचे आए। शाप को स्वीकार करते हुए उन्होंने सविनय कहा, “ये भोग तो प्रारब्धानुसार भोगने ही पड़ते हैं माता! शाप और वरदान तो सब प्रभु श्रीहरि की माया है। भगवान् तो समदर्शी हैं।” शंकर और पार्वती को भक्तिपूर्वक नमन करके सम्राट् चित्रकेतु वहाँ से रवाना हो गए। इन्हीं चित्रकेतु ने पार्वती के शाप से वृत्रासुर नामक असुर के रूप में जन्म लिया था। इसी पूर्वजन्म के संस्कार के कारण

वृत्रासुर भगवान् का भक्त था।

## अदिति एवं दिति की संतानों तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति

महर्षि कश्यप की दो पत्नियाँ थीं—अदिति एवं दिति। अदिति के गर्भ से इंद्र, वामन आदि देवता उत्पन्न हुए थे। दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु जैसे महाबली दैत्य पैदा हुए थे। हिरण्यकशिपु के यहाँ भक्त प्रह्लाद जनमे थे। दिति के दोनों पुत्र मारे गए, तब दिति को अति दुःख हुआ। दिति को ज्ञात हुआ कि उसके पुत्रों के वध का मूल कारण अदिति के पुत्र इंद्र ही हैं। उसने इंद्र को मारने के लिए पुत्र की कामना की। पति कश्यप को संतुष्ट करके दिति ने उनसे इंद्र को मारनेवाला पुत्र प्रदान करने का आग्रह किया। कश्यप यद्यपि बहुत दुःखी हुए, फिर भी उन्होंने पत्नी से कहा, “तुम्हें ऐसा पुत्र होगा, लेकिन तुम्हें इसके लिए एक वर्ष तक बड़ी कठोर साधना करनी होगी।”

दिति ने ऋषि के बताए अनुसार व्रत-साधना प्रारंभ कर दी।

देवराज इंद्र को पता चला कि उनकी सौतेली माता उन्हें मारने हेतु व्रत-साधना से पुत्र उत्पन्न करनेवाली है तो उन्हें बड़ी चिंता हुई। वे माता के व्रत में त्रुटि ढूँढ़ने लगे। अनायास एक दिन दिति जूठे मुँह से ही संध्या समय सो गई। देवराज इंद्र शीघ्र ही माया से दिति के उदर में घुस गए और उन्होंने गर्भ के सात टुकड़े कर दिए। जब वे सातों रोने लगे तो उनके भी सात-सात टुकड़े कर दिए। तब वे उनचास टुकड़े बोलने लगे, “भाई इंद्र, हम तो तुम्हारे भाई हैं। सदा तुम्हारा साथ देंगे, फिर हमसे यह शत्रु भाव क्यों?”

इंद्र को खेद हुआ। वे अपने सभी उनचास भाइयों को लेकर माता के उदर से निकल आए।

दिति की आँख खुली तो देखा इंद्र के साथ उनचास पुत्र खड़े हैं। तब दिति ने इंद्र से पूछा, “बेटा, यह क्या चमत्कार है? डरने की बात नहीं, सत्य कहो।”

इंद्र ने सबकुछ बता दिया। देवराज के सत्य भाषण से दिति प्रसन्न हो गई। देवराज इंद्र सभी भाइयों के साथ देवलोक चले गए।



# जय-विजय की कथा

## हिरण्याक्ष का वध

ब्रह्मा के पुत्र सनकादिक मुनियों ने एक बार भगवान् के पार्षद जय-विजय को असुर हो जाने का शाप दिया था। दिति के दोनों पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु ही तेरा युग में रावण एवं कुंभकर्ण के रूप में जनमे थे। द्वापर में उन्होंने ही शिशुपाल एवं दंतवक्र के रूप में जन्म लिया था। हिरण्याक्ष का वध वराह भगवान् ने किया था। अपने भाई के मरने पर हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया। उसने भाई का बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसने विकराल रूप प्रकट किया और लगातार भगवान् विष्णु की निंदा करने लगा।

## हिरण्यकशिपु की तपस्या व वर प्राप्ति

अपने भाई हिरण्याक्ष की पत्नियों, पुत्रों एवं अपनी माता दिति को शोकमग्न देखकर हिरण्यकशिपु उन्हें सांत्वना देकर स्वयं अजर-अमर होकर भगवान् विष्णु पर विजय प्राप्त करने हेतु मंदराचल पर्वत पर तप करने चला गया। वह एक पैर के अँगूठे से पृथ्वी पर खड़ा होकर आकाश की ओर दोनों हाथ उठाए तप करने लगा। हिरण्यकशिपु की भयंकर तपस्या से सवर्गलोक में देवता त्रस्त हो गए। तपस्या के ताप से हिरण्यकशिपु के आसपास का सारा वातावरण जलने लगा। नदी एवं समुद्र का पानी तक खौलने लगा। पृथ्वी काँपने लगी। ग्रह-तारे टूटने लगे। दसों दिशाओं में मानो आग लग गई हो। देवता भी जलने लगे। वे घबराकर ब्रह्मा के पास गए और कहने लगे, “हे जगत्पिता, हिरण्यकशिपु के इस घोर तप से तीनों लोक त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। वह अपनी तपस्या से ब्रह्मा-पद प्राप्त करके आपके लोक में रहना चाहता है!” ब्रह्मा अपने साथ में दक्ष एवं भृगु को लेकर हिरण्यकशिपु के तप स्थान पर गए। दीमक, मिट्टी, घास, बाँस आदि से उसका शरीर ढक गया था। वे उसे देख ही नहीं सके। उसकी त्वचा, मांस आदि को चीटियाँ खा गई थीं। वह अपने तप से तीनों लोकों को तपा रहा था।

ब्रह्मा ने कहा, “हिरण्यकशिपु उठो, तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई है। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम जो माँगोगे, वही वर तुम्हें दूँगा—केवल तुम्हें अमर नहीं कर सकता।” यह कहते हुए उन्होंने अपने कमंडल से मिट्टी के उस ढेर पर जल छिड़क दिया। तब वह युवा, बलिष्ठ दैत्य उठकर खड़ा हो गया। ब्रह्मा को प्रणाम करके उसने गद्गद होकर कहा, “आप अनादि, अनंत एवं सर्वज्ञ हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे यह वरदान दें कि आपके उत्पन्न किए हुए किसी भी प्राणी से—मनुष्य हो या पशु, देवता, दैत्य, नाग आदि किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो; भीतर, बाहर, दिवस में, रात्रि में; किसी भी जीव से, किसी भी हथियार से; पृथ्वी तथा आकाश में कहीं भी मेरी मृत्यु न हो; युद्ध में कोई मुझे जीत न सके; मैं एकछत्र सम्राट् बनकर पृथ्वी पर शासन करूँ। इंद्रादि देवता मेरे सामने टिक न सकें। तपस्वियों तथा योगियों को जो ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी प्राप्त हो।”

ब्रह्मा ने कहा, “तुमने जो वर माँगा है वह अति दुर्लभ है, फिर भी तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर तुमको मैं यही वर देता हूँ।”

ब्रह्मा अपने लोक चले गए। हिरण्यकशिपु अब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने भाई के वध का बदला लेने के लिए निकल पड़ा। उसने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली। इंद्र को हराकर, एकछत्र सम्राट् बन वह स्वर्ग में रहने लगा। देवता भी उसकी पूजा करने लगे। उसकी शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के अतिरिक्त सभी—लोकपाल, गंधर्व, सिद्ध, चारण, अप्सराएँ उसकी स्तुति करते रहते। वह स्वयं यज्ञ की आहुति को

भी ग्रहण करता था। दैत्यराज के कठोर शासन से सभी त्रस्त हो गए।

देवताओं ने भगवान् विष्णु की आराधना की। तब आकाशवाणी हुई—‘अभी कुछ दिन और प्रतीक्षा करो। इस दैत्य के कर्मों को मैं जानता हूँ। शीघ्र ही इसका विनाश हो जाएगा। यह अपने पुत्र प्रह्लाद से शत्रुता करेगा, तब मैं उसका नाश करूँगा!’



# भक्त प्रह्लाद को नारद का उपदेश

## हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद से द्रोह

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद सबसे छोटे थे किंतु गुणों में सबसे श्रेष्ठ थे। वे बड़े संतोषी, सौम्य स्वभाववाले एवं सत्यप्रतिज्ञ थे। बचपन से ही भगवान् के चरणों में उनकी अगाध भक्ति थी। हिरण्यकशिपु को अपने पुत्र की भक्ति से अत्यंत चिढ़ थी। वह इसी कारण महात्मा प्रह्लाद को अपराधी मानकर उन्हें दंडित करने के लिए उतारू था।

यह एक विलक्षण बात है कि पिता ही अपने ऐसे पुत्र को, जो शुद्ध हृदय एवं गुरुजनों तथा भगवान् में श्रद्धा-भक्ति रखनेवाला हो, मार डालना चाहता हो। इसके पीछे क्या रहस्य था। यह जानने की उत्सुकता धर्मराज को हुई तो उन्होंने नारद से पूछा।

नारद ने बताया कि एक दिन हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद को गोद में बैठाकर उससे पूछ रहा था कि तुमको कौन सी बात उत्तम लगती है।

प्रह्लाद ने कहा, “पिताश्री, यह संसार तो मुझे अच्छा नहीं लगता। इस झूठे प्रपंच में पड़ने के बजाय मुझे ये सब छोड़कर भगवान् का भजन करना ही उत्तम लगता है।”

पुत्र की बात सुनकर दैत्यराज हँस पड़ा। बोला, “लगता है, बच्चे के संस्कार बिगाड़ गए हैं। गुरु के यहाँ इसे सही शिक्षा नहीं मिल रही है। अवश्य वहाँ कोई वैष्णव ब्राह्मण छिपा है जो बच्चे को बहका रहा है।” दैत्यराज ने पुरोहित को बुलाकर कहा, “प्रह्लाद को उत्तम शिक्षा दिलाने की शीघ्र व्यवस्था करो।”

पुरोहित बालक प्रह्लाद को वहाँ से लेकर गए और प्यार से पुचकारते हुए पूछा, “यह उलटी बुद्धि तुमको कैसे आ गई, बेटा? तुमको किसीने बहकाया है क्या?”

प्रह्लाद ने कहा, “गुरुदेव, भगवान् की कृपा जब हो जाती है तब मनुष्य की पाशविक बुद्धि नष्ट हो जाती है। पशुबुद्धि के कारण ही ‘यह मैं हूँ और यह मुझसे भिन्न है’, इस प्रकार का भ्रम पैदा हो जाता है। भगवान् श्रीहरि ने ही, आपके शब्दों में, मेरी बुद्धि बिगाड़ रखी है। मेरा चित्त तो संसार से विरक्त होकर उस चक्रपाणि भगवान् की ओर खिंच गया है।”

गुरुजी दैत्यराज के भय से बालक प्रह्लाद की इन ज्ञानपूर्ण बातों से आतंकित हो गए। उन्होंने डाँट-डपटकर बालक को धमकाया और उसे धर्म, अर्थ एवं काम-संबंधी बातें समझाने का निष्फल प्रयास किया। फिर गुरुजी बालक को उसकी माता के पास ले गए। माता ने लाड़-प्यार से बालक को सजाया-सँवारा और उसे हिरण्यकशिपु के पास ले गई। प्रह्लाद अपने पिता के चरणों में लेट गए। हिरण्यकशिपु ने आशीर्वाद देते हुए उन्हें गले से लगा लिया। फिर गोद में बिठाकर पूछा, “पुत्र, गुरुजी ने तुम्हें जो शिक्षा दी है, उसमें से कोई अच्छी सी बात बताओ।”

प्रह्लाद ने कहा, “पिताजी, भगवान् की नवधा भक्ति—भागवत कथा का श्रवण, कीर्तन, रूप-नाम का स्मरण, चरणों की सेवा, पूजा-अर्चना, वंदना, दास्य, सखा तथा आत्मनिवेदन भाव—इनमें से किसी भी भक्ति से भगवान् की आराधना करने को ही मैं उत्तम अध्ययन समझता हूँ।”

प्रह्लाद की बात सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा। उसने गुरु की निंदा की।

गुरु ने कहा, “आपका यह पुत्र मेरे बहकाने से नहीं, अपितु अपनी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि से ही सब कह रहा है।”

हिरण्यकशिपु ने पुत्र से पूछा, “यह छोटी बुद्धि तुमको कहाँ से प्राप्त हुई?”

प्रह्लाद ने कहा, “भगवत्-प्रेम तो स्वयं ही पूर्वजन्मों के कर्मानुसार प्राप्त होता है। जिसका मन एक बार भगवान् के चरणों में लग जाता है, उसे संसार-चक्र में पड़े रहने की आवश्यकता नहीं होती। वह तो भगवत्-प्राप्ति कर लेता है।”

प्रह्लाद की बातें सुनकर हिरण्यकशिपु का क्रोध असह्य हो गया। उसने बालक को गोद से उठाकर नीचे फेंक दिया और दैत्य अनुचरों को आज्ञा दी कि इस बालक को शीघ्र ही मार डालो। यह मेरे शत्रु विष्णु की पूजा करता है। पुत्ररूप में यह मेरा शत्रु ही पैदा हो गया है। किसी भी उपाय से इसे मार डालो।

राजा की आज्ञा सुनकर दैत्यों ने त्रिशूल से प्रह्लाद पर वार किया; किंतु प्रह्लाद के तो रोम-रोम में श्रीहरि का निवास था। उन्हें कौन मार-काट सकता था? दैत्यों के सभी प्रहार व्यर्थ गए। दैत्यों ने प्रह्लाद को हाथियों से कुचलवाने, पर्वत से नीचे गिराने, दहकती अग्नि में जलाने के सभी भयंकर कृत्य किए, किंतु भक्त प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ।

अब हिरण्यकशिपु को चिंता हुई। उसने सोचा, किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव से ही इस बालक में अपूर्व सामर्थ्य आ गई है। कहीं यही तो मेरा काल नहीं है!

हिरण्यकशिपु की चिंता को समझकर गुरुजनों ने उसको सलाह दी कि गुरु शुक्राचार्य के आने तक इसे वरुणपाश में बाँधे रखो। शायद गुरुजनों के उपदेश से इसकी बुद्धि फिर जाए। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को फिर से पाठशाला ले जाने हेतु गुरु को सौंप दिया।

गुरुजन उन्हें उपदेश देते रहे। एक दिन गुरु कहीं बाहर गए थे। प्रह्लाद ने असुर बालकों को इकट्ठा किया और भगवान् के चरित्र का वर्णन करते हुए उनको भक्ति का उपदेश देने लगे।

बालकों ने प्रह्लाद से ज्ञान की बातें सुनीं तो वे उनसे पूछने लगे, “इतनी छोटी सी उम्र में आपको यह ज्ञान का प्रकाश कैसे प्राप्त हुआ?”

प्रह्लाद ने कहा, “मेरे पिताजी जब तपस्या के लिए वन में चले गए थे तो इंद्रादि देवताओं ने उपयुक्त अवसर देखकर हमारी नगरी पर आक्रमण कर दिया। मेरी माता कयाधु को भी इंद्र उठाकर ले गए। माँ मार्ग में रो रही थीं, तब देवर्षि नारद से भेंट हो गई। इंद्र के अत्याचार को देखकर नारदजी ने कहा, “इंद्र, इस निरपराध नारी पर यह अत्याचार तुम्हें शोभा नहीं देता है। यह सती-साध्वी तिरस्कार करने योग्य भी नहीं है। इसे तुरंत छोड़ दो।” इंद्र ने कहा, “देवर्षि, इसके गर्भ में अति प्रभावशाली बालक का जन्म हो जाने पर, उसे मारकर, हम इस स्त्री को छोड़ देंगे।”

नारद ने कहा, “इसके गर्भ में भगवान् का भक्त, महात्मा एवं परमज्ञानी बालक है। तुम उसको नहीं मार सकोगे।” नारद के वचन सुनकर इंद्र ने मेरी माता को छोड़ दिया। भगवान् का भक्त उदर में है, यह सुनकर इंद्र ने मेरी माता की परिक्रमा करके भक्ति भाव से उन्हें नमन किया और इंद्रलोक के लिए रवाना हो गए। मेरी माता नारदजी के आश्रम पर ही रहीं। नारदजी ने उन्हें पुत्रीवत् रखा और उन्हें भागवत-धर्म के रहस्य एवं ज्ञान का उपदेश दिया। मैंने गर्भ में वह सब ग्रहण कर लिया। मुझे जन्म देने के बाद माता को उस भागवत-धर्म का विस्मरण हो गया। लेकिन मुझे वह अभी तक स्मरण है। मित्रो, तुमको भी वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भागवत-धर्म इस प्रकार से है—“शरीर अनित्य है, आत्मा नित्य है; शरीर विनाशी है, आत्मा अविनाशी है; शरीर मलिन है, आत्मा शुद्ध है; शरीर अनेक हैं, आत्मा एक है; शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है; शरीर आश्रित है, आत्मा आश्रय है; शरीर विकारी है, आत्मा निर्विकार है; शरीर दूसरे से प्रकाशित होता है, आत्मा स्वयं प्रकाश है; शरीर कार्य है, आत्मा कारण है; शरीर

व्याप्त है, आत्मा व्यापक है; शरीर संसर्ग है, आत्मा असंग है; शरीर आवरण है तो आत्मा निवरण रूप है!”

“आत्मज्ञान से ‘मैं’ एवं ‘मेरा’ इस भ्रांति से मनुष्य मुक्त हो जाता है और भगवान् के चरणों की भक्ति प्राप्त कर लेता है। भगवान् केवल निष्काम भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।”

सभी बालकों ने निर्मल मन होने के कारण प्रह्लाद के उपदेश को ग्रहण कर लिया। दैत्य गुरु ने जब यह देखा कि सभी विद्यार्थियों की बुद्धि भगवान् में स्थिर हो रही है तो वे घबरा गए और हिरण्यकशिपु के पास जाकर बताने लगे कि प्रह्लाद ने अपने साथी विद्यार्थियों पर भी भगवान् की भक्ति का प्रभाव डाल दिया है। पिता ने निश्चय किया कि प्रह्लाद को अब अपने हाथों से ही मार डालना होगा। हिरण्यकशिपु ने अति क्रोधित होकर हाथ में खड्ग उठा लिया और दहाड़ उठा—“अरे, पितृद्रोही! मैं जगत् का स्वामी हूँ और तू दूसरे के गुण गाता फिर रहा है। अब मैं देखता हूँ तेरा भगवान् कहाँ है! क्या इस खंभे में भी तेरा भगवान् है? मैं तेरा सिर उड़ा दूँगा। देखता हूँ, तेरा भगवान् कैसे तेरी रक्षा करने आता है!”

## नृसिंहावतार

हिरण्यकशिपु ने सिंहासन से छलाँग लगाई और आवेश में खंभे पर जोर से प्रहार किया। उसी क्षण खंभे से भयंकर ध्वनि गूँज उठी। उस गर्जना से सभी लोकपाल काँप उठे। हिरण्यकशिपु भी उस घोर गर्जन से घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगा। फिर वह खड्ग लेकर प्रह्लाद की ओर झपटा। तभी ब्रह्मा के दिए वचन को सत्य करने के लिए भगवान् को विचित्र स्वरूप में प्रकट होना पड़ा। वह न तो मनुष्य का शरीर था और न ही पूर्ण रूप से सिंह का। हिरण्यकशिपु चकित रह गया—‘यह कैसा अलौकिक प्राणी है!’

भगवान् नृसिंह के विशाल जबड़े, भयंकर नाखूनों एवं विकराल शरीर को देखकर हिरण्यकशिपु को विचार आया—कहीं विष्णु ही इस मायावी, छली स्वरूप में मुझे मारने तो नहीं आए हैं! फिर सोचा—मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता; क्योंकि ब्रह्मा ने मुझे वरदान दे रखा है। दैत्यराज हिरण्यकशिपु भगवान् पर टूट पड़ा। भगवान् ने झटपट उसे पकड़ लिया, फिर छोड़ दिया। इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए खिलाकर, डराकर भयंकर गर्जना करते हुए नृसिंह भगवान् ने दैत्यराज को अपने पंजों से कसकर पकड़ लिया और सभा के द्वार पर ले जाकर उसे अपनी जाँघों पर रख लिया। फिर अपने विशाल नाखूनों से उसे फाड़ डाला। उसका वध करके नृसिंह भगवान् सिंहासन पर बैठ गए। दैत्यराज की मृत्यु से प्रसन्न सभी देवता, गंधर्व, सिद्ध तथा ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र आदि ने भगवान् की स्तुति की। सभी ने नृसिंह भगवान् के अलौकिक स्वरूप की पूजा की।

नृसिंह भगवान् का क्रोध शांत नहीं हुआ था। देवताओं ने लक्ष्मी की प्रार्थना करके उन्हें वहाँ बुलाया; लेकिन भगवान् का विकराल, भयंकर स्वरूप देखकर लक्ष्मी भी उनके सन्मुख नहीं गईं। तब स्वयं भक्त प्रह्लाद ने भगवान् के सामने जाकर उनको साष्टांग प्रणाम किया। भगवान् ने बालक को उठाकर हृदय से लगा लिया। दैत्यपुत्र प्रह्लाद के जो कुछ अशुभ संस्कार शेष थे, वे भी भगवान् के स्पर्श से नष्ट हो गए।

प्रह्लाद ने स्तुति की, “हे भगवान्, दैत्यराज की मृत्यु से सभी को आनंद मिला है। अब आप क्रोध शांत कीजिए और अपने आनंदमय स्वरूप का दर्शन दीजिए। मैं आपके विकराल स्वरूप से भयभीत नहीं हूँ। मुझे तो इस संसार चक्र का ही भय रहता है। आप की कृपा से अब मैं इस संसार-सागर से पार हो जाऊँगा। हे प्रभु, मुझे किसी ऐश्वर्य या धन-संपत्ति की इच्छा नहीं है। बस, मुझे तो अपने चरणों में स्थान दीजिए।”

नृसिंह भगवान् ने प्रह्लाद की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने के लिए कहा तो आत्मज्ञानी भक्त प्रह्लाद ने कहा, “मैं तो निस्स्वार्थ भाव से सेवा करनेवाला आपका सेवक हूँ। मुझे केवल इतना ही वरदान दीजिए कि मेरे मन में और किसी प्रकार की कामना न पैदा हो। मेरा मन आपके चरणों में लगा रहे।”

भगवान् नृसिंह ने कहा, “तुमको किसी वस्तु की कामना नहीं है। फिर भी मेरी आज्ञा मानकर इस लोक का राज्य स्वीकार करो। तुम्हारे हृदय में सदा मेरा वास रहेगा। राज्य भोगने के बाद तुम अपना शरीर त्यागकर मेरे लोक को चले आना।”

प्रह्लाद ने आग्रह किया, “प्रभो, मेरे पिता यद्यपि असुर थे और आपको शत्रु समझते थे, फिर भी आप उनको सद्गति प्रदान करें।”

प्रह्लाद ने अपने पिता का अंतिम संस्कार किया।

भगवान् नृसिंह ने ब्रह्मा से कहा कि आप किसी भी क्रूर स्वभाववाले को ऐसा वर अब कदापि न दें। इतना कहकर भगवान् नृसिंह अंतर्धान हो गए।

त्रेतायुग में रावण-कुंभकर्ण दोनों भाइयों को भगवान् राम ने तथा द्वापर में शिशुपाल एवं दंतवक्र का भगवान् कृष्ण ने वध करके जय-विजय नामक दोनों पार्षदों को मुक्त किया था।

## मायावी मय के त्रिपुर की कथा

एक बार मय दानव ने सोने-चाँदी तथा लोहे के तीन विमान बनाए। वे तीनों विमान महानगरियों के समान थे। जिनमें दैत्य लोग रहते थे। उनमें भोग-विलास की भरपूर सामग्री थी। ये तीनों विमान आकाश में उड़ते रहते थे। आकाश में विचरते दैत्य देवों को मारते रहते थे। देवताओं ने भगवान् शंकर के पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि ये असुर विमानों में बैठकर हमें घोर कष्ट देते हैं। भगवान् शंकर ने उनकी रक्षा के लिए दैत्यों के विमानों को नष्ट करने का आश्वासन दिया। अंत में उन्होंने अपने बाणों से दैत्यों को मार गिराया। मायावी मय दानव उन मृत दैत्यों को उठाकर ले गया और अमृत के कुँएँ में डालकर उन्हें फिर से जीवित कर दिया।

महादेव यह देखकर उदास हो गए। उस समय भगवान् विष्णु स्वयं गाय बने और ब्रह्मा को बछड़ा बनाकर अमृत-कूप का सारा अमृत पी गए। भगवान् ने शक्तिसंपन्न होकर अपने बाणों से उन तीनों विमानों को मार गिराया और उन्हें भस्म कर दिया।

इस त्रिपुर को नष्ट करने के कारण ही भगवान् शंकर को ‘त्रिपुरारि’ भी कहा जाता है।





## मन्वंतरों का वर्णन

उस कल्प में छह मन्वंतर बीत चुके थे। पहले मनु स्वायंभुव मनु थे। उनकी दो पुत्रियाँ थीं। देवहुति के पुत्र कपिल मुनि हुए जो भगवान् का अवतार थे। दूसरी कन्या आहुति के गर्भ से भगवान् यज्ञपुरुष ने अवतार लिया था।

अंत में संपूर्ण भोगों से विरक्त होकर स्वायंभुव मनु पत्नी शतरूपा के साथ तपस्या करने के लिए सुनंदा नदी के तट पर चले गए। वे भगवान् की स्तुति करने लगे—‘जिनका न आदि है न अंत, न मध्य है न कोई अपना-पराया है, वही सत्य परब्रह्म हैं! जगत् को शिक्षा देने के लिए ही वे कर्म करते रहते हैं। मैं उन्हें बारंबार नमस्कार करता हूँ।’

उस समय कुछ असुर एवं राक्षस मनु को खाने के लिए दौड़े। तब भगवान् यज्ञपुरुष ने अपने पुत्र ‘याम’ और देवताओं के साथ उन असुर-राक्षसों का नाश किया। उन्होंने इंद्रपद धारण किया और स्वर्ग का राज्य करने लगे।

दूसरे मनु स्वरोचिष हुए। उस काल में वेदशिरा ऋषि की पत्नी के गर्भ से भगवान् विभु प्रकट हुए। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उन्हींके प्रभाव से अट्ठासी हजार ऋषि भी ब्रह्मचारी रहे।

तीसरे मनु प्रियव्रत के पुत्र उत्तम थे। उस काल में भगवान् सत्यसेन ने अवतार लिया था।

चौथे मनु तामस थे। तामस मन्वंतर में भगवान् हरि ने अवतार लिया था, जिन्होंने गजेंद्र की ग्राह से रक्षा की थी।

### गज-ग्राह कथा

गजेंद्र एवं ग्राह की कथा इस प्रकार है—क्षीरसागर में त्रिकूट नाम का एक विशाल पर्वत था। उसके सोने, चाँदी और लोहे के तीन शिखर थे। उसके प्रकाश से सभी दिशाएँ जगमगाती रहती थीं। सुंदर वन वहाँ की शोभा थे। विविध भाँति के पक्षियों का कलरव गूँजता रहता था। वहाँ बहुत सी नदियाँ एवं सरोवर थे, जिनकी निर्मल एवं स्वच्छ सुगंध भरी धाराओं में देवांगनाएँ स्नान करती थीं। पर्वत की तराई में एक उद्यान था। उद्यान के निकट एक सरोवर था। उस सरोवर पर अपनी हथिनियों के साथ गजेंद्र आनंद से विहार करता था। गजेंद्र बड़ा ही शक्तिशाली था। उसके भय से जंगली पशु भाग जाते थे। एक दिन वह प्यास से व्याकुल होकर सरोवर के तट पर पहुँचा। निर्मल, शीतल एवं मधुर जल से कमलों की महक आ रही थी। गजेंद्र ने मन-भरकर जल पिया। फिर स्नान किया और मस्ती में भरकर अपने बच्चों तथा हथिनियों पर सँड में पानी भर-भरकर उछालने लगा। उसी समय एक ग्राह ने गजेंद्र का पाँव पकड़ लिया और उसे सरोवर में खींचना शुरू किया। शक्तिशाली गज भी पूरा जोर लगाने लगा।

इस संघर्ष में कभी ग्राह सरोवर के तट पर खिंचा चला आता तो कभी गजेंद्र सरोवर के भीतर चला जाता। इस प्रकार लड़ते-लड़ते हजार वर्ष निकल गए। ग्राह तो जलचर था। अतः सरोवर में उसकी शक्ति की वृद्धि होती रही। लेकिन गजेंद्र की शक्ति क्षीण होती चली गई। अंत में बचने का कोई उपाय न देखकर गजेंद्र ने भगवान् श्रीहरि की शरण ली। वह आर्त स्वर में मन को एकाग्र करके पूर्वजन्म में सीखे हुए स्तोत्र से भगवान् की प्रार्थना करने लगा—“संसार को चेतन शक्ति देनेवाले परमपिता परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सबकी रक्षा करते हैं, सबके आधार हैं तथा प्रलयकाल के घोर अंधकार से परे विराजमान हैं, उन परमेश्वर श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अपने भक्तों की सदा रक्षा और उनका कल्याण करते हैं, उन श्रीहरि को मेरा नमस्कार है। हे प्रभु, मेरे उद्धार के लिए आप प्रकट हों!”

गजेंद्र की आर्त पुकार पर तत्काल गरुड़ पर सवार श्रीहरि वहाँ आए। गजेंद्र ने देखा कि श्रीहरि आ रहे हैं तो उसने अपनी सँड से कमल का सुंदर पुष्प उठाया और भगवान् के चरणों पर चढ़ा दिया। भगवान् ने गजेंद्र की पीड़ा एवं व्याकुलता देखी। वे शीघ्र ही गरुड़ से उतरे। गज एवं ग्राह दोनों को एक साथ उठाकर वे बाहर लाए और चक्र से

ग्राह का मुख फाड़कर गजेंद्र की रक्षा की। ब्रह्मा, शंकर तथा सभी देवता एवं गंधर्वों आदि ने भगवान् की प्रदक्षिणा की। भगवान् के स्पर्श से गजेंद्र मुक्तिपद पा गया।

वास्तव में गजेंद्र पूर्वजन्म में द्रविड देश का राजा था। वह राज-पाट त्यागकर मलय पर्वत पर तपस्वी वेश में रहता था। एक बार स्नान आदि से निवृत्त होकर राजा भगवान् की आराधना में मौन बैठा था। उसी समय अगस्त मुनि अपने शिष्यों के साथ उस मार्ग से आए। राजा को निर्द्वंद्व बैठा देखकर तथा उससे किसी प्रकार का आतिथ्य न पाकर मुनिश्रेष्ठ को क्रोध आया। उन्होंने उसे शाप दिया कि अभिमानवश ब्राह्मणों का अपमान करने के लिए तू हाथी के समान बैठा है, अतः तू हाथी की योनि प्राप्त करेगा। इसी कारण राजा ने गजेंद्र की योनि में जन्म लिया। लेकिन पूर्वजन्म के संस्कारवश गजेंद्र को भगवान् की स्मृति बनी रही।



## समुद्रमंथन

पाँचवें मनु रैवत हुए। उस काल में भगवान् का वैकुण्ठ नामक अवतार हुआ। लक्ष्मी के कहने पर उन्होंने वैकुण्ठधाम का निर्माण किया। छठवें मनु चाक्षुष थे। उस काल में अजित भगवान् का अवतार हुआ, जिन्होंने समुद्रमंथन में देवता तथा दैत्यों की सहायता की थी और कच्छप अवतार भी ग्रहण किया था।

दैत्यों के राजा बलि के शासन में दैत्य, दानव, असुर आदि अति प्रबल हो रहे थे। उनके साथ उनके गुरु शुक्राचार्य की अगाध शक्ति भी थी। इसी दौरान इंद्र दुर्वासा के शाप से शक्तिहीन हो गए थे। देवताओं को इस स्थिति से बड़ी चिंता हो रही थी। उन्होंने ब्रह्मा के पास जाकर देवलोक को भय से मुक्त कराने की प्रार्थना की। ब्रह्मा उन सब देवताओं के साथ भगवान् वैकुण्ठ के पास वैकुण्ठधाम में पहुँचे। वहाँ उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। ब्रह्मा ने भगवान् की प्रार्थना की, तब भगवान् अपने चतुर्भुज स्वरूप में देवताओं के बीच प्रकट हुए। भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपनी मधुर वाणी में देवताओं से कहा, “यह समय दैत्यों के अभ्युत्थान एवं तुम्हारी अवनति का है, इसी कारण तुम लोग कष्ट पा रहे हो। संकटकाल को मैत्रीभाव से व्यतीत कर देना चाहिए। तुम इस समय दैत्यों से मित्रता कर लो और क्षीरसागर का मंथन करके उसमें से अमृत निकालकर पान कर लो। दैत्यों की सहायता एवं श्रम से यह कार्य सफलतापूर्वक होगा। उनके परिश्रम से तुमको अमृत प्राप्त हो जाएगा। इस कार्य के लिए असुरों को प्रसन्न करना है, अतः उनकी किसी भी शर्त को मान लेना चाहिए। अपना काम तो शांति से ही पूरा होता है, क्रोध करने से काम बिगड़ते हैं। तुम अमृतपान करके अमर हो जाओगे और तुम्हें दैत्यों को मारने की सामर्थ्य भी प्राप्त होगी।” यह कहकर भगवान् अंतर्धान हो गए।

तब देवराज इंद्र देवताओं को साथ लेकर दैत्यराज बलि के पास गए और अमृत प्राप्ति के लिए समुद्रमंथन में साथ देने को कहा। राजा बलि ने स्वीकार कर लिया।

दैत्यों तथा देवों ने मिलकर क्षीरसागर का मंथन करने के लिए मंदराचल पर्वत को उखाड़ लिया। पर्वत को सागर तक लाने में कितने ही दैत्यों तथा देवों के कुचल जाने के बाद भी सफलता नहीं मिली, तब भगवान् स्वयं गरुड़ पर आए। उन्होंने खेल-ही-खेल में मंदराचल को उठाकर गरुड़ पर रख लिया तथा देव-दैत्यों को साथ लेकर क्षीरसागर पर आ गए। देव-दैत्य मंदराचल की रई तथा वासुकि नाग की नेति (डोरी) बनाकर उस पर्वत को समुद्र में खड़ा करने को उद्यत हुए; लेकिन बिना किसी आधार के पर्वत सागर के जल में डूबने लगा। तब भगवान् श्रीहरि ने कच्छप रूप धारण करके समुद्र में प्रवेश किया और पर्वत को पीठ पर उठाकर मंथन आरंभ करवा दिया। देवताओं ने अजित भगवान् के साथ ही नागदेवता को मुख की ओर से पकड़ना चाहा। दैत्यों ने सोचा कि इसमें अवश्य कोई लाभ है, अतः वे बोले, “मुख की ओर से हम खींचेंगे, आप लोग पूँछ की ओर जाएँ।” देवताओं ने वासुकि नाग का मुँह छोड़कर पूँछ पकड़ ली; दैत्यों ने मुँह पकड़ लिया और मंथन आरंभ कर दिया।

मंथन करने पर सबसे प्रथम जल का पापरूप उग्र कालकूट विष उत्पन्न हुआ। विष के भीषण ताप से देवता और असुर जलने लगे। उससे बचने का कोई मार्ग न देखकर देव-असुर भगवान् शिव के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना करने लगे, “प्रभु, इस भयंकर विष से हमारी रक्षा करो।” शंकर को दया आ गई। देव-असुरों की व्याकुलता देखकर उनकी रक्षा करने हेतु भगवान् शंकर ने मंथन-स्थल पर आकर विष को हथेली में उठा लिया और पान कर गए। शिव ने विष को अपने कंठ से नीचे नहीं उतरने दिया। कालकूट विष के कारण भगवान् शिव का कंठ नीला पड़ गया। तब भगवान् शिव ‘नीलकंठ’ के नाम से भी पूजे जाने लगे। सज्जन एवं परोपकारी लोग स्वयं कष्ट

उठाकर भी दूसरों का भला करते हैं। भगवान् शंकर के हाथ से विष की कुछ बूँदें टपक गई थीं। उसे पृथ्वी पर साँप, बिच्छू आदि जंतुओं ने ग्रहण कर लिया।

उसके बाद मंथन से कामधेनु निकली, जिसे ऋषियों ने ले लिया। फिर उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, उसे दैत्यराज बलि ने ले लिया। इसके पश्चात् समुद्र से ऐरावत हाथी निकला। उसे इंद्र ने लिया। कौस्तुभमणि निकली, उसे अजित भगवान् ने धारण कर लिया। कल्पद्रुम निकला, वह देवताओं को दे दिया गया। फिर मंथन से रंभा नाम की अप्सरा निकली। वह भी देवलोक में चली गई। फिर मंथन करने पर लक्ष्मी प्रकट हुई। लक्ष्मी को देखकर देवता-असुर सभी के मन में लालच आ गया। लेकिन लक्ष्मी स्वयं ही भगवान् अजित के पास चली गई और उनका आश्रय ले लिया। फिर समुद्र से कन्या के रूप में वारुणी निकली। दैत्यों ने उसे ग्रहण किया। फिर चंद्रमा, पारिजात वृक्ष तथा शंख आदि निकले। अंत में अमृतघट हाथ में लिये धन्वंतरि प्रकट हुए।

## मोहिनी स्वरूप

दैत्यों ने झपटकर अमृतघट को धन्वंतरि के हाथ से छीन लिया। देवताओं ने जब यह देखा तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ—जिस अमृत की प्राप्ति के लिए यह संघर्षपूर्ण मंथन किया गया था, वह अमृतघट दैत्य ले गए! भगवान् ने देवताओं की व्याकुलता देखी तो ‘मोहिनी’ स्वरूप धारण किया। अत्यंत सुंदरी मोहिनी की भाव-भंगिमा, कटाक्ष तथा आकर्षक देहयष्टि ने देव-दैत्यों की तो बात ही क्या साक्षात् भगवान् शंकर को भी मोहित कर लिया। शिव उस सुंदरी के हावभाव एवं मधुर मुसकान पर मुग्ध हो गए। दैत्यों ने देखा कि वह मोहिनी उनकी ओर तिरछी चितवन से देख रही है। उन्होंने अमृत कलश के लिए हो रहे परस्पर झगड़े को छोड़ दिया और मोहिनी पर आसक्त हो गए। मोहिनी दैत्यों के निकट आई तो उन्होंने उन्मत्त होकर कहा, “आओ सुंदरी, तुम शायद हमारा झगड़ा निबटाने के लिए ही आई हो! हम तुमपर मुग्ध हो गए हैं। तुम अपने हाथों से अमृतपान कराओ।”

मोहिनी ने कहा, “दैत्य एवं देव, तुम दोनों ही महर्षि कश्यप के पुत्र हो और मेरे जैसी स्वेच्छाचारिणी पर विश्वास कर रहे हो। तुम सब मिलकर अमृतपान कर लो।” कामांध दैत्यों को सुंदर स्त्री पर और भी विश्वास हो गया। वे बोले, “तुम अपने हाथों से ही अमृत बाँट दो।” मोहिनी ने कहा, “मैं जैसे भी, जो कुछ भी करूँगी, वह स्वीकार हो तो मैं सबको अमृत पिला सकती हूँ।”

सभी ने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया। एक दिन का उपवास करके देवता व दैत्य अलग-अलग पंक्तियों में अमृतपान के लिए बैठ गए। मोहिनी ने अमृतकलश उठाया और दोनों के बीच खड़ी हो गई। वह अपनी लुभावनी चितवन एवं मोहक मुसकान से दैत्यों की ओर देखती जाती और अमृतकलश से देवताओं को अमृतपान कराती मोहिनी अपनी मादक चाल से आगे बढ़ रही थी। दैत्य तो अमृत को भूल ही गए थे। वे मोहिनी की छवि में खोए रह गए। दैत्यों को विश्वास था कि यह सुंदरी उन्हें अमृत अवश्य पिलाएगी। वे मंत्रमुग्ध प्रतीक्षा करते रहे। भगवान् की इस चाल को राहु दैत्य समझ गया। वह अमृतपान करने लगा ही था कि सूर्य एवं चंद्रमा ने उसे पहचानकर शोर मचा दिया कि यह दैत्य है! भगवान् ने तत्काल अपने चक्र से राहु का सिर काट दिया। अमृत के प्रभाव से ‘राहु’ का सिर जीवित रहकर एक ग्रह के रूप में स्थापित हो गया। धड़ ‘केतु’ पृथ्वी पर गिर गया। तभी से राहु सूर्य-चंद्रमा के प्रति वैरभाव रखता है और उनपर आक्रमण करके उन्हें ग्रस लेता है। उसीको ग्रहण कहते हैं।

## देवासुर संग्राम

भगवान् की कृपा से देवों को अमृत एवं असुरों को श्रममात्र मिला। दैत्यों को जब अमृत नहीं मिला तो उन्हें बहुत क्रोध आया। उन्होंने देवताओं पर पूरी शक्ति के साथ आक्रमण कर दिया। देवता तो अमृतपान से अमर हो गए थे,

फिर भगवान् की कृपा भी उनके ऊपर थी। वे भी अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर दैत्यों से भिड़ गए। क्षीरसागर के तट पर भयंकर संग्राम हुआ। उसे 'देवासुर संग्राम' के नाम से आज भी जाना जाता है।

इंद्र ने देखा कि दैत्यों का बल बढ़ता जा रहा है तो वह भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर आए और राजा बलि को ललकारने लगे। बलि और इंद्र का भयंकर युद्ध हो रहा था। सूर्य बलि के सौ पुत्रों से, स्वामी कार्तिक तारकासुर आदि राक्षसों से, भद्रकाली शुभ-निशुंभ से, महादेव भस्मासुर से, अग्निदेव महिषासुर से, चंद्रमा राहु से, शनिश्चर देवता नरकासुर से युद्ध करने लगे। इंद्र और बलि परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे। इंद्र के ऐरावत पर भी जब बाण धँसने लगे तो इंद्र ने शक्तिशाली अस्त्र का प्रयोग किया। राजा बलि इंद्र की वीरता से घबराकर आसुरी माया से अंतर्धान हो गया और विभिन्न राक्षसी माया से देवताओं पर आक्रमण करने लगा। इंद्र भी इस माया के प्रभाव से पीड़ित हो गए। उन्होंने भगवान् श्रीहरि का ध्यान किया। भगवान् प्रकट हुए। तुरंत ही आसुरी माया लुप्त हो गई।

कालनेमि नामक दैत्य ने हाथ में त्रिशूल उठाकर भगवान् पर आक्रमण कर दिया। भगवान् ने उसे मार गिराया। भगवान् की कृपा से देवताओं की व्याकुलता दूर हो गई। अब राजा बलि और इंद्र आमने-सामने आकर पुनः युद्ध करने लगे। इंद्र ने बलि पर वज्र से प्रहार किया। बलि पृथ्वी पर गिर पड़ा। भस्मासुर ने आगे बढ़कर इंद्र पर वार किया तो इंद्र ने वज्र से उसका सिर काट गिराया। भस्मासुर का वध होते ही उसके भाई नमुचि आदि ने इंद्र को घेर लिया तो देवता घबरा गए। इंद्र ने वज्र से शत्रुओं के सिर काट-काटकर गिरा दिए। नमुचि पर वज्र का कोई असर न होता देखकर इंद्र को आश्चर्य हुआ। सहसा आकाशवाणी हुई कि इस दैत्य की मृत्यु सूखी तथा गीली वस्तु से नहीं होगी। तब इंद्र ने विचार करके समुद्रफेन से (जो न सूखा है, न ही गीला) मारकर नमुचि का सिर काट दिया।

दानवों का नाश हो गया। तब ब्रह्मा ने नारद को देवताओं के पास भेजा और देवासुर संग्राम को बंद कराया। देवता अपने लोक को चले गए।

दैत्य युद्ध में मारे गए, राजा बलि तथा अन्य दैत्यों को गुरु शुक्राचार्य के पास लाए। अपनी संजीवनी विद्या से शुक्राचार्य ने राजा बलि को पुनः जीवित कर दिया। राजा बलि ने गुरु शुक्राचार्य की तन-मन से सेवा की। इंद्र द्वारा छीनकर ले जाने के बाद बचा हुआ अपना सर्वस्व उन्होंने शुक्राचार्य को समर्पित कर दिया। भृगुवंशियों ने राजा बलि से 'विश्वजीत' नाम का एक यज्ञ कराया।

उस यज्ञ से अग्नि देवता ने राजा बलि को सोने का दिव्य रथ, घोड़े एवं दिव्य धनुष तथा दो अक्षय तरकश दिए। प्रह्लाद ने कभी न मुरझानेवाली दिव्य माला दी। शुक्राचार्य ने दिव्य शंख दिया। इस प्रकार दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा बलि ने फिर इंद्र से युद्ध करने के लिए इंद्र की अमरावती नगरी को घेर लिया और अपने दिव्य शंख से घनघोर ध्वनि की।

देवताओं के हृदय दहल उठे। देवराज इंद्र भी घबरा गए। वे गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे और बोले, "देव, बलि ने बड़ी तैयारी के साथ धावा बोल दिया है। उसने ऐसी कौन सी शक्ति कहाँ से प्राप्त की है, जो हम उसका मुकाबला करने में असमर्थ से हो रहे हैं।"

बृहस्पति ने देवराज को समझाया, "भृगुवंशी ब्राह्मणों ने अपना ब्रह्मतेज देकर उसे शक्तिशाली बना दिया है। भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त राजा बलि के सामने कोई ठहर नहीं सकता। काल की गति को समझकर तुम लोग अपने अभ्युत्थान की प्रतीक्षा करो और स्वर्ग छोड़ दो।"

इंद्र आदि देवताओं ने अमरावती छोड़ दी और अन्यत्र जाकर छिप गए। राजा बलि ने अमरावती पर अधिकार कर लिया। उन्होंने विश्वविजयी होकर सौ अश्वमेध यज्ञ किए। उनका यश तीनों लोकों में फैल गया। ब्राह्मणों की कृपा से राजा बलि तीनों लोकों पर राज करने लगे।



## वामन अवतार

देवता लोग वनों तथा कंदराओं में बड़े कष्ट से दिन बिता रहे थे। माता अदिति को अपने पुत्रों की व्यथा से बड़ा क्लेश हुआ। ऋषि कश्यप घोर तपस्या कर रहे थे। तपस्या पूरी होने पर वे अपने आश्रम में आए तो वहाँ का उदासीन, अस्त-व्यस्त वातावरण एवं अदिति की व्याकुलता देखकर वे पूछने लगे, “तुमसे कोई अधर्म, ब्राह्मणों का अहित अथवा साधु-महात्माओं का अपकार तो नहीं हुआ?”

अदिति ने कहा, “मैंने धर्म का पालन करते हुए सबकी सेवा की है। कोई अतिथि अपने द्वार से विमुख नहीं गया। दैत्य एवं देवता दोनों आपके ही पुत्र हैं। दैत्यों ने देवताओं की अमरावती छीन ली है। देवता दुःखी होकर जंगलों में छिपते फिर रहे हैं। मेरे पुत्रों का दुःख आप ही दूर कर सकते हैं।”

कश्यप ने कहा, “देवी, सबके दुःख हरनेवाले तो भगवान् श्रीहरि ही हैं। उन्हींकी यह सब माया है। तुम उनकी अराधना करो और भगवान् को प्रसन्न करके अपने पुत्रों का कष्ट दूर करने के लिए पयोव्रत करो। बारह दिनों तक केवल दूध पीकर इस व्रत को करना चाहिए। बारह दिनों तक पूजा, होम, जप करके ब्राह्मणों को खीर के भोजन से तृप्त करना चाहिए। भूखों को अन्न-वस्त्रादि बाँटना चाहिए। भगवान् की कथा सुननी चाहिए। इससे तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।”

अदिति ने पति द्वारा बताई गई विधि से बड़ी श्रद्धा, भक्ति एवं नियमपूर्वक पयोव्रत किया। भगवान् प्रकट हुए। देवमाता अदिति भगवान् को नमस्कार करके एकटक उनकी ओर देखती रहीं। भगवान् ने माता अदिति से कहा, “तुम्हारे अनुष्ठान से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, लेकिन अभी मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। तुम्हारे पुत्रों को विजय नहीं मिल सकती। माता, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ति हेतु मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ जन्म लेकर तुम्हारे पुत्रों का उद्धार करूँगा।” यह कहकर भगवान् अंतर्धान हो गए। कश्यप मुनि अपने योगबल से भगवान् के रहस्यमय वचन समझ गए। अदिति के गर्भ में भगवान् के अंश ने प्रवेश किया। यह रहस्य ब्रह्मा को भी मालूम हो गया।

शुभ समय में विजया द्वादशी के दिन भगवान् का जन्म हुआ। उनके जन्म के साथ ही कश्यप का आश्रम प्रकाश से भर गया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि की। कश्यप ने जाति-कर्म संस्कार करके पुत्र को ‘वामन’ नाम दिया। उपनयन संस्कार के समय गायत्री का उपदेश दिया। बृहस्पति ने यज्ञोपवीत, पृथ्वी ने मृगचर्म, चंद्रमा ने दंड, ब्रह्मा ने कमंडलु, आकाश ने छत्र, सप्तऋषियों ने कुश, सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला, पिता कश्यप ने मेखला तथा माता ने कौपीन दी। वामन भगवान् का उपनयन संस्कार हुआ। कुबेर ने उन्हें भिक्षापात्र दिया। वामन भगवान् ने बटुक वेश धारण कर लिया और जगज्जननी उमा से भिक्षा ली।

राजा बलि उस समय इंद्रपद की प्राप्ति के लिए नर्मदा के तट पर सौवाँ अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। बटुक वेश में वामन भगवान् यज्ञ स्थल पर पहुँचे तो उनके असह्य तेज को देखकर यज्ञ में ब्राह्मणों ने सोचा—सूर्य भगवान् प्रसन्न होकर स्वयं राजा बलि को वरदान देने आ रहे हैं? गुरु शुक्राचार्य भी कल्पनाएँ करते रहे कि कहीं सनतकुमार या अग्निदेव तो नहीं आ रहे हैं! या इंद्र ही यज्ञ में विघ्न डालने आ रहा हो! उसी समय छत्र, दंड, कमंडलु लिये वामन भगवान् बौने ब्राह्मण के वेश में यज्ञमंडप में आकर खड़े हो गए। सभी ब्राह्मणों एवं ऋषियों ने उठकर उन्हें प्रणाम किया। वामन भगवान् का लघु रूप अत्यंत सुंदर था। राजा बलि ने उठकर उन्हें आसन प्रदान किया। श्रद्धा के साथ उनके पैर धोए और पूजा की। उनके चरणोदक को मस्तक पर धारण किया। राजा बलि ने मधुर वाणी में कहा, “हे ब्राह्मण देवता! आपके आगमन से यह स्थान तथा हम सभी पवित्र हो गए। आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा

करूँ?”

भगवान् वामन अति प्रसन्न हुए और बोले, “आप श्रेष्ठ हैं, राजन्! आप ब्राह्मण शुक्राचार्य के परमभक्त हैं। आपके पितामह प्रह्लाद महान् भक्त थे। आप उस दानी कुल के हैं जो दान देने को कहकर अपनी बात से फिरते नहीं। प्रतिज्ञा को पूरा करना आपका धर्म है; आप सर्वोत्तम हैं। मैं आपसे केवल तीन डग पृथ्वी अपने रहने के लिए माँगता हूँ। मुझे अपनी आवश्यकतानुसार केवल इतनी ही जगह चाहिए।”

राजा बलि ने हँसकर कहा, “ब्राह्मण देवता, आपकी कृपा से मुझमें द्वीप-का-द्वीप दान करने की सामर्थ्य है, फिर भी आपने केवल तीन डग पृथ्वी ही माँगी है! आपने बुद्धिमानी की बात नहीं की। आप और भी जो चाहें, माँग लें।”

वामन भगवान् ने कहा, “मुझे केवल तीन डग पृथ्वी में ही संतोष है।”

राजा बलि ने कहा, “ठीक है। आपको जितनी आवश्यकता है, उतनी ही ले लें!”

पृथ्वी-दान का संकल्प करने के लिए राजा ने पात्र उठाया ही था कि शुक्राचार्य ने कहा, “दैत्यराज, यह क्या कर रहे हो? इनको मैं भली प्रकार जानता हूँ, ये स्वयं विष्णु भगवान् हैं, जो देवताओं की भलाई के लिए अदिति के गर्भ से जन्म लेकर यहाँ आए हैं। ये तुम्हारा सबकुछ छीन लेंगे।” ये तीन डगों में ही संपूर्ण लोकों को नाप लेंगे! तुम यह दान देकर सबकुछ गँवा बैठोगे!

शुक्राचार्य ने नाना प्रकार से राजा बलि को समझाया; लेकिन राजा बलि ने कहा, “मैं भक्तवर प्रह्लाद का पौत्र हूँ! एक बार देने को कहकर प्रतिज्ञा से मुकर नहीं सकता।”

जब शुक्राचार्य ने देखा कि राजा बलि उनकी आज्ञा को नहीं मान रहे हैं तो उन्होंने शाप दे दिया—“तुमने मेरे वचनों को नहीं माना, इसलिए तुम लक्ष्मीविहीन हो जाओ!”

राजा बलि ने वामन की पूजा की और हाथ में जल लेकर विधिपूर्वक उनके हाथ में छोड़ा। रानी विंध्यावती ने जलपात्र लेकर राजा बलि से ब्राह्मण देवता के चरण धुलवाए। राजा ने चरणोदक अपने सिर पर चढ़ाया। आकाश से पुष्पवर्षा हो रही थी। सहसा वामन भगवान् का स्वरूप बढ़ने लगा। उनके विराट् स्वरूप में पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, समुद्र, पाताल—समग्र चराचर जगत् का दर्शन राजा बलि को हुआ। भगवान् वामन ने अपने एक पग से सारी पृथ्वी तथा दूसरे से स्वर्ग नाप लिया। उनका तीसरा पग रखने के लिए बलि के पास कुछ शेष नहीं रह गया था। मान्यता है कि इसी दूसरे पग के नखचंद्र को ब्रह्मा ने अपने कमंडल के जल से धोया, जिससे गंगा की उत्पत्ति हुई। यही गंगा तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली बनी।

वामन भगवान् का छल देखकर दैत्यों को क्रोध आ गया। वे सब हथियार उठाकर वामन भगवान् को मारने दौड़े। किंतु राजा बलि ने उन्हें रोक दिया। देव-दैत्यों में पुनः संघर्ष छिड़ गया। राजा बलि ने दैत्यों को समझाया, “यह काल की गति है। पहले देवताओं की अवनति हो रही थी, अब हमारी अवनति का काल आ गया है।” दानवों ने राजा बलि की बात मानकर रसातल को प्रयाण कर दिया। भगवान् के संकेत से गरुड़ ने वरुणपाश से राजा बलि को बाँध लिया।

वामन भगवान् ने राजा बलि से कहा, “मैंने तीन डग भूमि माँगी थी। मुझे दो डग भूमि तो मिल गई, अब मैं तीसरा डग कहाँ रखूँगा? तुमने प्रतिज्ञा की थी, अब वचन भंग के पाप के कारण नरक भोगो।”

राजा बलि भगवान् के इन शब्दों से डरे नहीं; बोले, “मैंने धोखा नहीं दिया है, अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रखें, प्रभु!” यह कहकर राजा बलि ने अपना सिर झुका दिया।

## राजा बलि का सुतल लोक गमन



उसी समय प्रह्लाद वहाँ आए। उन्होंने भगवान् वामन को नमस्कार किया। राजा बलि ने अपने पितामह को देखा। वरुणपाश में बँधे होने के कारण वे हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं कर सके। उन्होंने अपना शीश झुका लिया। भक्तराज प्रह्लाद ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा, “जैसा आपका देना सुंदर है, भगवान्, आपका लेना भी उतना ही सुंदर है!”

दैत्यराज की पत्नी ने वामन देवता के चरणों में प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की, “दैत्यराज ने आपको सबकुछ अर्पित कर दिया है। इन्होंने तो अपने शरीर को आत्मा सहित समर्पित कर दिया है। अतः इन्हें दंड का भागी न बनाएँ।”

ब्रह्मा ने भी राजा बलि को मुक्त करने की प्रार्थना की।

भगवान् वामन ने कहा, “राजा बलि तो धर्म पर अटल रहे। प्रतिज्ञा से विचलित भी नहीं हुए हैं, अतः दंड के भागी हो ही नहीं सकते। राजा बलि अब सावर्ण्य मन्वन्तर में इंद्र होंगे। वहाँ सुतल लोक का निर्माण विश्वकर्मा करेंगे। यह मेरे प्रिय भक्त बलि वहीं रहेंगे।” भगवान् वामन ने राजा बलि से कहा, “तुम्हारा कल्याण हो! अब तुम अपने परिवार के साथ सुतल लोक में निवास करो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा और सदैव दुर्गपाल बनकर वहीं रहूँगा।”

राजा बलि प्रेम से विह्वल हो गए। गद्गद होकर बोले, “जो बड़े-बड़े भक्तों को भी दुर्लभ है, ऐसा अनन्य फल मुझे प्राप्त हो गया है।” उसी समय वरुणपाश अपने-आप शिथिल हो गया। बलि ने वामन भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया और सुतल लोक को चले गए।

भगवान् ने स्वर्ग का राज्य इंद्र को सौंप दिया। प्रह्लाद वहीं भक्ति-भाव से खड़े थे। भगवान् ने उनसे कहा, “अब तुम भी अपने पौत्र बलि के साथ सुतल लोक जाओ। वहाँ तुम्हें मेरे दर्शन सदा होते रहेंगे।” भगवान् ने शुक्राचार्य से कहा, “आप इस अधूरे यज्ञ को पूरा करें, जिसे राजा बलि नहीं कर पाए। शुक्राचार्य ने भगवान् को प्रणाम करके यज्ञ को पूर्ण किया।”

वामन देवता ने बलि से प्राप्त भिक्षा में तीनों लोकों का राज्य अपने बड़े भाई इंद्र को दे दिया और स्वयं उपेन्द्र का पद ग्रहण किया।



## मत्स्यावतार की कथा

कल्प के अंत में ब्रह्मा सो जाते थे। उस समय प्रलय हुई। संपूर्ण पृथ्वी प्रलय में जलमग्न हो गई। ब्रह्मा की निद्रा के समय वेद उनके मुख से निकल पड़े। उस समय हयग्रीव नामक दैत्य ने वेदों को चुरा लिया। उन वेदों की रक्षा के लिए भगवान् श्रीहरि को मत्स्य अवतार धारण करना पड़ा।

उस समय सत्यव्रत नाम के एक राजा थे। वे जल पीकर ही तपस्या कर रहे थे। उनको भगवान् ने वैवस्वत मनु नियुक्त किया था। एक बार राजर्षि सत्यव्रत जल में तर्पण कर रहे थे तो उनकी अंजलि में एक छोटी मछली ने कातर होकर कहा, “मुझे जल के बड़े जंतु खा जाएँगे, अतः जल में न डालो।” राजा ने मछली को कमंडलु में रख लिया और अपने भवन में चले आए। वह मछली एक रात में ही कमंडलु में इतनी बड़ी हो गई कि उसके बाहर निकल पड़ी। राजर्षि ने देखा तो उसे एक मटके में डाल दिया। वहाँ दो घड़ी में ही मछली तीन हाथ बड़ी हो गई। अब राजर्षि ने उसे एक सरोवर में डाल दिया। वहाँ भी वह इतनी बड़ी हो गई कि सरोवर में नहीं समाई। राजर्षि ने उसे और बड़े सरोवर में डाल दिया। मछली उससे भी बड़ी हो गई तो राजर्षि को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसे समुद्र में डाल दिया। तब मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा, “राजन्, मुझे यहाँ मत डालो। यहाँ के जंतु मुझे खा जाएँगे।” मत्स्य की बात सुनकर राजा को ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा, “आप मुझे मोहित कर रहे हैं। अवश्य ही आप भगवान् अविनाशी हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपने किस उद्देश्य से यह रूप धारण कर रखा है, प्रभु?”

मत्स्य भगवान् ने कहा, “सात दिन में महाप्रलय होगा। सबकुछ जलमग्न हो जाएगा। उस समय तुम्हारे पास एक बड़ी नाव आएगी। सप्तर्षियों के साथ प्राणीमात्र का सूक्ष्म रूप तथा पृथ्वी के समस्त बीजों को लेकर तुम उस नाव पर सवार हो जाना। अंधकार छा जाएगा। आँधी से नाव डगमगाएगी। तब मैं तुम्हारे पास इसी रूप में आऊँगा। तुम वासुकि नाग की रस्सी बनाकर नाव मेरे सींग से बाँध देना और अपनी रक्षा करना। ब्रह्मा की रात्रि पूरी होने तक तुम्हारी नाव को मैं खींचता रहूँगा। तुम्हें मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होगा।” यह कहकर भगवान् अंतर्धान हो गए।

राजा सत्यव्रत महाप्रलय की प्रतीक्षा करते हुए भगवान् की आराधना में लगे रहे। सात दिन पश्चात् महाप्रलय से संपूर्ण विश्व जलमय हो गया। तभी सत्यव्रत को एक नाव दिखाई दी। भगवान् की बातों को स्मरण कर सत्यव्रत सब के साथ नाव पर चढ़ गए। मत्स्य भगवान् प्रकट हुए। राजा ने नाव को मत्स्य भगवान् के सींग से बाँध दिया।

भगवान् मत्स्य ने प्रलयकालीन समुद्र में विचरते हुए सत्यव्रत को आत्मतत्त्व का उपदेश किया तथा अपने स्वरूप के रहस्य प्रकट किए।

प्रलयकाल का अंत हुआ। तब ब्रह्मा की नींद खुली। भगवान् ने हयग्रीव दैत्य को मारकर वेदों को उससे छीन लिया और ब्रह्मा को सौंप दिए। राजा सत्यव्रत ज्ञान से परिपूर्ण हो गए और उस काल के मनु वैवस्वत हुए।

## मोहिनी स्वरूप पर आसक्त शिव

एक बार शंकर भोलेनाथ को भगवान् विष्णु का वह मोहिनी स्वरूप याद आ गया, जो उन्होंने समुद्रमंथन के समय देवों को अमृतपान कराने के लिए धारण किया था। वे सती को लेकर अपने नंदी पर बैठे और विष्णुलोक आ पहुँचे। भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी शिव के मानस को जान गए थे, अतः मन-ही-मन हँसते हुए बोले, “भोलेनाथ आइए, आज हम आपका ही ध्यान कर रहे थे।”

भोले शिव भगवान् की माया नहीं समझे। बोले, “प्रभु, मुझे वही मोहिनी स्वरूप एक बार फिर दिखा दें।”

भगवान् ने कहा, “शंकरजी, तब तो दैत्यों को अमृतपान से रोकने के लिए और उन्हें काम-लोलुपता में फँसाने के लिए मुझे मोहिनी का रूप धारण करना पड़ा था। आप उसे देखना चाहते हैं तो अवश्य दिखाऊँगा। लेकिन ध्यान रहे, वह काम-भाव को उत्तेजित करनेवाला है।” कहते-कहते भगवान् अंतर्धान हो गए। शिव एवं सती इधर-उधर देखते हुए मौन बैठे रहे।

सामने एक बहुत सुंदर उपवन दिखाई दे रहा था। सुगंधवाले, रंग-बिरंगे फूलों एवं लताओं, और वृक्षों से भरपूर उस सघन उपवन की शोभा देखते ही बनती थी। इतने में वहाँ एक अत्यंत सुंदर, कमनीय युवती गेंद उछालती, उसके पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही थी। उसकी चंचल चितवन, नूपुरों की झनकार, मोहक नख-शिख, मादकता से भरा यौवन बौरा देनेवाला था। शिव उस मोहिनी को देखकर व्यग्र हो गए। उस मदयौवना की ओर आकृष्ट हो गए। उन्हें विस्मृत हो गया कि सती तथा उनके गण भी देख रहे हैं। वे उठकर एकदम उस सुंदरी के पीछे-पीछे चल पड़े। उस मायावी सुंदरी ने अपनी कमनीय देहयष्टि की भाव-भंगिमाओं से कुछ ऐसा प्रदर्शन किया कि भगवान् शिव अति कामातुर हो गए। वे जैसे ही उस स्त्री के पीछे भागकर उसे पकड़ने का प्रयास करते, वह वृक्षों के आगे-पीछे से घूमकर बच निकलती। इस प्रकार वह शंकर को दूर तक दौड़ाती रही। शिव पर कामदेव ने विजय प्राप्त कर ली। भाग-दौड़ में सुंदरी के वस्त्र फिसल गए। शिव ने उसे पकड़ लिया और हृदय से लगाकर आलिंगन किया। वह छटककर हाथ से निकल गई। शिव मोहिनी छल में फँसे उसके पीछे-पीछे दौड़ते रहे। कामुकता के कारण शिवजी का अमोघ वीर्य स्खलित हो गया। वीर्य पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ सोने-चाँदी की खानें बन गईं। जैसे ही वीर्यपात हुआ, शिव को स्मृति हो आई। वे भगवान् की प्रबल माया समझते थे, अतः उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ, न लज्जा ही आई।

भगवान् ने शिव की भावना समझ ली। वे पुनः अपने स्वरूप में प्रकट हो गए बोले, “मेरी माया से विमोहित होकर भी हे शिव, आप स्वयं मेरे प्रति गहन निष्ठा में स्थित हो गए। आपके अतिरिक्त ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो मेरी माया के फँदे में फँसकर अपने-आप उससे निकल सके। अब यह माया आपको कभी मोहित नहीं करेगी।”

## नर से नारी हो गए सुद्युम्न

वैवस्वत मनु निस्संतान थे। वशिष्ठ मुनि ने संतान प्राप्ति के लिए उनसे मित्रवरुण यज्ञ कराया। उस समय मनु की धर्मपत्नी श्रद्धा ने याचना की कि उन्हें कन्या ही चाहिए। होता ने यज्ञकुंड में कन्या के लिए आहुति दी। तब पुत्र के स्थान पर एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम इला रखा था। यह देखकर वैवस्वत मनु को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने गुरु वशिष्ठ से कहा कि आप जैसे आचार्य के होते यह विपरीत फल कैसे प्राप्त हुआ? वशिष्ठ ने अपने योगबल से मालूम किया। उन्होंने बताया कि तुम्हारे होता ने कन्या के लिए ही आहुति दी थी; किंतु मैं इसे अपने तपोबल से उत्तम पुत्र बना दूँगा। वशिष्ठ ने भगवान् नारायण से प्रार्थना की और उनकी कृपा से कन्या इला पुत्र बन गई। उसका नाम सुद्युम्न रखा गया।

एक बार सुद्युम्न अपने मंत्रियों एवं अनुचरों को लेकर वन में शिकार खेलने गए। हाथ में धनुष-बाण लिये, हरिणों के पीछ-पीछे वे मेरु पर्वत की तलहटी में जा पहुँचे। उस वन में भगवान् शिव पार्वती के साथ विहार करते हैं। वहाँ प्रवेश करते ही सभी पुरुष एवं राजकुमार सुद्युम्न भी स्त्री बन गए। घोड़ा भी घोड़ी बन गया। यह देखकर राजकुमार खिन्न हो गए। बाद में पता चला कि वह वन शंकर भगवान् का विहार-स्थल था। एक बार ऋषि-मुनियों का शिवशंकर के दर्शन के लिए वहाँ आगमन हुआ। उस समय अंबिका पार्वती वस्त्रहीन थीं। तपस्वियों को देखकर वे बड़ी लज्जित हुईं। तपस्वियों ने भगवान् शिव की गोद में बैठी वस्त्रहीन पार्वती को देख लिया था। लौटकर वे बदरिकाश्रम नारायण के दर्शन के लिए चले गए।

भगवान् शिव ने पार्वती को प्रसन्न करने के लिए कहा, “अब जो पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा, वह स्त्री बन जाएगा।” तब से उस विहार-स्थल में कोई पुरुष प्रवेश नहीं करता था।

स्त्री-रूप हो जाने के बाद भी सुद्युम्न वन में भ्रमण करते रहे। वे बुध के आश्रम पर पहुँचे। बुध ने सुद्युम्न के रूप में उस सुंदर स्त्री को देखा तो मुग्ध होकर उसके साथ विवाह कर लिया। इस सुंदर स्त्री इला से उनके पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

सुद्युम्न ने गुरु वशिष्ठ को स्मरण किया। सुद्युम्न की दशा देखकर वशिष्ठ ने भगवान् शंकर की आराधना की। शंकर भगवान् ने प्रसन्न होकर वशिष्ठ से कहा, “तुम्हारा यह राजा एक मास तक स्त्री और एक मास तक पुरुष रहेगा।”

सुद्युम्न जब पुरुष रहता तब शासन-कार्य देखता। लेकिन प्रजा का समाधान नहीं होता था। अंत में सुद्युम्न ने अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर तपस्या हेतु वन को प्रस्थान किया।

वैवस्वत मनु ने पुनः पुत्र की कामना से तपस्या की। उन्हें दस श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से एक प्रषध नाम का था। वह गुरु वशिष्ठ की गौशाला की रक्षा करता था। एक रात गौशाला में एक सिंह घुस आया। प्रषध गायों का भय से रँभाना सुनकर दौड़ता हुआ आया। अनजाने में उसने सिंह के बदले गौ का ही शीश काट डाला। जब उसने देखा कि यह अपराध गलती से हो गया है तो उसे बड़ा क्लेश हुआ। गुरु वशिष्ठ ने भी शाप दिया, “तुम शूद्र हो जाओ!”

प्रषध ने शाप को स्वीकार किया और नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर भगवान् की आराधना करते हुए अपने-आपको समाधिस्थ कर लिया।



## च्यवन ऋषि की कथा

वैवस्वत मनु के पुत्र शर्याति वेदों के विद्वान् थे। उनकी एक अति सुंदर पुत्री थी—सुकन्या। एक बार राजा शर्याति अपनी पत्नी तथा कन्या के साथ वन में भ्रमण करने गए। सुकन्या वन में घूम-घूमकर वृक्षों का सौंदर्य देख रही थी। एक स्थान पर उसे दीमकों की बाँबी दिखाई दी। एक छेद से उसे दो किरणें-सी निकलती दीख पड़ीं। बाल-सुलभ चापल्य के कारण सुकन्या ने एक काँटे से उस ज्योति को बेध डाला। उसमें से रक्त की धारा बह निकली तो सब आतंकित हो गए। राजा शर्याति को आश्चर्य हुआ। सुकन्या ने पिता के सामने डरते-डरते कहा, “पिताजी, शायद मुझसे कुछ अपराध हो गया है। यह रक्त की धारा ज्योति से निकल रही है।”

यह देखकर राजा बहुत दुःखी हुए। उन्होंने च्यवन ऋषि को अनुनय-विनय के साथ प्रसन्न करने के लिए अपनी कन्या सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि से ही कर दिया और अपनी राजधानी लौट आए।

परमक्रोधी च्यवन ऋषि की सेवा सुकन्या बड़ी श्रद्धा के साथ करती रही। पति को प्रसन्न करके सुकन्या आश्रम में सुख से रह रही थी।

एक बार दोनों अश्विनी कुमार आश्रम में आए। च्यवन ऋषि ने उनका स्वागत-सत्कार करके उन्हें प्रसन्न किया। फिर आग्रह किया, “मैं आपको यज्ञ में सोमरस पान का अधिकार दिलाऊँगा। आप मुझे इस वृद्धावस्था एवं कुरूपता से छुटकारा दिलाकर यौवन दीजिए।”

देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि को ले जाकर एक कुंड में स्नान कराया। जब वे तीनों कुंड से निकलकर बाहर आए तो तीनों का रूप एक सा था। अश्विनी कुमारों ने सुकन्या से कहा, “देवी, तुम अपने पति को पहचान लो।” सुकन्या तीनों युवकों को देखकर चकित थी। उसने अश्विनी कुमारों की स्तुति की। तब उन्होंने सुकन्या के पति च्यवन ऋषि को बता दिया।

कुछ समय बीत जाने पर राजा शर्याति यज्ञ का निमंत्रण देने अपनी पुत्री एवं जामाता च्यवन ऋषि के यहाँ आए। उन्होंने देखा, वहाँ एक रूपवान् युवक के साथ सुकन्या बैठी है। अति क्रोधित होकर उन्होंने अपनी पुत्री की निंदा की, “तुमने अपने वृद्ध पति का त्याग करके अन्य पुरुष के साथ संबंध जोड़कर मेरे कुल को कलंकित कर दिया है।”

सुकन्या ने धीरे से कहा, “यही मेरे पति च्यवन ऋषि हैं, जिनके साथ विवाह करके आप मुझे यहाँ छोड़ गए थे।” राजा शर्याति प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्री को हृदय से लगाया। राजा ने सोमयज्ञ कराया और उसमें महर्षि च्यवन ने अश्विनी कुमारों को भी सोमपान कराया।



## नाभाग एवं अंबरीष की कथा

वैवस्वत मनु के पुत्र नभग का सबसे छोटा पुत्र नाभाग था। नाभाग गुरुकुल में वास करते थे, तभी उसके बड़े भाइयों ने पिता की संपत्ति आपस में बाँट ली। नाभाग जब वापस आए तो उनसे कहा, “तुम्हारे हिस्से में तो पिताश्री आए हैं।”

नाभाग ने पिता के पास आकर कहा, “आप मेरे हिस्से में आए हैं।”

पिता ने कहा, “पुत्र, चिंता मत करो। अंगिरस गोत्र के एक ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। वे छठे दिन अपने कर्म में भूल करते हैं। तुम उन्हें वैश्वदेव-संबंधी दो सूक्त बता दो। वे जब स्वर्ग जाने लेंगे तब यज्ञ से बचा हुआ सारा धन तुम्हें दे देंगे।”

नाभाग ने वैसा ही किया। ब्राह्मणों ने बचा हुआ धन नाभाग को दे दिया। जब वह धन समेट रहा था तो वहाँ रुद्रदेव प्रकट हुए। उन्होंने कहा, “यह शेष बचा हुआ धन मेरे हिस्से का है। तुम अपने पिता से पूछकर आओ। वही तुम्हारा सही मार्गदर्शन करेंगे।” नाभाग अपने पिता के पास गया। पूछने पर पिता ने बताया, “यह वास्तविकता है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में यही निश्चय किया गया था कि यज्ञ का बचा हुआ भाग महादेव को मिलेगा। अब तुम उनसे क्षमा माँगकर वापस आ जाओ।”

नाभाग ने आकर रुद्रदेव की स्तुति की और कहा, “हे देव, यज्ञभूमि की ये सभी वस्तुएँ आपकी ही हैं। मैं अपने अपराध के लिए आपसे क्षमा माँगता हूँ।”

महादेव ने प्रसन्न होकर कहा, “तुम्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो। अब यज्ञ का अपना संपूर्ण भाग मैं तुम्हें देता हूँ।” यह कहकर भगवान् रुद्रदेव अंतर्धान हो गए।

नाभाग के पुत्र अंबरीष हुए जो भगवान् के बड़े भक्त थे—उदार एवं धर्मात्मा। उन्हें ब्रह्मशाप तक भी स्पर्श नहीं कर सकता था। वे धर्मपूर्वक शासन करते थे। यज्ञ, अनुष्ठान एवं भगवान् की आराधना करते रहते थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनकी रक्षा का भार सुदर्शन चक्र पर डाल दिया था। अंबरीष राजा की पत्नी भी उनके समान ही धर्मशील एवं भक्तिपरायण थीं।

एक बार राजा और रानी ने भगवान् विष्णु की आराधना हेतु एक वर्ष तक द्वादशीप्रधान एकादशी व्रत ग्रहण किया। व्रत की समाप्ति पर उन्होंने भगवान् का अभिषेक, पूजा आदि की। ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा दान-दक्षिणा दी। अंत में स्वयं राजा-रानी ने पारण करने की तैयारी की। उसी समय दुर्वासा ऋषि अतिथि के रूप में वहाँ आ गए। राजा ने उठकर उनको आदर के साथ आसन दिया और उनकी पूजा करके भोजन के लिए प्रार्थना की। दुर्वासा तो आए ही थे भक्त की परीक्षा लेने। उन्होंने कहा, “वे नदी तट पर जाकर स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन के लिए आ जाएँगे। दुर्वासा नदी पर गए, लेकिन द्वादशी तिथि समाप्त होने में थोड़ा सा समय रह गया, तब भी वे नहीं आए। अंबरीष धर्म-संकट में पड़ गए। द्वादशी का पारण भी करना था। अतिथि दुर्वासा को भोजन कराना था। द्वादशी रहने तक पारण न करना दोष है। यह सोचकर राजा ने पंडितों से चर्चा की। ब्राह्मणों की आज्ञा से उन्होंने भगवान् के चरणों का आचमन लेकर पारण कर लिया। दुर्वासा ऋषि नदी से स्नान-ध्यान करके लौटे तो देखा कि मुझे खिलाए बिना ही राजा ने पारण कर लिया। वे अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपनी जटा में से एक बाल उखाड़ा और उससे भयंकरी कृत्या पैदा हुई। वह राजा पर टूट पड़ी; लेकिन वह राजा का स्पर्श भी नहीं कर सकी—सुदर्शन चक्र उनकी रक्षा के लिए सतर्क था। चक्र के तेज ने कृत्या को क्षण भर में भस्म कर दिया। अब चक्र

दुर्वासा की ओर घूमा दुर्वासा भयभीत होकर भागने लगे। वे आगे-आगे, चक्र उनके पीछे-पीछे। इस तरह दुर्वासा सभी लोकों का चक्कर लगाकर भगवान् ब्रह्मा एवं शिव के पास भी गए, लेकिन भगवान् के चक्र से उनकी रक्षा किसीने नहीं की। हारकर दुर्वासा भगवान् श्रीहरि की शरण में गए। भगवान् ने कहा, “दुर्वासा, मैं तो भक्तों का सेवक हूँ। मैं भी तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हूँ। तुम्हें तो राजा अंबरीष की शरण ही लेनी पड़ेगी।”

तब दुर्वासा ऋषि का गर्व नष्ट हो गया। वे पश्चात्ताप के साथ राजा के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर कहा, “राजन्, मेरी रक्षा करो!”

राजा अंबरीष ने भगवान् के सुदर्शन चक्र की प्रार्थना कर उसे शांत किया। दुर्वासा का चित्त स्वस्थ हुआ, तब वे बोले, “आज मैंने भगवान् के भक्त की महिमा देख ली।”

राजा अंबरीष ने भोजन नहीं किया था, केवल जल पीकर रहे। उन्होंने प्रार्थना करके दुर्वासा ऋषि को भोजन कराया। दुर्वासा ऋषि तृप्त हो गए। उन्होंने राजा अंबरीष के गुणों की प्रशंसा की और वहाँ से प्रस्थान किया। उसके बाद राजा-रानी ने भगवान् का प्रसाद ग्रहण किया। अंत में राजा ने पुत्रों पर राज्य का भार छोड़ दिया और वन में भगवान् की आराधना करने चले गए।



# राजा हरिश्चंद्र की कथा

**म**नु की नासिका के छिद्र से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। इक्ष्वाकु के वंश में युवनाश्व का जन्म हुआ। राजा युवनाश्व ने भी पुत्रप्राप्ति के लिए यज्ञ किया। यज्ञ के दिनों में ही एक रात राजा को प्यास लगी। राजा ने उठकर वहाँ रखे अभिमंत्रित जल को पी लिया। प्रातःकाल ऋषियों ने कलश में जल नहीं देखा तो पूछताछ करने लगे कि पुत्र देने के लिए अभिमंत्रित जल किसने पी लिया। राजा ने रातवाली बात उसने कही। दैव का विधान समझकर सबने भगवान् का स्मरण किया। राजा की दाहिनी कोख फाड़कर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब इस शिशु को दूध कौन पिलाएगा? शिशु रोने लगा। तब इंद्र ने कहा, “मैं इसे दूध पिलाऊँगा।” इंद्र ने अपनी तर्जनी उँगली बालक के मुँह में डाल दी। वही बालक चक्रवर्ती राजा मांधाता हुए। मांधाता के राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था—इतना विशाल राज्य था उनका।

मांधाता के एक पुत्र ने वासुकि नाग की कन्या से विवाह किया। उसी वंश में राजा सत्यव्रत हुए। वे वशिष्ठ के शाप से चांडाल हो गए थे। किंतु महर्षि विश्वामित्र ने अपने प्रभाव से उन्हें सशरीर स्वर्ग भेजा। देवताओं ने जब यह देखा तो उन्हें स्वर्ग से धकेल दिया। विश्वामित्र ने अपने योगबल से उन्हें आकाश में ही रोक दिया। तबसे उनका नाम ‘त्रिशंकु’ पड़ गया।

राजा प्रियव्रत के पुत्र (त्रिशंकु) हरिश्चंद्र हुए। उन्होंने वरुण देवता को प्रसन्न करके पुत्र माँगा था और ऐवज में पुत्र की बलि देने की मानता मानी थी। लेकिन पुत्र-वात्सल्य के कारण ‘दस दिन का शिशु है’, यह कहकर राजा वचन से फिर गए। संकल्प किया कि बाद में दूध के दाँत उग आने पर आपका यज्ञ इस शिशु की बलि देकर पूरा करूँगा।

बाद में दूध के दाँत गिरकर नए दाँत आने पर भी राजा इसी प्रकार हीला-हवाला करते रहे। उनके पुत्र रोहित को इस बात का पता चला कि पिताजी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं, तो वह अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए धनुष-बाण उठाकर वन में चला गया। इधर वरुण देवता रुष्ट हो गए। उन्होंने राजा पर आक्रमण करके उन्हें रोगों से पीड़ित कर दिया। रोहित ने सुना तो वह अपने नगर को लौट पड़ा। उसे मार्ग में रोककर इंद्र भगवान् ने कहा, “यज्ञपशु बनने की अपेक्षा तो पवित्र तीर्थ एवं क्षेत्रों का सेवन करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करना ही अच्छा है!”

रोहित छह वर्ष तक वन में ही भ्रमण करता रहा। सातवें वर्ष रोहित ने एक पुरुष को खरीद लिया तथा पिता के पास पहुँचकर उसे यज्ञपशु बनाकर यज्ञ पूर्ण करने को कहा। वरुण ने रुष्ट होकर राजा को महोदर रोग से पीड़ित कर दिया था। महर्षियों ने वरुण देव का यज्ञ किया। राजा हरिश्चंद्र को रोग से मुक्ति मिली। उन्होंने यज्ञ पूर्ण करके वरुण देवता को प्रसन्न किया।

राजा हरिश्चंद्र सत्यवादी थे। उनके सत्य व्रत की कई प्रकार से कठोर परीक्षा लेने के बाद ऋषि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें ज्ञान का उपदेश दिया। हरिश्चंद्र सब बंधनों से मुक्त होकर अंत में भगवान् श्रीहरि के स्वरूप में लीन हो गए।

## गंगावतरण की कथा

राजा हरिश्चंद्र के वंश में सगर उत्पन्न हुए थे। राजा हरिश्चंद्र के प्रपौत्र बाडक थे। बाडक की मृत्यु के समय उनकी पत्नी गर्भवती थी। वह सती होना चाहती थी; लेकिन ऋषि-मुनियों ने उसे सती होने से रोक लिया। जब



उसकी सौतों को पता चला कि रानी गर्भवती है तो उन्होंने ईर्ष्यावश उसे भोजन में विष दे दिया। परंतु दैव का विधान कुछ और ही था। उस विष का गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव नहीं पड़ा। उस विष को लेकर ही वह बालक पैदा हुआ, अतः उसे 'सगर' के नाम से जाना गया।

सगर चक्रवर्ती सम्राट् हुए। उनके साठ हजार पुत्र थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ में जो अश्व छोड़ा गया था उसे देवराज इंद्र ने चुरा लिया। सगर-पुत्रों ने अश्व को ढूँढ़ने में सारी पृथ्वी छान डाली। अंत में कपिल मुनि के आश्रम के पास सगर-पुत्रों को अपना घोड़ा दिखाई दिया। निकट ही बैठे कपिल ऋषि को देखकर राजकुमार शस्त्र उठाकर दौड़े कि घोड़े को चुरानेवाला चोर यही है, इसे मार डालो। कपिल मुनि तपस्या में बैठे थे। उन्होंने पलक खोले और जैसे ही सगर-पुत्रों की ओर दृष्टि डाली वे सब जलकर भस्म हो गए।

राजा सगर की दूसरी पत्नी के पुत्र असमंजस थे। उनके पुत्र अंशुमान यज्ञपशु को ढूँढ़ते हुए कपिल मुनि के आश्रम तक पहुँचे। उन्होंने कपिल मुनि की प्रार्थना करके उन्हें प्रसन्न किया। कपिल मुनि ने अश्व दे दिया और कहा कि तुम्हारे इन साठ हजार चाचाओं की मुक्ति गंगाजी के जल से ही होगी, इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं।

राजा सगर का यज्ञ पूरा हो गया। अंशुमान ने गंगाजी को पृथ्वी पर लाने के लिए आजीवन तप किया। अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी जीवनपर्यंत तप किया। बाद में उनके पुत्र भगीरथ ने भी गंगाजी को लाने के लिए घोर तप किया। अंततः गंगाजी ने भगीरथ को दर्शन दिए। भगीरथ ने वर माँगा, "माँ, आप मृत्युलोक में पधारें!"

गंगाजी ने कहा, "राजन्, मैं स्वर्गलोक से जब पृथ्वी पर उतरूँगी, उस समय मेरे वेग को कौन सहन करेगा? आकाश से गिरते समय मेरा वेग प्रचंड होगा। यदि आधार न मिला तो उस वेग से मैं पृथ्वी फाड़कर रसातल में चली जाऊँगी। अतः एक तो मेरे वेग को सहन करनेवाला होना चाहिए। दूसरे, मृत्युलोक के पापीजन मुझमें अपने पाप धोएँगे। उस पाप को मैं कहाँ धोने जाऊँगी?"

राजा भगीरथ ने कहा, "जन कल्याणी माँ, जो साधु पुरुष एवं पुण्यात्मा निरंतर भगवान् की आराधना करते हैं, उनके स्पर्श से तुम्हारे पाप नष्ट हो जाएँगे।" गंगाजी ने संतुष्ट होकर कहा, "तब मेरे वेग को सहने के लिए भगवान् रुद्रदेव को प्रसन्न करके तैयार कर लो।"

राजा भगीरथ ने भगवान् रुद्रदेव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की। शिव प्रसन्न हुए और गंगाजी को सहने के लिए उठ खड़े हुए। भगवान् रुद्र ने गंगाजी को अपने सिर पर गिरने के लिए जटाएँ खोल दीं। गंगाजी के प्रचंड प्रवाह को भगवान् शिव ने अपनी जटाओं में बाँध लिया। राजा भगीरथ अपने दुरतगामी रथ पर सवार होकर शंखध्वनि के साथ आगे-आगे चलते रहे, और गंगा की पवित्र धारा जनकल्याण एवं पापनाश के लिए उनके पीछे-पीछे चलकर गंगासागर के संगम पर पहुँच गई। इस प्रकार भगीरथ ने अपने पूर्वजों का उद्धार किया। वे स्वर्ग चले गए। पाप विनाशिनी गंगा इस मृत्युलोक में प्राणीमात्र के उद्धार के लिए बहती रहीं। माँ गंगा के पावन जल के स्पर्शमात्र से उद्धार हो जाता है। गंगाजल का पान तथा गंगातट पर वास, दोनों की ही अपार महिमा है। जिन्हें यह अवसर प्राप्त हो गया, उनका मनुष्य योनि में जन्म लेना सफल हो गया। कलियुग में प्राणीमात्र का विश्वास है कि ऐसे मनुष्य को भगवान् के चरणों में स्थान मिल जाता है।



## राजा दशरथ और रामावतार

इक्ष्वाकु वंश में प्रतापी राजा रघु हुए। रघु के पौत्र महाराज दशरथ हुए। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी। रानी कैकेयी सबसे छोटी थी। महाराज का उसपर कुछ विशेष ही प्रेम था। भगवान् विष्णु ने अपने अंशों से राजा दशरथ के यहाँ जन्म लिया। कौशल्या के गर्भ से प्रभु श्रीरामचंद्र, सुमित्रा से लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत ने जन्म लिया था। चारों भाइयों का आपस में बड़ा ही स्नेह था।

बचपन में ही राम एवं लक्ष्मण ने ताड़का नाम की राक्षसी तथा सुबाहु राक्षस का वध किया था। वे राक्षस ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डाल रहे थे। राम ने मारीच को भी उड़ाकर दूर फेंक दिया था।

राजा जनक की पुत्री सीता के स्वयंवर में विश्वामित्र दोनों राजकुमारों को लेकर गए। वहाँ भगवान् श्रीराम ने शंकर का विशाल और दिव्य धनुष तोड़कर सीता को प्राप्त किया। राजा जनक के भाई की तीन कन्याएँ थीं। राजा जनक ने सीता सहित चारों कन्याएँ राजा दशरथ के चारों पुत्रों से ब्याह दीं। चारों पुत्रों तथा वधुओं के साथ राजा दशरथ मिथिला से लौट रहे थे तो सहसा महर्षि परशुराम ने मार्ग में ही रोक लिया और कहा, “राजा, तुम्हारे पुत्र ने शंकरजी का धनुष तोड़कर बड़ा अहित किया है। अब तुम्हारा पुत्र मेरा धनुष तोड़े, नहीं तो मैं तुम सबको मार गिराऊँगा।” परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया था। उन्हें अपने बलशाली होने का गर्व था। उन्होंने अपना धनुष राम के हाथ में दे दिया। भगवान् राम ने क्षण भर में ही उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी। परशुराम लज्जित हुए। उन्होंने राम की स्तुति की और लौटकर महेंद्रगिरि चले गए।

राजा दशरथ ने कैकेयी को वरदान के रूप में दो वचन दिए थे। मंथरा नाम की दासी के बहकावे में आकर कैकेयी ने राजा दशरथ से एक वर में भगवान् राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और दूसरे वर में अपने पुत्र भरत के लिए राजगद्दी माँगी। राजा दशरथ ठगे गए। दारुण दुःख से पीड़ित होकर ही उन्होंने राम को चौदह वर्ष के लिए वन में जाने की आज्ञा दी। राम के साथ पतिव्रता जानकी तथा भ्रातृभक्त लक्ष्मण भी वल्कल पहनकर वन के लिए रवाना हो गए। राम के वियोग में दशरथ ने प्राण त्याग दिया।

भरत को ननिहाल से बुलाकर कैकेयी ने उनका राज्याभिषेक करना चाहा तो भरत ने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने राम को लौटा लाने के लिए अयोध्यावासियों के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। राम ने भरत को समझा-बुझाकर प्रजा की रक्षा का भार वहन करने की आज्ञा दी और उन्हें अयोध्या वापिस लौटा दिया। भरत ने आग्रह करके राम की चरण-पादुकाएँ ले लीं और नंदिग्राम में रहकर चरण-पादुकाओं की सेवा के साथ राज्य का उत्तरदायित्व सँभालने लगे।

पंचवटी में एक पर्णकुटी बनाकर भगवान् राम लक्ष्मण एवं सीता सहित कंदमूल आदि खाकर निस्स्वार्थ, निस्पृह भाव से समय व्यतीत करने लगे। एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा ने राम को देखा। उसने कामासक्त होकर उनसे विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काटकर उसे विद्रूप कर दिया। शूर्पणखा ने अपने भाई एवं कुटुंबी खर-दूषण आदि हजारों राक्षसों की सहायता ली। राम ने अकेले ही राक्षसों को नष्ट कर दिया। तब राक्षसी अपने भाई रावण के पास लंका गई। उसने अपनी दशा का वर्णन करते हुए रावण से सीता के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा, “मैं तो तुम्हारे लिए उस रूपवती को लेने ही गई थी।”

रावण ने क्रोधित होकर छल से मारीच को सुवर्ण मृग बनाया और स्वयं साधु वेश धारण किया। उसने पंचवटी आकर छल से सीता का हरण कर लिया। राम उस मायावी सुवर्ण मृग के पीछे गए थे। उसे मारकर लौट रहे थे तो

उन्होंने मार्ग में लक्ष्मण को देखा। वे विधि के विधान को समझ गए। लक्ष्मण को साथ लेकर वे पर्णकुटी में पहुँचे, किंतु सीता को वहाँ न देखकर शोकविवल हो गए। 'सीता-सीता' पुकारते हुए वन-वन घूम रहे राम ने एक स्थान पर वृद्ध गिद्ध जटायु को घायल पड़ा हुआ देखा। जटायु ने भक्ति से उनकी प्रार्थना की और उन्हें रावण द्वारा सीता के हरण का वृत्तांत सुनाया। राम का स्पर्श पाकर जटायु की गति हो गई। राम ने स्वयं जटायु की अंत्येष्टि क्रिया की।

राम-लक्ष्मण आगे बढ़े तो थोड़ी दूरी पर ही कबंध नाम के दैत्य का संहार किया। फिर हनुमान की सहायता से सुग्रीव से मित्रता की और उसके शत्रु भाई बाली नामक वानर का संहार किया। सुग्रीव ने वानरसेना को चारों ओर भेजकर सीता की खोज कराई। रावण ने सीता को जहाँ रखा था, उस स्थान का पता हनुमान ने लगाया। उन्होंने लंका जलाई, सीता को राम का संदेश दिया और वापिस राम के पास पहुँचे।

अंत में राम ने विशाल वानरसेना को साथ लेकर रावण की लंका पर आक्रमण की तैयारी की। उस समय समुद्र ने सेना को मार्ग नहीं दिया। राम की भृकुटी तन गई। समुद्र काँप उठा। उसने मानव रूप धारण किया और राम ने प्रार्थना की कि समुद्र पर आप सेतु बाँध लें। राम ने नल, नील आदि वानरों की सहायता से समुद्र पर सेतु बनवाया। आज भी रामेश्वर तीर्थ में सेतुबंध का अस्तित्व मौजूद है। उस पुल से सारी वानरसेना दूसरी ओर उतर गई और लंका को घेर लिया। लंका में विभीषण की सहायता से श्रीराम ने कुंभकर्ण, मेघनाद, अहिरावण आदि समस्त रावण कुल का नाश कर दिया। रावण के भाई, भगवान् के परमभक्त विभीषण का लंकेश्वर के रूप में राज्याभिषेक किया। सीता को साथ लेकर, अपनी समस्त वानरसेना एवं भाई लक्ष्मण के साथ भगवान् राम पुष्पक विमान पर बैठकर वनवास को पूरा करके, ठीक चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौट आए।

भरतजी एवं अयोध्यावासियों ने परम प्रसन्न होकर राम की अगवानी की और गुरु वशिष्ठ ने रामचंद्रजी का राजतिलक किया। राम के राज्य में सभी सुख से रहते थे।

## सीता का त्याग : लव-कुश जन्म

राजा रामचंद्रजी अपनी प्रजा का हाल-चाल स्वयं देखते थे। एक बार वे गुप्तवेष में नगर का भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक धोबी अपनी पत्नी को मार रहा था और कहता जा रहा था कि, 'मैं राम नहीं हूँ जो पत्नी का घर से बाहर रहकर आने के बाद भी उसे ग्रहण करके घर में रख लूँ।' यह निंदा राम को व्यथित करने लगी। यद्यपि लंका से आने के बाद सीताजी ने अग्नि प्रवेश करके अपनी पवित्रता का प्रमाण दे दिया था, फिर भी लोकापवाद से डरकर राजा राम ने अपनी गर्भवती सती पत्नी का त्याग कर दिया। भ्रातृभक्त लक्ष्मण सीता को वनश्री दिखाने के बहाने रथ में बैठाकर ले गए और भाई की आज्ञा से उन्हें वन में छोड़कर चले आए।

सीता ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आश्रय लिया। वहीं पर उनके लव-कुश नाम के दो पुत्रों का जन्म हुआ। वाल्मीकि ने उनके सभी संस्कार किए। सीता ने अपने पुत्रों को अन्याय का प्रतिकार करनेवाली शक्ति से अवगत कराया। भगवान् राम को सीता का विस्मरण कभी नहीं हुआ। जब लव-कुश ने महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायण' काव्य के मोहक गान से श्रीराम का ध्यान आकर्षित किया तो राम फिर से सीता को वापस लेने आए। सीता परमसाध्वी एवं महानिग्रही थीं। उन्होंने अपमान का स्मरण करके पृथ्वी में समा जाना श्रेष्ठ समझा, पति के साथ फिर पतिगृह जाना उचित नहीं माना।

सीताजी के पृथ्वी में समा जाने के बाद श्रीरामचंद्र सीता-विरह की अग्नि में सदा जलते रहे। एक पत्नीव्रती श्रीराम ने सहस्रों वर्षों तक राज किया। आज भी 'रामराज्य' का स्मरण किया जाता है।

इक्ष्वाकु वंश में अनेक श्रेष्ठ एवं महाबली राजा हुए। इस वंश का अंतिम राजा सुमित्र था। कलियुग आने पर यह

वंश अपने-आप समाप्त हो गया।



# राजा जनक का जन्म तथा अन्य कथाएँ

इक्ष्वाकु वंश में ही एक राजा निमि हुए थे। वशिष्ठ के शाप के कारण उन्हें शरीर त्यागना पड़ा। निमि ने भी वशिष्ठ को शरीर नष्ट होने का शाप दिया। अतः उन्होंने भी शरीर त्याग दिया। वशिष्ठ ने बाद में उर्वशी के गर्भ से जन्म लिया। राजा निमि का आत्माहीन शरीर सुगंधित तेल में रखा रहा। ब्राह्मणों ने भगवान् की प्रार्थना की। राजा निमि को जीवित करने के लिए वर माँगा। भगवान् ने उसे स्वीकार किया; लेकिन स्वयं राजा निमि ने दोबारा शरीर के बंधन को नहीं चाहा। उन्होंने प्राणियों के नेत्रों में निवास की इच्छा प्रकट की। महर्षियों ने राजा निमि के शरीर का मंथन किया। उसमें से एक सुंदर कुमार प्रकट हुआ। उसका नाम मिथि रखा गया, उन्होंने ही मिथिला नगरी बसाई। मिथि के पुत्र राजा जनक हुए।

## उर्वशी-पुरूरवा की कथा

चंद्रमा के पुत्र बुध थे। बुध और इला से पुरूरवा हुए। पुरूरवा के रूप-सौंदर्य, ऐश्वर्य, शक्ति आदि की चर्चाएँ सभी जगह होती थीं। इंद्रसभा में नारदजी ने इन गुणों का गान गाया तो इंद्र की प्रिय अप्सरा उर्वशी बहुत प्रभावित हुई। वह पुरूरवा को पाने की लालसा से मृत्युलोक आई। अत्यंत मोहित होकर उर्वशी ने पुरूरवा को पति रूप में स्वीकार किया। राजा पुरूरवा ने भी उसका स्वागत किया। उर्वशी ने विवाह के पूर्व एक शर्त रखी कि उसके पास भेड़ के दो बच्चे हैं, उनकी रक्षा करनी होगी तथा संभोग के समय के अतिरिक्त वह किसी भी समय वस्त्रहीन होकर दिखाई न पड़ें। राजा ने शर्तें मानकर उर्वशी से विवाह किया और उसके साथ विहार करने लगे। राजा पुरूरवा उर्वशी के मोहपाश में सबकुछ भूल गए। जब देवराज इंद्र ने बहुत दिनों तक उर्वशी को देवलोक में नहीं देखा तो गंधर्वों को उसे खोजने के लिए भेजा। गंधर्वों ने छद्मवेष में मृत्युलोक जाकर भेड़ के दोनों बच्चों को मध्य रात्रि में चुरा लिया। उर्वशी ने भेड़ के बच्चों की मिमियाहट सुनी तो व्याकुल होकर उसने राजा की भर्त्सना करते हुए कहा, “कैसा नपुंसक पुरुष है, दो बच्चों की रक्षा नहीं कर सकता!” राजा वस्त्रहीन अवस्था में ही क्रुद्ध होकर हाथ में तलवार लिये भागा। गंधर्वों ने राजा को देखते ही विद्युत्-प्रकाश फैला दिया। राजा भेड़ के बच्चों को उठाकर उर्वशी के निकट आए। उर्वशी ने राजा को वस्त्रहीन देखकर उसी समय उसका त्याग कर दिया और देवलोक चली गई।

राजा पुरूरवा उर्वशी के वियोग में पागल की भाँति भटकने लगे। एक दिन राजा घूमते-घूमते कुरुक्षेत्र में गए। वहाँ उसने सरस्वती के तट पर उर्वशी को अपनी सखियों के साथ देखा। राजा ने बहुत अनुनय-विनय करके उर्वशी से कहा कि यदि तुम मुझे नहीं मिलीं तो मैं शरीर त्याग दूँगा। उर्वशी ने राजा को विश्वास दिलाया कि वह वर्ष में सिर्फ एक रात्रि के लिए राजा के साथ रहा करेगी। उर्वशी अपने वचनानुसार वर्ष की समाप्ति पर राजा के पास आई। गंधर्वों की स्तुति करके राजा ने उन्हें प्रसन्न किया। उर्वशी से संतान प्राप्त करके राजा ने गंधर्वलोक में उर्वशी के साथ रहने हेतु भगवान् की आराधना की। राजा पुरूरवा ने तीन-तीन अग्नि भी प्रकट की थीं। अंत में अग्नि देवता को संतान-रूप मानकर वे गंधर्वलोक में चले गए।

## परशुराम की कथा

राजा पुरूरवा ने उर्वशी अप्सरा से जो वंशवृद्धि की, उसी वंश में गाधि नाम का एक राजा हुआ। उसकी कन्या सत्यवती थी। ऋचीक मुनि ने गाधि की पुत्री से विवाह करने की इच्छा की। गाधि ने ऋचीक को ‘अयोग्य है’

कहकर पुत्री के विवाह की अनुमति नहीं दी। गाधि ने कहा, “यदि तुम एक सहस्र श्वेत अश्व, जिनके कर्ण श्याम हों, शुल्क रूप में देते हो तो मैं पुत्री का विवाह तुमसे कर सकता हूँ।” ऋषि वरुण देवता के पास गए और उन्हें अपना अभिप्राय सुनाया। वरुण देवता ने ऋषि को एक सहस्र श्याम कर्ण घोड़े दे दिए। ऋषि ने राजा गाधि को श्याम कर्ण अश्व दिए और उसकी कन्या सत्यवती को ब्याहकर घर ले आए।

एक दिन सत्यवती ने ऋचीक मुनि से पुत्र की कामना की। सत्यवती की माता ने भी पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। ऋचीक ने दोनों के लिए अलग-अलग चरु तैयार किए और स्नान के लिए चले गए। पीछे से सत्यवती की माता ने सोचा कि ऋषि ने सत्यवती के लिए उत्तम चरु तैयार किया होगा। उसने सत्यवती के लिए रखे चरु को स्वयं खा लिया और सत्यवती को अपनावाला चरु खिला दिया। ऋषि को जब यह पता चला तो उन्होंने सत्यवती से कहा, “यह बड़ा अनर्थ हो गया। अब तुम्हारा पुत्र तो ब्राह्मण विरोधी एवं क्रूरकर्मी होगा और तुम्हारी माता का पुत्र ब्राह्मण स्वभाव का होगा।”

सत्यवती घबरा गई। उसने पति से विनती की, तब ऋषि ने कहा, “तुम्हारा पुत्र नहीं तो पौत्र अवश्य ही क्रूरकर्मी होगा।”

सत्यवती के यहाँ जमदग्नि ने जन्म लिया। इनका विवाह ऋषि कन्या रेणुका से हुआ। रेणुका के गर्भ से ही सबसे छोटे पुत्र परशुरामजी का जन्म हुआ था। उन्होंने संपूर्ण पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियविहीन कर दिया था।

एक बार हैह्यवंशी राजा सहस्रबाहु अर्जुन शिकार खेलते-खेलते जमदग्नि के आश्रम पर पहुँच गया। मुनि जमदग्नि ने उसका आदर-सत्कार किया। जमदग्नि के यहाँ कामधेनु थी। उसीके गोरस के भंडार से जमदग्नि वैभवशाली तरीके से सबका सत्कार करते थे। सहस्रबाहु बिना पूछे ही कामधेनु को खोलकर बलपूर्वक अपने नगर में ले गया। परशुराम ने आश्रम में लौट आने पर सहस्रबाहु की विशाल सेना का संहार किया और उसका सिर अपने फरसे से काट डाला। जमदग्नि ऋषि ने जब यह सुना तो उन्हें बहुत खेद हुआ। उन्होंने परशुराम को तीर्थयात्रा करके प्रायश्चित्त से अपने पापों को धो डालने हेतु भेज दिया।

एक वर्ष तक सभी तीर्थों में स्नान करते हुए परशुराम भ्रमण करते रहे। अंत में अपने आश्रम पर वापस आए। एक दिन परशुराम की माता रेणुका जल लेने गईं। वहाँ उन्हें चित्ररथ के प्रति अनुराग हो गया। वे जल लेकर अन्यमनस्क स्थिति में आश्रम लौटीं। पत्नी को इतने विलंब से लौटती देख जमदग्नि को क्रोध आ गया। उन्होंने योगबल से पत्नी की मानसिक स्थिति का अवलोकन किया। क्षुब्ध होकर उन्होंने पुत्रों को आज्ञा दी कि मानसिक व्यभिचार करनेवाली इस दुष्टा को मार डालो। किसीने माता को मारने की बात नहीं मानी, लेकिन पितृभक्त परशुराम ने पिता के प्रभाव को जानते हुए माता को मार डाला। पुत्र के इस कर्म से प्रसन्न होकर जमदग्नि ऋषि ने कहा, “तुम जो माँगोगे, मैं वही दूँगा!” परशुराम ने प्रणाम करके कहा, “मेरी माता को पुनः जीवित कर दीजिए और ऐसा वर दीजिए कि उन्हें यह भी याद न रहे कि मैंने यह नीच कृत्य किया है!” ऋषि ने परशुराम की इच्छा पूरी की।

एक बार सहस्रबाहु अर्जुन के पुत्रों ने अवसर पाकर समाधि में बैठे जमदग्नि ऋषि को मार डाला और उनका सिर काटकर अपने नगर में ले गए। रेणुका चिल्लाई, “हे राम! हे परशुराम!” और छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। रेणुका ने इक्कीस बार छाती पीट-पीटकर परशुराम को पुकारा था। परशुराम ने प्रतिज्ञा की कि वे इक्कीस बार पृथ्वी से क्षत्रिय वंश का नाश करेंगे। वहाँ से वे सहस्रबाहु के नगर में गए। उसके सभी पुत्रों को मार डाला और पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपने पिता का सिर लाकर उन्होंने धड़ से जोड़ दिया तथा यज्ञ भगवान् की पूजा की। परशुराम के प्रभाव से जमदग्नि ऋषि जीवित हो गए और ‘सप्तर्षि मंडल’ में सातवें ऋषि गिने गए।

## राजा ययाति की कथा

एक बार दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी उद्यान में घूम रही थी। दैत्यराज वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा भी अपनी सखियों के साथ उसी उद्यान में सैर कर रही थी। राजकुमारी शर्मिष्ठा बड़ी ही मानिनी एवं अति सुंदर थी। ब्रह्मतेज से सर्वांगसुंदरी देवयानी भी लावण्य में शर्मिष्ठा से कम नहीं थी। वे सबकी सब एक सरोवर के किनारे अपने-अपने वस्त्र उतारकर जलक्रीड़ा करने लगीं। उसी समय उस मार्ग से पार्वती के साथ भगवान् शंकर अपने नंदी पर बैठकर निकले। शंकर को देखकर लज्जा से सभी कन्याएँ भाग चलीं। भगदड़ में वे जल्दी-जल्दी वस्त्र पहनने लगीं। शर्मिष्ठा ने भूल से गुरु-कन्या देवयानी के वस्त्र पहन लिये। इस बात पर देवयानी बहुत क्रुद्ध हुई। उसने शर्मिष्ठा की भर्त्सना करते हुए कहा, “इस दैत्य-कन्या के पहनने से मेरे वस्त्र अपवित्र हो गए। मैं इन्हें नहीं पहनती। जिन ब्राह्मणों की कृपा से इस दासी का बाप राज करता है, मैं उसी ब्राह्मण वंश की श्रेष्ठ कन्या हूँ।”

शर्मिष्ठा से देवयानी की गालियाँ एवं अपमान सहन नहीं हुआ। उसने भी तिलमिलाकर जबाब दिया, “हमारे टुकड़ों पर पलनेवाली भिखारिन इतनी बढ-चढकर बातें कर रही है!” उसने देवयानी से वस्त्र छीन लिये। उसे कुएँ में ढकेल दिया और स्वयं सखियों के साथ अपनी नगरी में चली आई।

दैववश वहाँ नहुष-पुत्र राजा ययाति आ गए। उन्हें प्यास लगी थी। उन्होंने झाँककर देखा तो कुएँ में वस्त्रहीन देवयानी पड़ी दिखाई दी। उन्होंने अपना दुपट्टा नीचे डाल दिया और हाथ पकड़कर देवयानी को कुएँ से बाहर निकाल लिया।

देवयानी ने राजा ययाति से कहा, “राजन्! आपने मेरा हाथ पकड़कर मुझे बाहर निकाला है। अब यह हाथ कोई अन्य पुरुष नहीं पकड़ सकेगा। भगवान् की कृपा से ही मुझे आपके दर्शन हुए हैं। अब मैं आपको ही पति स्वीकार करती हूँ।” राजा को विचलित देखकर देवयानी ने बताया, “मेरे पिता गुरु शुक्राचार्य के पास देवताओं के गुरु बृहस्पति के पुत्र कच संजीवनी विद्या सीखने आए थे। उनसे मुझे प्रेम हो गया। जब वे विद्या सीखकर घर जाने लगे तो मैंने उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। उन्होंने ‘गुरु-पुत्री है!’ कहकर मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। मैंने उन्हें शाप दे दिया कि तुम पढ़ी हुई संजीवनी विद्या भूल जाओगे। कच ने भी मुझे शाप दिया कि कोई ब्राह्मण पुत्र मुझसे विवाह नहीं करेगा।” राजा ने विवाह की स्वीकृति दी और अपने नगर को लौट गए।

देवयानी ने सारा वृत्तांत अपने पिता को सुना दिया। शुक्राचार्य अपमान की बात सुनकर बहुत क्रोधित हुए। वे पुत्री के साथ आश्रम छोड़कर चल पड़े। दैत्यराज वृषपर्वा ने जब यह सुना तो वह डरा कि कहीं गुरुदेव शाप न दे दें। वह शुक्राचार्य के पीछे गया और उनके चरण पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा।

शुक्राचार्य ने राजा से कहा, “मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ, किंतु मेरी पुत्री देवयानी को तुम्हें प्रसन्न करना होगा।”

राजा ने गुरु-पुत्री से विनयपूर्वक कहा, “तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे कहो। मैं तुम्हारी इच्छित वस्तु तुमको अवश्य दूँगा।”

देवयानी बोली, “शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ मेरी दासी बनकर रहे।”

शर्मिष्ठा समझदार थी। कुटुंब को इस संकट से बचाने के लिए शर्मिष्ठा ने देवयानी की दासी बनना स्वीकार कर लिया। अपनी सहस्र सहेलियों के साथ वह देवयानी की सेवा करने लगी।

शुक्राचार्य ने अपनी पुत्री देवयानी का विवाह राजा ययाति के साथ कर दिया। राजा के साथ देवयानी जब विदा हुई तो शर्मिष्ठा भी सहस्र सहेलियों के साथ उसके साथ गई। शुक्राचार्य ने ययाति से वचन लिया कि शर्मिष्ठा को अपनी सेज पर कभी न आने देंगे। कुछ काल के बाद देवयानी को पुत्र हुआ। उस समय शर्मिष्ठा ने राजा ययाति से एकांत में मिलकर कहा कि वे उसके साथ भी विहार करें। राजा ययाति ने शर्मिष्ठा की बात मान ली। शुक्राचार्य के

वचन की उपेक्षा कर दी। ययाति से शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए तथा देवयानी के दो पुत्र। देवयानी को पता चला कि शर्मिष्ठा के पुत्र ययाति से उत्पन्न हुए हैं तो वह अति क्रोधित होकर अपने पिता के पास गई। देवयानी को ययाति ने विविध प्रकार से मनाने की चेष्टा की, लेकिन वह नहीं मानी। तब शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दिया कि तुम्हें शीघ्र बुढ़ापा आ जाए। ययाति ने कहा, “ब्रह्मदेव! अभी तो आपकी पुत्री के साथ विषयभोग से मेरी तृप्ति ही नहीं हुई है। यह शाप देकर आप तो अपनी ही पुत्री का भी अहित ही कर रहे हैं।”

शुक्राचार्य ने विचारकर कहा, “यदि कोई तुम्हें अपनी यौवनावस्था देकर तुम्हारी वृद्धावस्था स्वीकार कर ले तो तुम यौवन-सुख भोग सकोगे।”

राजा ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु का यौवन दान में प्राप्त किया। युवा होकर उन्होंने सहस्र वर्ष तक विषयभोग किया, लेकिन उनकी तृप्ति नहीं हुई। अंत में उन्हें तीव्र वैराग्य हुआ। उन्होंने देवयानी से अपनी ही भर्त्सना करते हुए अपनी दशा का वर्णन किया। पहले तो देवयानी ने इस वैराग्य को परिहास में ही लिया। बाद में वास्तविकता का बोध होने पर उसने राजा को वन में जाने की अनुमति दे दी और स्वयं भी भगवान् की आराधना में लग गई।

## शकुंतला-दुष्यंत की कथा

पुरुवंश में अनेक राजर्षि हुए हैं। राजा दुष्यंत भी इन्हींके वंशज थे। एक बार राजा दुष्यंत शिकार खेलने निकले तो कण्व ऋषि के आश्रम पर पहुँच गए। वहाँ उन्होंने एक बहुत ही सुंदर कन्या को देखा। राजा दुष्यंत उस सुंदरी को देखकर अत्यंत मोहित हो गए। उस समय आश्रम में वह कन्या अकेली ही थी। युवती ने राजा से कहा, “मैं कण्व ऋषि की पुत्री हूँ। वे इस समय तपस्या में समाधिस्थ हैं। आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।”

राजा ने कहा, “देवी, मैं क्षत्रिय हूँ। मैं आपको देखकर मोहित हो गया हूँ। आप निश्चय ही ब्राह्मण-पुत्री नहीं हो सकतीं।”

युवती ने कहा, “सच है। मैं ऋषि विश्वामित्र एवं मेनका की पुत्री हूँ—शकुंतला। जन्म होते ही मेरी माता मुझे यहाँ छोड़कर चली गई। कण्व ऋषि ने ही मेरा पालन-पोषण किया, इसलिए मैं उनकी पुत्री हूँ।”

शकुंतला की बातों से राजा और भी अधिक प्रभावित हुए। उन्हें शकुंतला से प्रेम हो गया। शकुंतला की स्वीकृति प्राप्त कर राजा ने उससे ‘गंधर्व विवाह’ किया। कुछ समय अपनी प्रिय पत्नी के साथ बिताने के बाद राजा अपनी नगरी को लौट गए।

शकुंतला गर्भवती थी। समय आने पर उसे पुत्र हुआ। महर्षि कण्व ने उसका विधिवत् जातकर्म संस्कार आदि किया और उसको क्षत्रिय धर्म के अनुरूप शस्त्रविद्या की शिक्षा देने लगे। वह बालक बचपन से ही बहुत साहसी एवं बलवान् था। सिंहशावकों को बाँधकर उनके साथ खेलना उसकी एक विशेषता ही थी। राजा दुष्यंत ने लौटते समय शकुंतला को कण्व ऋषि के आने के बाद अपनी नगरी में ले जाने का वचन दिया था। शकुंतला उनके पास गई, पर राजा ने शापवश उसे स्वीकार नहीं किया।

राजा दुष्यंत को शकुंतला से विवाह आदि का विस्मरण हो गया। अतः शकुंतला कण्व के आश्रम में रही तथा यहीं पुत्र को जन्म दिया। यही पुत्र भरत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भरत के नाम से आज हमारा देश ‘भारतवर्ष’ कहा जाता है। बालक भरत की सिंहशावकों को बाँधकर खेलने की लीला, शिकार खेलने आए राजा दुष्यंत ने देखी। राजा को स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसने राजा को स्मरण कराया कि शकुंतला से गंधर्व विवाह करके तुमने ही इस बालक को उत्पन्न किया है। तब राजा दुष्यंत ने कण्व ऋषि से क्षमा-प्रार्थना की तथा अपनी पत्नी शकुंतला एवं पुत्र भरत को लेकर अपनी राजधानी लौट गए।



राजा दुष्यंत के बाद भरत चक्रवर्ती सम्राट् बने। उन्होंने गंगासागर से गंगोत्री तक पचपन अश्वमेध यज्ञ और प्रयाग से लेकर यमुनोत्री तक यमुना तट पर अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किए। राजा भरत ने सर्वाधिक यज्ञ करके सभी राजाओं में श्रेष्ठता प्राप्त की। उन्होंने पृथ्वी पर एकछत्र राज्य किया।

राजा भरत के तीन पुत्र हुए। उन्होंने उन तीनों को अयोग्य समझा और उत्तम संतान हेतु 'मरुत्सोम' यज्ञ किया। यज्ञ से मरुद्गण प्रसन्न हुए और उन्होंने भरद्वाज नाम का पुत्र भरत को दिया।

बृहस्पति ने अपने भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी से सहवास करना चाहा। तब गर्भस्थ शिशु ने उन्हें रोका। बृहस्पति ने उस संतान को अंधे हो जाने का शाप देकर भाई की पत्नी से सहवास किया। गर्भ में पुनः शिशु आ जाने से वह डर गई कि कहीं मेरे पति मेरा त्याग न कर दें, अतः उसने उस पुत्र को त्यागना चाहा। तब बृहस्पति ने कहा, "यह मेरा औरस पुत्र होगा एवं मेरे भाई का क्षेत्रज। माता-पिता के परस्पर विवाद के कारण उस पुत्र का त्याग कर दिया गया। इसीलिए इस पुत्र का नाम भरद्वाज हुआ। भरत का वंश नष्ट होने लगा तब मरुद्गणों ने राजा भरत को दत्तक पुत्र के रूप में भरद्वाज को प्रदान किया।"

## राजा रंतिदेव की कथा

भरद्वाज ने राजा भरत का वंश बढ़ाया। आगे उनके वंश में राजा रंतिदेव हुए। रंतिदेव प्रारब्ध के अनुसार जो मिलता उसे स्वीकार कर लेते। धनोपार्जन का कोई उपाय न करने के साथ ही जो कुछ था, उसे भी दान देने के लिए वह यशोपार्जन कर चुके थे। एक समय अड़तालीस दिन तक उन्हें अन्न-जल नहीं मिला और परिवार सहित निराहार रहे। वे बड़े धैर्यशाली एवं ममता से रहित थे। उनचासवें दिन उन्हें प्रातःकाल ही घी, खीर, हलवा एवं जल मिला। परिवार संकट में था। वे लोग भोजन करने बैठे ही थे, उसी समय एक अतिथि ब्राह्मण आ गया। रंतिदेव ने श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण को अपना भोजन दे दिया। ब्राह्मण के चले जाने पर वे फिर भोजन करने बैठे तो एक शूद्र अतिथि आ गया और राजा ने उसे भी अपना भोजन दे दिया। रंतिदेव बचे हुए अन्न में से थोड़ा सा हिस्सा ग्रहण करने ही जा रहे थे कि एक अतिथि अपने कुछ कुत्तों के साथ आ गया और कुछ खाने को देने की याचना करने लगा। रंतिदेव ने, जो उनके सामने रखा था, सब उठाकर उसे दे दिया। अंत में बचा हुआ थोड़ा सा जल पीने को ही थे कि एक प्यासा चांडाल वहाँ आया। उन्होंने उसे वह जल भी पिला दिया। रंतिदेव ने इसमें बड़ा सुख माना। उनके धैर्य की कोई सीमा नहीं थी। वास्तव में ये सब अतिथि भगवान् की रची हुई माया थे। परीक्षा में भक्त खरा उतरा, तब भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, महेश—तीनों ही प्रकट हुए। रंतिदेव ने उनके चरणों में नमस्कार किया। भगवान् की कृपा से, परम भक्तिमय भाव से रंतिदेव ने अपने-आपको भगवान् श्रीहरि में तन्मय कर लिया। देवी अहल्या, जिनका विवाह गौतम ऋषि से हुआ था, इसी वंश में उत्पन्न हुई थी।

## पांडवों का जन्म

प्राचीन समय में इसी वंश में शांतनु राजा हुए। उनको ईश्वरीय देन थी कि जिस वृद्ध को वे स्पर्श कर देते, उसे युवावस्था प्राप्त हो जाती थी। राजा को इससे बड़ी शांति मिलती थी, इसीसे उनका नाम 'शांतनु' प्रसिद्ध हुआ। शांतनु द्वारा गंगाजी के गर्भ से नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्म का जन्म हुआ। परमज्ञानी, तेजस्वी तथा वीरों के अग्रगण्य भीष्म ने अपने गुरु परशुराम को भी युद्ध में संतुष्ट कर दिया था। शांतनु के सत्यवती से दो पुत्र हुए थे—चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य।

शांतनु के एक पुत्र चित्रांगद को चित्रांगद नाम के गंधर्व ने मार डाला। दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य ने काशीराज की दो पुत्रियों अंबिका एवं अंबालिका से विवाह किया। विचित्रवीर्य की राजयक्ष्मा रोग से मृत्यु हो गई। माता सत्यवती की

आज्ञा से व्यासजी ने नियोग द्वारा संतानहीन छोटे भाई की स्त्रियों से धृतराष्ट्र एवं पांडु—दो पुत्र उत्पन्न किए। अंबिका की दासी से तीसरे पुत्र विदुरजी हुए। धृतराष्ट्र ने अपनी पत्नी गांधारी से सौ पुत्र दुर्योधन आदि उत्पन्न किए। पांडु शापग्रस्त होने के कारण स्त्री-सहवास नहीं कर सकते थे। इसलिए उनकी पत्नी कुंती ने धर्म, वायु तथा इंद्र द्वारा युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन—तीन महारथी पुत्र प्राप्त किए। पांडु की दूसरी पत्नी माद्री ने दोनों अश्विनी कुमारों से नकुल एवं सहदेव नाम के दो पुत्र प्राप्त किए।

शुकदेव श्रीमद्भागवत पुराण राजा परीक्षित को सुना रहे थे, तब अपने जन्म के वृत्तांत के साथ परीक्षित के जन्म का वृत्तांत सुनाते हुए बोले, “परीक्षित! पांडव पत्नी द्रौपदी से तुम्हारे पाँच चाचा उत्पन्न हुए। अर्जुन की पत्नी एवं श्रीकृष्ण भगवान् की बहन सुभद्रा से तुम्हारे पिता अभिमन्यु का जन्म हुआ था। तुम्हारे जन्म के पूर्व ही वीर अभिमन्यु को चक्रव्यूह में फँसाकर उनके ही कुटुंबी वरिष्ठजनों ने मार डाला था। कुरुवंश का नाश हो चुका था। पांडुवंश को श्रीकृष्ण भगवान् ने बचा लिया। उत्तरा के गर्भ में तुम भी जल रहे थे। अपने चक्र से गर्भ में साक्षात् प्रभु श्रीहरि ने ही तुम्हारी रक्षा की।” राजा परीक्षित ने शुकदेव से अपना जन्म-वृत्तांत सुना तो अत्यंत विह्वल हो गए।

राजा परीक्षित की तक्षक नाग के काटने से मृत्यु हो गई।

राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने पिता की मृत्यु के कारण तक्षक पर बहुत क्रोध किया। उसने सर्पयज्ञ किया और असंख्य सर्प उस यज्ञ में भस्म हो गए। वासुकि नाग भगवान् श्रीहरि के पीछे छिप गया। जिसे भगवान् ने शरण दे दी, उसे कौन मार सकता है! आज केवल वासुकि नाग का ही वंश जीवित है। कलियुग में यह वंश भी समाप्त हो जाएगा।



# वसुदेव-देवकी विवाह

**द्रा**पर में लाखों दैत्यों ने राजाओं का रूप धारण करके घोर अनाचार किया। पृथ्वी पर त्राहि-त्राहि हो रही थी। पृथ्वी इससे त्राण पाने के लिए कृशकाय गौ का रूप धारण करके ब्रह्मा के पास गई। उसने करुण स्वर से रँभा-रँभाकर, नेत्रों से आँसुओं की धारा बहाते हुए ब्रह्मा को अपनी दुःखभरी कथा सुनाई। पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मा ने क्षीरसागर में विश्राम कर रहे शेषशायी भगवान् की 'पुरुष-सूक्त' द्वारा आराधना की। ब्रह्मा भावविह्वल होकर समाधिस्थ हो गए। उसी अवस्था में उन्होंने आकाशवाणी सुनी।

ब्रह्मा ने देवताओं से कहा, "मैंने भगवान् की वाणी सुनी है। भगवान् पृथ्वी के कष्ट को जान गए हैं। वसुदेवजी के घर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हो रहे हैं। तुम सब अपने-अपने अंशों के साथ पृथ्वी पर यदुकुल में जन्म लेकर भगवान् की लीला में सहयोग करो।"

ब्रह्मा ने देवताओं को आज्ञा दी। फिर पृथ्वी को ढाढ़स बँधाकर वे अपने धाम को चले गए।

मथुरा यदुवंशी नरपतियों की राजधानी थी। भोजवंशी राजा उग्रसेन एवं देवक दो भाई थे। देवक ने अपनी सभी पुत्रियों का विवाह मथुरा मंडल के राजा शूरसेन के पुत्र वसुदेव के साथ कर दिया। देवकी सबसे छोटी पुत्री थी। जब देवकी को विदा कराकर वसुदेवजी मथुरा नगर से जा रहे थे, तब उग्रसेन का बड़ा पुत्र कंस स्नेहवश अपनी चचेरी बहन का रथ हाँकने लगा। तभी आकाशवाणी हुई—“कंस, तू जिस बहन को बड़े प्रेम से रथ पर बिठाकर पहुँचाने जा रहा है, उसीकी आठवीं संतान द्वारा तेरी मृत्यु होगी।”

कंस मन से राक्षस था। उसने तत्काल तलवार निकाल ली और देवकी को मारने के लिए उद्यत हुआ। वह भोजवंश का कलंक था। वह बहन देवकी के केश पकड़कर खींचने लगा तो वसुदेव बहुत दुःखी हुए। उन्होंने कहा, “वीर पुरुष स्त्री पर हाथ नहीं उठाते। यह तो तुम्हारी बहन है! इस नवविवाहिता, मंगलवस्त्रधारी, निष्पाप बहन को मार डालना उचित नहीं है।”

वसुदेव ने भेदनीति, सामनीति एवं प्रशंसा भरे वाक्यों से कंस को बहुत समझाया। लेकिन कंस तो दुराग्रही था, वह देवकी का वध करने के लिए कृतसंकल्प था। तब वसुदेव ने समय टालने के विचार से कहा, “आपको देवकी से नहीं, उसके पुत्र से ही भय है न? मैं स्वयं इसके पुत्रों को जन्म लेते ही तुम्हें सौंप दूँगा। कंस जानता था कि वसुदेव सत्यभाषी हैं। इसलिए उसने देवकी को मारने का विचार छोड़ दिया। वसुदेव देवकी को लेकर अपने घर चले आए।”

## देवकी के छह पुत्रों की हत्या तथा बलराम जन्म

कुछ काल पश्चात् देवकी के यहाँ पहले पुत्र का जन्म हुआ। अपने वचनानुसार वसुदेव पुत्र को लेकर कंस के पास आए। वसुदेव की सत्यता देखकर कंस ने बालक को वापस देते हुए कहा, “आकाशवाणी ने तो देवकी के आठवें गर्भ से मेरा काल पैदा होने को कहा था।” वसुदेव बालक को लेकर लौट आए।

नारद अपनी आदत के अनुसार कंस के पास पहुँचे और बोले, “तुमने देवकी का बालक लौटाकर अच्छा नहीं किया। न जाने कौन सा बालक आठवाँ गिनती में आए।” उन्होंने पृथ्वी पर रेखा खींचकर सब ओर से आठ तक गिनती करके कंस को समझाया। दुष्टबुद्धि कंस ने नारद के मुँह से यह भी सुना कि सबके सब देवता भी ब्रज में रहनेवाले नंद आदि गोप, गोपियों तथा उनके सजातीय बंधु-बांधवों के रूप में धरती पर जनमे हैं।

नारद ने अपना काम कर दिया और वहाँ से 'नारायण-नारायण' कहते हुए रवाना हो गए। कंस को अब पक्का विश्वास हो गया था कि कोई भी पुत्र विष्णु भगवान् के अंश रूप में अवतार लेकर उसको मार डालेगा। उसने वसुदेव-देवकी को हथकड़ी पहनाकर जेल में डाल दिया। देवकी के प्रत्येक पुत्र को अपना काल समझकर वह मारता रहा। अपने पिता उग्रसेन को भी उसने जेल में डाल दिया। मथुरा का राज्य वह स्वयं करने लगा। वह अपने सहयोगी अनेक बलशाली दुष्ट राजाओं के साथ यदुवंशियों का नाश करने लगा। कंस ने देवकी के छह बालकों को एक-एक करके मार डाला तो सातवें गर्भ में भगवान् शेष पधारे। रामावतार में वे छोटे भाई लक्ष्मण के रूप में भगवान् के साथ थे और राम की आज्ञा का पालन करते रहे। कृष्ण अवतार में शेष ने बड़े भाई के रूप में भगवान् की जरा अच्छी सेवा करने का विचार किया। वे श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम बने।

भगवान् विष्णु ने जब देखा कि यदुवंशी कंस के द्वारा ज्यादा ही सताए जा रहे हैं, तब उन्होंने योगमाया को आदेश दिया—“ब्रज में जाओ और देवकी के गर्भ को वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के उदर में रख दो। बाद में तुम स्वयं नंद की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लेकर मनुष्यमात्र का कल्याण एवं अभिलाषापूर्ति करनेवाली अंबिका, भद्रकाली, वैष्णवी, चामुंडा, चंद्रिका, नारायणी, शारदा आदि अगणित नामों से पूजी जाओगी।”

देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण ही शेष भगवान् 'संकर्षण' नाम से भी जाने गए। योगमाया से भगवान् ने जैसा कहा था, उसने वैसा ही किया। देवकी का गर्भ नष्ट हो गया, यह जानकर सबको खिन्नता हुई। भगवान् विष्णु की लीला कोई नहीं समझ सका।

भगवान् की अंश-ज्योति का प्रवेश देवकी के गर्भ में हुआ। उस समय देवकी की आभा सूर्य के समान तेजस्वी हो गई। देवकी ने सबको धारण करनेवाले प्रभु परमेश्वर को गर्भ में जो धारण कर लिया था! इस अद्भुत घटना से देवकी का मुख एवं संपूर्ण शरीर एकदम सुवर्ण समान कांतिमान हो गया। उस कांति से बंदीगृह जगमगाने लगा। कंस ने जब यह देखा तो मन-ही-मन डरने लगा—‘अब अवश्य ही भगवान् मेरे प्राणों को लेने आ रहे हैं! देवकी की तेजस्विता का कारण यही हो सकता है। अब मुझे क्या करना चाहिए?’

जब देवताओं, ब्रह्मा एवं शिव ने यह जाना कि भगवान् नारायण देवकी के गर्भ में आ गए हैं तो सभी देवता, ब्रह्मा, शिव तथा नारद के साथ कंस के बंदीगृह में आए और भगवान् की स्तुति करने लगे—“आपके चरणों का आश्रय लेकर प्राणी इस संसार को पार कर जाता है। आपके प्रकट होने पर भक्तजन अभय होकर अपनी-अपनी तपस्या-पूजा कर सकेंगे। पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप अवतार ले रहे हैं। हे प्रभु, आप सर्वात्मा हैं!”

सबने माता देवकी की भी प्रार्थना की—“माता आपकी कोख में जगत् का कल्याण करनेवाला नारायण स्वयं आ गया है!”

इधर कंस भगवान् के भय से इतना अधिक आतंकित था कि उसे हर स्थान, हर वस्तु में भगवान् ही दिखाई पड़ रहे थे।



## कृष्णावतार और कृष्णलीलाएँ

**आ**काश में ग्रह-नक्षत्र शांत एवं सौम्य थे। दिशाएँ स्वच्छ एवं प्रसन्न दिखाई दे रही थीं। ब्राह्मणों के यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। स्वर्ग में देवता-गंधर्व मधुर गान गाने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। आकाश से पुष्पवर्षा हो रही थी। भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र, अर्धरात्रि का समय—भगवान् श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ से प्रकट हुए। चार भुजाएँ शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न, सुंदर श्यामवर्ण, पीतांबर, वैदूर्य मणि, कानों में कुंडल, कमल करधनी, रत्नजटित मुकुट धारण किए उस बालक के अंग-प्रत्यंग से दिव्य छटा छिटक रही थी। उस प्रकाश से बंदीगृह जगमगा उठा। वसुदेव ने जब यह स्वरूप देखा तो हाथ जोड़कर बालक के चरणों में गिर पड़े। भगवान् आ गए हैं—यह जानकर आनंद से उनका रोम-रोम खिल उठा। वे कह उठे, “हे प्रभो! भक्तों की रक्षा के लिए आपने यह दिव्य रूप धारण किया है। आपके अवतार का समाचार कंस के दूत अभी जाकर उसको देंगे। वह अस्त्र-शस्त्र सहित यहाँ आएगा।”

माता देवकी ने भगवान् का यह दिव्य स्वरूप देखा तो प्रार्थना करने लगीं, “हे प्रभु! आपका यह चतुर्भुज स्वरूप तो सबके ध्यान की वस्तु है। साधारण प्राणियों के सामने यह प्रकट होते ही आपके अवतार का सभी को पता चल जाएगा। मैं डर रही हूँ। कंस अवश्य आपको मुझसे छीन लेगा।...आप अपना यह अलौकिक रूप त्यागकर बालक का रूप ही धारण करें।”

भगवान् नारायण ने कहा, “माता तुमने और पिता वसुदेवजी—दोनों ने ही अपने पहले जन्म में बड़ा घोर तप किया था। जब ब्रह्मा ने तुमसे वर माँगने को कहा तो तुमने अपने गर्भ से भगवान् के जन्म का वर माँगा था। पुत्ररूप में तुमने मुझे माँगा और मैं आ गया—एक बार ‘पृश्निगर्भ’ नाम से, दूसरी बार उपेंद्र ‘वामन’ के नाम से! अब तीसरी बार फिर तुम्हारा पुत्र बनकर आ गया हूँ। तुमको चतुर्भुज स्वरूप इसलिए दिखाया कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारों का भी स्मरण हो जाए। माता-पिता की भाँति मेरे प्रति आप दोनों पुत्रभाव के साथ ब्रह्मभाव भी रखें! इससे तुम्हें मोक्ष-प्राप्ति हो जाएगी। हे पिता! अब मुझे गोकुल में नंद बाबा के घर पहुँचा दो। वहाँ योगमाया ने जन्म ले लिया है। तुम मुझे वहाँ रखकर उस कन्या को अपने साथ यहाँ ले आना।” वसुदेव ने कहा, “हाथ-पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं। बंदीगृह के कपाट बंद हैं। बाहर कंस के पहरेदार कड़ा पहरा दे रहे हैं, ऐसे में मैं कैसे निकल सकता हूँ?” इतना कहते ही हथकड़ियाँ अपने-आप खुल गईं। सारे कपाट खुल गए, पहरेदार अचेत हो गए। वसुदेव ने भगवान् कृष्ण को एक सूप में रख लिया और गोकुल ग्राम के लिए चल दिए। उस समय बादल गरज रहे थे। वर्षा की फुहारें पड़ रही थीं। वर्षा के कारण यमुना नदी में प्रवाह तीव्र और गहरा हो गया था। भयंकर गड़गड़ाहट, जल की भँवर और लहरों के बीच वसुदेव गोकुल के लिए निकल पड़े। शेष भगवान् अपने फनों को उनके ऊपर फैलाकर जल को रोक रहे थे। वसुदेव ने जैसे ही यमुना के जल में प्रवेश किया, यमुना का जल उछल-उछलकर बढ़ने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण परमानंद में हाथ-पैर उछाल रहे थे। यमुना के जल को भगवान् के चरण का स्पर्श हुआ। यमुना धीरे-धीरे शांत हो गई। उन्होंने वसुदेव को सरल मार्ग दे दिया। वसुदेव नंद के घर पहुँचे और अपने पुत्र को यशोदा की शय्या पर सुला दिया तथा वहाँ से कन्या को उठाकर ले आए। बंदीगृह में देवकी की शय्या पर सुलाकर अपने-आप हथकड़ी-बेड़ी पहन लीं। बंदीगृह के द्वार भी अपने-आप बंद हो गए।

बंदीगृह में आते ही कन्या रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर सभी पहरेदार सचेत हो गए। उन्होंने तुरंत कंस के पास जाकर बालक के जन्म होने की सूचना दी। कंस भयभीत और व्याकुल होकर उठ खड़ा हुआ। हाथ में तलवार

लेकर भागता हुआ बंदीगृह में पहुँचा। अस्त-व्यस्त अवस्था में लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते कंस ने पहुँचते ही देवकी के हाथ से कन्या छीन ली। देवकी ने भाई से याचना की, “तुमने पुत्र तो सभी मार दिए हैं, भाई! यह तो कन्या है। इससे तुमको क्या भय हो सकता है?”

कंस ने क्रूरतापूर्वक कहा, “देव-वचन मिथ्या तो नहीं हो सकता!” उसने कन्या को पकड़कर ज्यों ही जोर से पत्थर पर दे मारने के लिए उछाला, त्यों ही कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में उड़ गई। वह कन्या स्वयं योगमाया थी। उसने आयुधयुक्त अष्टभुजाएँ धारण कीं और दिव्य वस्त्राभूषण के साथ प्रकट होकर कहा, “दुष्ट कंस! मुझे मारने से कुछ नहीं मिलेगा, तुझे मारनेवाला तेरा काल तो पहले ही जन्म ले चुका है।” यह कहते ही योगमाया अंतर्धान हो गई।

देवी की बात सुनकर कंस को अति आश्चर्य हुआ। देवकी के निरपराध बालकों की हत्या के कारण अति भयभीत होकर उसने बड़ी नम्रता से देवकी एवं वसुदेव से कहा, “मैं आपका अपराधी हूँ, हत्यारा हूँ। मैंने अकारण ही आपके बालकों की हत्या की है। इसमें देवताओं का ही विशेष दोष है। अब मुझे नरक भोगना पड़ेगा। बहन, तुम मुझे क्षमा कर दो!” कंस ने वसुदेव-देवकी के चरण पकड़कर, आँसू बहाते हुए बार-बार क्षमा-याचना की। अंत में उन्हें बंदीगृह से मुक्त करके भोजन कराया और वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया। उन्हें रहने के लिए उत्तम महल दिया।

वसुदेवजी ने कंस को क्षमा कर दिया। वे वहीं महल में देवकी के साथ रहने लगे।

कंस ने प्रातःकाल ही अपने मंत्रियों को बुलाकर योगमाया की बात सुनाई। मंत्रियों ने कहा, “राजन्, देवताओं ने ही आपको धोखा दिया है। अतः देवताओं का ही नाश करना चाहिए। नगर में दस दिन तक के सभी बच्चों को ढूँढ़कर मार डालना चाहिए। ब्राह्मणों के यज्ञ-हवन बंद करा देने चाहिए। देवता बड़े डरपोक होते हैं। वे आपकी शरण में रहकर आपकी सेवा करते रहते हैं। भगवान् विष्णु डरकर कहीं छिपे होंगे, शंकर भी पर्वत पर आपके डर से पड़े रहते हैं। इंद्र को आप परास्त कर ही चुके हैं। अब आप अपने राक्षस सेवकों द्वारा सब शत्रुओं का नाश करवा दीजिए। वेद, ब्राह्मण, गौ, तपस्या तथा यज्ञ में विष्णु का निवास है, अतः इन सबको एकदम नष्ट कर दिया जाना चाहिए।”

दुर्बुद्धि कंस मंत्रियों की सलाह मानकर सभी दुष्ट कर्म करने लगा और अपने को ही नष्ट करने पर तुल गया! राक्षस भेष बदलकर भयंकर हिंसा करने लगे। ब्राह्मण, गौ तथा साधु-संतों का संहार होने लगा। कंस के अत्याचारों से प्रजा पीड़ित होने लगी।

## गोकुल में श्रीकृष्ण

गोकुल के राजा नंद बड़े उदार एवं सहृदयी थे। अपने यहाँ पुत्र-जन्म से वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी और बड़ा महोत्सव मनाया। पुत्र का जातकर्म संस्कार कराकर वेदज्ञ ब्राह्मणों ने हवन इत्यादि द्वारा गृह-शुद्धि पूजन किया। सबको यथाशक्ति दान, वस्त्र, आभूषण बाँटे। घर-द्वार, आँगन-मंगलद्वार, वंदनवार, माला तथा धूप-दीप से गोकुल ग्राम सजाया गया। ग्वाल-बाल तथा गोपियाँ नृत्य गान एवं बाजे के साथ नंद बाबा के आँगन में हर्षोल्लास मनाने लगे। सब यशोदा मैया के पास पहुँचकर मोहन के दर्शन करना चाहते थे। हाथ में जल, पुष्प तथा अक्षत लेकर भगवान् श्रीहरि के दर्शन के लिए आतुरता से दौड़ रहे थे। ये गोपवृंद और उनकी पत्नियाँ देवताओं के अंश थे। अपने आराध्य देव के दर्शन पाकर वे मतवाले हो रहे थे। दूध-दही तथा माखन से होली खेली जा रही थी। नंद बाबा को बधाइयाँ दे-देकर सब मनचाही वस्तुओं का पुरस्कार पा रहे थे। लोकमाया के वशीभूत होकर सब नवजात शिशु को अशीर्वाद दे रहे थे। भगवान् श्रीविष्णु नंद बाबा के यहाँ श्रीकृष्ण के रूप में आए तो

लक्ष्मी उनके बिना वैकुण्ठलोक में अकेली कैसे रहतीं! उन्होंने भी अपना अस्तित्व गोकुल में व्याप्त कर दिया। पुत्र-जन्म का उत्सव चलता ही रहा।

कुछ समय पश्चात् नंद राजा कंस को सालाना कर चुकाने के लिए दूध, दही, माखन, घृत से भरे छकड़े लेकर, ब्रज का भार अपने गोप-ग्वालों को सौंपकर मथुरा गए। कंस के दरबार में कर जमा करने के बाद वे अपने परमस्नेही वसुदेवजी के घर गए। वसुदेव ने उन्हें गले लगाया और प्रेम-विह्वल होकर वे एक-दूसरे से कुशल-मंगल पूछने लगे। वसुदेव ने कहा, “भगवान् की बड़ी कृपा हुई, भाई नंदजी। इस ढलती अवस्था में पुत्र पाकर ईश्वर ने तुम्हारी मनोकामना पूरी कर दी। बहुत दिनों से हम मिल नहीं पाए। हमारा प्रारब्ध-भोग ही है कि हम दोनों कभी साथ नहीं रह सके। आपके राज में गोप, ग्वाले, वृक्ष, पशु, गौएँ सभी सुख से होंगे। नंद भाई, जिस वन में आप हैं, वहाँ के पशु-पक्षी भी सुखपूर्वक होंगे ही। मेरा पुत्र अपनी माता रोहिणी के साथ आनंद से तो है न! मेरी अन्य पत्नियाँ कैसी हैं? मेरे पुत्रों को तो कंस ने मार डाला। अंत में एक कन्या हुई थी, वह भी स्वर्ग चली गई। सब भाग्य का दोष है। नंदजी, यह दुष्ट कंस ब्रज में उपद्रव मचाता ही रहता है। अतः आपका अधिक समय ब्रज से दूर रहना हितकर नहीं होगा।”

वसुदेवजी की बातें सुनकर नंद बहुत व्यग्र हो गए। वे वसुदेवजी के साथ भी रहना चाहते थे और ब्रज में कंस के उपद्रव से भयभीत भी थे। शीघ्र ही वसुदेवजी से गले मिलकर वे अपने छकड़ों को लेकर वहाँ से रवाना हो गए। रास्ते भर वे भगवान् से ब्रज की रक्षा के लिए प्रार्थना करते रहे।

## पूतना वध

पूतना नाम की एक राक्षसी थी। कंस की आज्ञा से वह सब ओर घूम-घूमकर नवजात शिशुओं की हत्या कर रही थी। वह अपनी इच्छा से रूप बदल सकती थी। गोकुल ग्राम के पास वह सुंदरी के रूप में आई। वह इधर-उधर बालकों को ढूँढ़ रही थी, लेकिन कहीं भी उसे छोटा बालक नहीं दिखाई दिया। खोजते-खोजते वह नंद के घर में घुसी। वहाँ देखा तो बालक श्रीकृष्ण शय्या पर सोए हुए हैं। कृष्ण भगवान् ने जान लिया कि यह बच्चों को मारनेवाली राक्षसी पूतना है। उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये।

बड़े से बड़ा अनिष्ट योग से निवृत्त हो जाता है। भगवान् श्रीहरि के अवतार ने नेत्र बंद करके मानो योगदृष्टि संपादित की।

पूतना ने आगे बढ़कर श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया। भद्र महिला जैसा व्यवहार एवं उसके सुंदर और मोहक स्वरूप को देखकर माता यशोदा एवं रोहिणी ने रोक-टोक नहीं की। राक्षसी पूतना ने बालक को गोद में उठाकर उसके मुँह से अपना विष से पुता स्तन लगा दिया। श्रीकृष्ण भगवान् ने दोनों हाथों से पकड़कर स्तन से पूतना के प्राण ही खींच लिये। उसका मर्मस्थल फटने लगा। वह चिल्लाने लगी—“छोड़! छोड़! छोड़...! अब बस कर!” पूतना हाथ-पैर पटकने लगी। उसके नेत्र उलट गए। शरीर पसीने से भीग गया। अपनी पीड़ा को पूतना झेल नहीं सकी। अंततः राक्षसी रूप में प्रकट हो गई। उसका मुँह फट गया और वह प्राणहीन होकर धड़ाम से गिर पड़ी। पूतना के भयानक शरीर के नीचे छह कोस के भीतर के सभी वृक्ष कुचल गए। उस राक्षसी की छाती पर निर्भय होकर बालक श्रीकृष्ण खेल रहे थे।

प्राचीन कथा है—दैत्यराज बलि की कन्या थी रत्नमाला। यज्ञशाला में भगवान् वामन को देखकर उसके हृदय में पुत्रस्नेह उदय हो आया। मन-ही-मन अभिलाषा जाग उठी कि यदि ऐसा बालक मेरा हो तो उसे मैं स्तनपान कराऊँ। भगवान् वामन को देखकर उसके हृदय में स्नेह का भाव उदय हो आया था, अतः वही रत्नमाला द्वापर में पूतना हुई और भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श से उसकी लालसा पूर्ण हो गई।

जब गोपियों ने देखा कि श्रीकृष्ण मृत पूतना राक्षसी की छाती पर खेल रहे हैं तो झपटकर उन्होंने श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया। यशोदा तथा रोहिणी ने बालक को लेकर गोमूत्र से स्नान कराया। उसकी नजर उतारी। गोपियों ने भगवान् की रक्षा के लिए स्तोत्र पाठ किए। माता यशोदा ने बालक को स्तनपान कराया और पालने में सुला दिया।

द्वार पर ही पूतना का भयंकर शरीर पड़ा देखकर सब आश्चर्यचकित रह गए। ब्रजवासियों ने कुल्हाड़ी से पूतना के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके गोकुल से दूर ले जाकर जला डाला। उसके जलने से जो धुआँ निकला उसमें अगर की-सी सुगंध आने लगी। नंद बाबा अपने साथियों के साथ मथुरा से लौटे थे। उनको सुगंध आई तो पूछने पर ब्रजवासियों ने पूतना के विषय में पूरा हाल कह सुनाया। नंद बाबा मन-ही-मन भगवान् का धन्यवाद करते रहे।

नंद की आँखें भर आईं। उन्होंने बालक को हृदय से चिपटा लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण की लीला अद्भुत थी। घर में ग्वाल-बाल एवं ब्रजवासियों का मेला-सा लगा था। मंगलगीत गाए जा रहे थे। वाद्यवृंद की ध्वनि गुंजायमान हो रही थी। श्रीकृष्ण का जन्म नक्षत्र होने के कारण अभिषेक-संस्कार एवं स्वस्तिवाचन हो रहा था। माता ने बालक श्रीकृष्ण को शय्या पर सुला रखा था और स्वयं उत्सव में आए लोगों के स्वागत-सत्कार में व्यस्त थीं। बालक की नींद खुली तो वह रोने लगा। माता का ध्यान उनके रोने पर नहीं गया। बालक एक विशाल छकड़े के नीचे सो रहा था जिसमें गोरस से भरे हुए घड़े रखे थे। बालक के छोटे-छोट पैर उछल रहे थे। उस नाजुक फूल-से कोमल पैर के लगने मात्र से वह विशाल छकड़ा चूर-चूर होकर गिर पड़ा। दूध, दही, मक्खन से भरे घड़े टूट गए। छकड़े के टूटने और बरतनों के फूटने की आवाज से नंद बाबा, यशोदा माता, ग्वाल-बाल, सब दौड़े-दौड़े बाहर आए और इस अनोखी घटना को देखकर सभी व्याकुल हो गए। सोचने लगे अवश्य ही यह करतूत किसी राक्षस की होगी। नन्हा श्रीकृष्ण तो सो रहा था। वहाँ खेल रहे बालकों ने कहा, “मैया, गोपाल ने ही रोते-रोते अपने पैर से इस छकड़े को उलट दिया है।” किसीने उन बालकों की बात पर विश्वास नहीं किया।

स्नेहविकल यशोदा ने कृष्ण को पुचकारते हुए गोद में उठा लिया और दूध पिलाया। नंद बाबा भाव-विह्वल हो रहे थे। उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा की। दान-दक्षिणा देकर उनसे बालक को दीर्घायु का आशीर्वाद देने की प्रार्थना की।

## तृणावर्त का संहार

एक दिन की बात है—यशोदा अपने बालक को दुग्धपान करा रही थीं। सहसा भगवान् का भार इतना बढ़ गया कि यशोदा इस भार को सहन नहीं कर पाईं। उन्होंने गोपाल को गोद से नीचे उतारकर पृथ्वी पर बैठा दिया और आश्चर्यचकित सी देखती रहीं, फिर अपने काम में लग गईं। उसी समय कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नाम का दैत्य वहाँ आया। श्रीकृष्ण को अकेला बैठा देखकर उसने उन्हें आकाश में उठा ले जाने का विचार किया। उसने भयंकर बवंडर का रूप धारण कर लिया और संपूर्ण ब्रज को धूल से ढक दिया। सबने अपने नेत्रों को बंद कर लिया। आँधी के कारण चारों ओर धूल-ही-धूल एवं अँधेरा छा गया। यशोदा दौड़कर अपने बालक को उठाने आईं। देखा तो लाला वहाँ नहीं था। व्याकुल यशोदा रो-रोकर अपने लाला को पुकारने लगीं और बेसुध हो गईं। बवंडर के कारण किसीको किसीकी सुध नहीं थी। यशोदा पुत्र-वात्सल्य से बार-बार चीख-चीखकर अपने लाला को पुकारती जा रही थीं—“मेरा लाला! मेरा लाला!” गोपियों ने उनका आर्तस्वर सुना तो दौड़ी-दौड़ी आईं। अब तो आँधी-तूफान की चिंता छोड़ सारे ग्वाल-बाल भी दौड़ पड़े। कृष्ण को न पाकर सभी व्याकुल होकर आँसू बहाने लगे।

इधर तृणावर्त राक्षस भगवान् को उठाकर आकाश में ले चला। फिर भगवान् इतने भारी हो गए कि वह दैत्य भगवान् का बोझ सँभाल ही नहीं सका और अधिक दूर तक नहीं जा सका। पर्वत के समान बोझ से वह पृथ्वी पर आ गिरा और मर गया। जिस चट्टान पर वह गिरा, वह चूर-चूर हो गई। ग्वालों को कृष्ण उसी राक्षस के शरीर पर



खेलते दिखाई दिए। गोपियाँ दौड़कर रोती-रोती वहाँ पहुँचीं और लाला को गले से लगाकर बार-बार उसका मुँह चूमती हुई यशोदा के पास ले आईं। यशोदा ने लाला को गोद में लेकर अपनी छाती से लगा लिया। बोलीं, “राक्षस तो अवश्य इसे मारने ही आया था। ईश्वर, तू ही मेरे लाल की रक्षा कर, प्रभो!”

इस घटना को नंद बाबा और ब्रजवासियों ने कंस के उत्पातों का ही प्रमाण माना। वे सभी विचार करने लगे— अब हमें यह वन छोड़ ही देना चाहिए।

भगवान् की लीला देख-देखकर यशोदा, नंद बाबा और ब्रजवासी आश्चर्यचकित से रह जाते थे।

एक दिन यशोदा अपने लाला को स्तनपान करा रही थीं। वह वात्सल्य भरी आँखों से देख रही थीं। वात्सल्य के कारण श्रीकृष्ण का मुख दूध से भर गया। दूध की धारा बहकर बाहर निकल रही थी। यशोदा ने बालक का दूध से सना मुँह चूम लिया। उसी समय भगवान् ने जोर से जैभाई ली। यशोदा रानी ने देखा—लाला के मुख में आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ज्योतिमंडल, समुद्र, द्वीप—संपूर्ण चराचर विश्व है। वह अति व्यग्र हो गईं। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर अपने नेत्र मूँद लिये।

भगवान् स्नेहमयी जननी को विश्वरूप दिखाकर मानो कह रहे हों, “मैया, मैं अकेला ही नहीं, संपूर्ण विश्व को मेरे मुख में बिठाकर तू दूध पिला रही है!” माँ और माँ के दूध की महिमा को कौन समझ सकता है!

## नामकरण संस्कार

यादवों के कुल-पुरोहित श्रीगर्गाचार्य थे। वसुदेवजी ने अपने कुल-पुरोहित से एकांत में जाकर कहा कि नंद के यहाँ बलराम एवं कृष्ण हैं। आप मेरे नाम का उल्लेख बिना ही दोनों बालकों का नामकरण संस्कार करवा दें। गर्गाचार्यजी वसुदेव का संकेत समझकर गोकुल ग्राम में नंद बाबा के घर पहुँचे। उनको देखकर नंदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और उनसे प्रार्थना कि आप ज्योतिषशास्त्र के आचार्य हैं, कुल पुरोहित भी हैं, अतः दोनों ही बालकों का नामकरण संस्कार करने की कृपा करें।

गर्गाचार्यजी ने नंद को समझाया कि यदि उन्होंने दोनों बालकों का नामकरण संस्कार करवाया तो कंस को अवश्य संदेह हो जाएगा कि ये पुत्र वसुदेवजी के ही हैं और वह पापी दोनों बालकों को आपसे छीनकर ले जाएगा। उसे तो पक्का विश्वास है कि देवकी के गर्भ से कन्या नहीं, पुत्र ही जनमा था। फिर वह कन्या भी कहकर गई है कि उसका काल जन्म ले चुका है! दुष्ट कंस संदेह होने पर बच्चों को मार डालेगा।

नंद ने कहा, “गुरुवर, आप चुपचाप नामकरण संस्कार कर दें। मैं अपने किसी संबंधी अथवा मित्रों को भी इस संस्कार में नहीं बुलाऊँगा।” नंद ने चुपचाप नामकरण संस्कार करवा लिया। गर्गाचार्यजी ने रोहिणी के पुत्र को बलशाली होने के कारण ‘बलराम’, ‘रोहिणेय’ तथा ‘संकर्षण’ नाम दिए और नंद से कहा, “तुम्हारा पुत्र साँवला है, अतः इसका नाम ‘कृष्ण’ होगा। वैसे तो गुण तथा नामों के वर्णन मैं नहीं कर सकता। युग-युग में इन्होंने कभी श्वेत, कभी रक्त तथा कभी पीत वर्ण के शरीर धारण किए हैं। द्वापर में कृष्ण वर्ण के हैं। ये ‘वासुदेव’ भी कहलाएँगे। यह पुत्र तुम लोगों का बहुत कल्याण करेगा। समस्त गोप एवं गौओं को आनंदित रखेगा। इसके सहयोग से आप भारी विपत्ति को भी सुगमता से पार कर लेंगे।” गर्गाचार्य ने फिर गंभीर स्वर में नंद से कहा, “नंदजी, यह तुम्हारा पुत्र नारायण का अंशावतार है। तुम बहुत सावधानी से इसकी रक्षा करना!” नंद ने गर्गाचार्य की पूजा की और नामकरण संस्कार के बाद गर्गाचार्य वहाँ से रवाना हो गए।

अब राम-श्याम—दोनों घुटनों के बल चलने लगे थे। उनका शरीर ब्रज की धूल-मिट्टी में सन जाता था। पग कीचड़ से भर जाते थे। उनकी करधनी के घुँघरू धीरे-धीरे स्वर निकालते। वे कभी किसीके पीछे दौड़ते, कभी गिर जाते, फिर किलकारियाँ मारकर हँसने लगते। गोकुल में उनकी ये बाल-लीलाएँ चल रही थीं। रोहिणी तथा यशोदा

दोनों अपने शिशुओं की बाल-क्रीड़ा देखती रहतीं और वात्सल्य से उनको छाती से चिपकाकर दूध पिलातीं। शिशुओं के धूल-धूसरित स्वरूप, हँसते समय उनकी दिखाई देनेवाली दंत-पंक्तियाँ तथा सलोना स्वरूप देख-देखकर वे मुग्ध हो जातीं और भूल जाती थीं सारे संसार को। गोपियाँ उनकी छवि देखने के लिए घर के काम छोड़कर खड़ी-खड़ी ही, ठगी-सी निहारती रह जातीं। बछड़े की पूँछ पकड़कर भागते समय बछड़े के पीछे उनका घिसटना, गिरना, उठना और पुनः किसी अन्य दिशा में देखकर भाग-दौड़ करना—उनकी ये क्रीड़ाएँ देखकर गोपियाँ उन्हें गोद में उठाकर भाव-विभोर हो जातीं। बलराम-कृष्ण की बाल-लीलाओं में मग्न गोकुलवासियों को समय का कुछ पता नहीं चल पाता था।

बलराम-कृष्ण अब खड़े होकर चलने लगे थे। उनकी क्रीड़ाओं का रूप अब अधिक बढ़ गया था। अब तो वे गोपियों के घर जाना, मोहक चितवन से उनको आकर्षित करना, उनके यहाँ का गोरस पी जाना, मक्खन चुराकर खा जाना और न खा सकने पर मटकों को फोड़कर बंदरों को मक्खन खिला देना आदि क्रीड़ाओं से और नटखट लीलाओं से सारा व्रज सराबोर हो रहा था।

कन्हैया की चंचल हरकतों से गोपियाँ मोहित हो जाती थीं; लेकिन यशोदा को उलाहना भी देने पहुँच जातीं। उनसे कृष्ण की हरकतों को बड़े प्रेम से सुनाकर कहतीं, “तुम्हारा लाला तो हमारे बच्चों को रुला आता है। गायों के बछड़ों को खोल देता है। बछड़े गौओं का दूध पी जाते हैं। यह हँसता हुआ खिसक जाता है और हमको धमका भी देता है।”

## मैया, कन्हैया ने माटी खाई!

एक दिन बलराम तथा अन्य ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण के साथ खेल रहे थे। उन्होंने यशोदा के पास आकर कहा, “मैया, कन्हैया ने माटी खाई है!” यशोदा मैया ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और ले जाने लगीं। श्रीकृष्ण ने डरकर आँखें बंद कर लीं। माँ ने डाँटकर कहा, “अरे नटखट! तू बहुत ही ढीठ हो गया है। छिपकर मिट्टी खा रहा है। तेरे साथी गोप बालकों ने आकर अभी कहा है। तेरे बड़े भाई बलदाऊ भी कह रहे हैं कि तूने माटी खाई है!”

कृष्ण ने कहा, “माँ, वे सब झूठ बोल रहे हैं। तुम मेरा मुँह देखो, क्या मिट्टी खाया हुआ लग रहा है?” यह कहकर कन्हैया ने मुँह खोल दिया।

यशोदा ने देखा संपूर्ण चराचर जगत् उनके मुँह में विद्यमान था! वे शंका में पड़ गईं—कहीं कोई भ्रम तो नहीं हो रहा है! भगवान् की माया है या कोई स्वप्न! फिर मन में आया कि जरूर मेरे बालक में जन्मजात योगसिद्धि है! यशोदा ने नारायण की माया जानकर उन्हें प्रणाम किया। जब यशोदा ने पुत्र को नारायण का अंशावतार समझा तो कन्हैया ने तत्काल माता की बुद्धि में पुत्र-स्नेह की माया फैला दी और मैया ने सबकुछ भूलकर बालक को गोद में उठा लिया।

राजा परीक्षित को यह जानने की बहुत उत्सुकता हुई कि नंद की कौन सी ऐसी तपस्या थी जिसके फलस्वरूप नंद-यशोदा को भगवान् की यह विभोर कर देनेवाली लीलाएँ देखने को मिलीं। माता यशोदा ने स्तनपान से अपने वात्सल्य की पूर्ति की। ये सुख तो देवकी-वसुदेव को भी नहीं प्राप्त हुए।

शुकदेव ने राजा परीक्षित को बताया कि नंद पूर्वजन्म में द्रोण नामक एक श्रेष्ठ वसु थे। उनकी पत्नी का नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्मा को प्रसन्न करके वरदान में भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति माँगी थी। द्रोण और धरा ने ही इस जन्म में नंद-यशोदा के रूप में व्रज में रहकर कृष्णभक्ति प्राप्त की।

यशोदा एक दिन सब दासियों को काम में लगाकर मक्खन निकालने के लिए दही बिलोने लगीं। प्रेममग्न यशोदा मन-ही-मन कन्हैया की लीलाओं का मनन करती जा रही थीं। वात्सल्य के कारण उनके स्तनों से दुग्धधारा बहने

लगी। कन्हैया तो जन्म-जन्म के भूखे थे। वे सोकर उठे तो माता की कमर को पकड़े हुए खड़े-खड़े ही दूध चूसने लगे। इसी समय चूल्हे पर रखा हुआ दूध उबलने लगा। यशोदा कन्हैया को परे कर दूध बचाने के लिए भागीं तो इसपर कन्हैया खीझ गए। उन्होंने पास में रखा लोहे का बाट फेंककर बिलोनेवाला मटका फोड़ डाला। सारा दही माटी में मिल गया। अब माता की डाँट खानी पड़ेगी—यह सोचकर कृष्ण कमरे में छिप गए। वहाँ देखा तो एक ओखली रखी थी। माखन का मटका भी भरा रखा था। उन्होंने ओखली पर चढ़कर, दही और माखन के मटके उतार लिये। सारा माखन तथा दही निकाल-निकालकर बंदरों को खिलाने लगे। शायद त्रेता युग में वानर-सेना ने सेतु बाँधकर रामावतार में उनकी जो सेवा की थी, इस कृष्णावतार में वे वही ऋण चुका रहे थे! इधर-उधर धीरे से झाँक लेना और पुनः बंदरों की ओर देखकर, उन्हें बुला-बुलाकर खिलाना—यही क्रम चल रहा था।

यशोदा जब दही मथने के लिए वापस आई तो देखा—सारा दही मिट्टी में गिर गया है। मटका टूटा पड़ा है। वे समझ गई कि यह सारी करतूत इस कन्हैया की ही है। वे मन-ही-मन हर्षित हो रही थीं, लेकिन ऊपर से आँखों में गुस्से का भाव लेकर वे कन्हैया को तलाशने लगीं। ढूँढ़ती हुई वे उसी जगह पहुँच गईं जहाँ बंदरों की टोली भगवान् को घेरे हुए दही-माखन की लूट मचा रही थी। पीछे से छिपकर देखने लगीं। कन्हैया को पता ही नहीं चला। यशोदा उन्हें पकड़ने चलीं। आहत सुनते ही कन्हैया भागने लगे। भारी शरीरवाली यशोदा के हाथ वह चंचल बालक कैसे आ सकता था! भागते-भागते यशोदा थक गईं तो भगवान् स्वयं ही उनकी पकड़ में आ गए।

## ओखली से बँधे कृष्ण

यशोदा उन्हें खींचती-खींचती ले चलीं। कन्हैया मार के डर से रोने लगे। काजल लगे नेत्रों से आँसू टपकने से, आँखों को मलने से कृष्ण का मुख और भी श्याम वर्ण हो रहा था। हाथों में लगा दही-माखन भी मुख पर चमक रहा था। बालों की लटें बिखर रही थीं। माँ को अपने लाड़ले का यह रूप बहुत आकर्षक लग रहा था। लेकिन बालक ज्यादा ढीठ होता जा रहा है, यह सोचकर उन्होंने कृष्ण को उसी स्थान पर ले जाकर हाथ में छड़ी उठा ली और लाला की करुण छवि को निहारने लगीं। कन्हैया की भयभीत नजरों से माता का वात्सल्य उमड़ पड़ा। उन्होंने हाथ से छड़ी नीचे फेंक दी और जिस ओखली पर चढ़कर कन्हैया ने माठ निकाला था, उसी ओखली से उन्हें बाँध दिया। लेकिन रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई। घर में जहाँ कहीं रस्सी मिली, वह ला-लाकर बाँधती जा रही थीं, पर रस्सी हर बार छोटी पड़ती जा रही थी। निकट खड़ी गोपियाँ यह लीला देख रही थीं और आनंद से विभोर हो रही थीं। यशोदा बाँधते-बाँधते थक गईं। वे सोचने लगीं—‘अरे! मैं भी कैसी मूढ़ हूँ। मैं इसे ही बाँध रही हूँ...।’ कन्हैया ने देखा कि माता को ज्ञान हो गया है तो उन्होंने अपनी माया से माता को वास्तविकता से परे कर दिया और बँध गए।

यशोदा कन्हैया को ओखली से बाँधकर अपने काम में लग गईं। कन्हैया ने सोचा—‘प्राचीनकाल से वृक्ष के रूप में खड़े कुबेर-पुत्र नलकूबर एवं मणिग्रीव मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हींका उद्धार कर दिया जाए।’ एक बार ये दोनों कुबेर-पुत्र मदांध होकर रमणियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। तभी नारद उधर से निकले। स्त्रियों ने तो वस्त्र पहन लिये, लेकिन ये दोनों वस्त्रहीन जड़वत् खड़े रहे। तब देवर्षि नारद ने इन दोनों को वृक्ष बन जाने का शाप दे दिया था।

कृष्ण ओखली को घसीटते हुए भाग चले। सहसा ओखली पास-पास खड़े दो यमलार्जुन वृक्षों के तनों में फँस गईं, लेकिन कृष्ण रुके नहीं। उनके जोर से दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ गए। उसमें से दो दिव्य पुरुष निकले—वे ही कुबेर-पुत्र नलकूबर एवं मणिग्रीव थे। उन्होंने भगवान् की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा, “यक्षो, मेरी ही प्रेरणा से नारदजी ने तुम्हारे अहंकार को दूर करने के लिए यह शाप दिया था। अब तुम लोग अपने धाम जाओ। तुमको मोक्ष

प्राप्त होगा।” प्रणाम कर दोनों यक्ष वहाँ से चले गए।

दोनों विशाल यमलार्जुन वृक्षों के गिरने से बहुत जोर की आवाज हुई थी। सभी गोप-गोपियाँ, यशोदा, नंद दौड़ पड़े कि हुआ क्या? क्या फिर कोई नई विपत्ति आ गई है! उन्होंने देखा कि इतने प्राचीन विशाल वृक्ष गिरे हुए हैं और कन्हैया ओखली से बँधा उन दोनों वृक्षों के बीच फँसा हुआ है। नंदजी हाय-हाय करते दौड़े और तुरंत कृष्ण को गोद में उठा लिया। उनके आँसू गिरने लगे। कहने लगे, “भगवान् की ही कृपा है कि इन पर्वताकार वृक्षों के नीचे हमारा कन्हैया दब नहीं गया!” नंद को गर्गाचार्यजी के वचनों का समरण हुआ—‘यह साधारण बालक नहीं है!’

कुछ गोप बालक कह रहे थे, इन वृक्षों से दो दिव्य पुरुष निकले थे। कन्हैया को हाथ जोड़कर उन्होंने परिक्रमा की और उत्तर दिशा की ओर चले गए।

नंद ने कृष्ण को हृदय से चिपका लिया।

कृष्ण-बलराम इसी प्रकार बाल-लीला करते हुए बढ़ रहे थे। कभी घर से अनाज निकालकर फलवाली को देकर फल खरीद लेना तो कभी नाचते-गाते गोपियों-गवालों के साथ घूमते रहना। अपने भक्तों के बस में होकर भगवान् अपनी लीलाओं से सारे ब्रज को मुग्ध कर रहे थे। कभी-कभी वे दोनों बालक खेलते-खेलते यमुना-तट पर दूर निकल जाते। तब उनकी माताएँ उनको ‘कृष्ण-कृष्ण’, ‘राम-राम’ पुकारकर कहतीं—“तुम्हारे बाबा भोजन के लिए बैठे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जल्दी आ जाओ?” माँ उन्हें पकड़कर लातीं! नहला-धुलाकर काले टीके का डिठौना लगातीं और नंद के साथ भोजने के लिए बैठातीं। यह नित्य-लीला चलती ही रहती थी।

इधर नए-नए उपद्रव भी होते रहते थे। नंद को हर दिन चिंता रहती थी—न जाने कौन सी विपत्ति कब आ जाए! सबने मिलकर विचार किया कि हम सबको यह स्थान छोड़ देना चाहिए। पास ही एक उत्तम वन था—वृंदावन। वह सदैव हरा-भरा रहता है। वहाँ हमारे राम-श्याम भी सुखी रहेंगे। सभी ब्रजवासियों ने समर्थन किया। लोग अपने-अपने छकड़ों और रथों पर घर का सामान लादकर, गोधन आगे करके वृंदावन के लिए चल पड़े। रोहिणी और यशोदा मैया भी अपने प्यारे लाला बलदाऊ एवं कन्हैया को गोद में लेकर एक छकड़े में बैठीं। गृह-सामग्री तथा गाय-बछड़ों के साथ वे भी वृंदावन के लिए चल पड़ीं। वहाँ पहुँचकर गोवर्धन पर्वत के निकट सभी ने रहने के लिए अपना-अपना स्थान बनाया। कृष्ण-बलराम वहाँ भी अपनी क्रीड़ाओं से ब्रजवासियों को सम्मोहित करते रहे। बाल सखाओं के झुंड बनाकर गलियों में, वन में, यमुनाजी की रेत में, यहाँ-वहाँ अपनी विविध प्रकार की क्रीड़ाओं से कभी बांसुरी बजाकर तो कभी कबड्डी खेलकर, कभी गुलेल से तो कभी गाय, बैल, मोर बनकर गाते-नाचते अपनी शैशव अवस्था को पार कर रहे थे।

## बकासुर का संहार

एक दिन वत्सासुर राक्षस कृष्ण-बलराम को मारने के इरादे से बछड़े का रूप धारण कर गाय-बछड़ों में घुस आया। श्रीकृष्ण-बलराम गायों को चरा रहे थे। झुंड में एक नया सुंदर बछड़ा आया देखकर श्रीकृष्ण असुर को पहचान गए। उन्होंने दाऊ को आँख से इशारा किया। दाऊ ने बछड़े के पैर पकड़कर ऊपर उठा लिया और घुमाकर उसे दूर उछाल दिया। बछड़ा बहुत दूर जाकर गिरा। गिरने के साथ ही उसने मृत्युपूर्व अपना दैत्यरूप धारण कर लिया। गवाले तो इसे शक्तिशाली मित्र का खेल ही समझ रहे थे और शाबाशी दे रहे थे अपने सखा को।

एक दिन कृष्ण-बलराम अपनी लकुटी लिये, काली कमरिया ओढ़े गौओं को चराने गए। यमुना के किनारे उन्होंने अपने गौ-बछड़ों को जल पिलाया, स्वयं भी पिया। देखा तो यमुना के तट पर एक बहुत बड़ा बगुला बैठा हुआ था। उसकी चोंच बड़ी तीक्ष्ण थी। वह बकासुर नामक राक्षस था और कृष्ण-बलराम को मार डालने के लिए बगुले के वेष में बैठा था। श्रीकृष्ण को देखते ही उसने झपटकर उन्हें चोंच में पकड़ लिया और निगल गया। बलदाऊ तथा

सभी ग्वाल-सखा कृष्ण के बगुले के पेट में चले जाने से मृतप्राय होकर गिर पड़े। श्रीकृष्ण ने बगुले के पेट में जाकर अपनी योगमाया से इतनी गरमी पैदा कर दी कि राक्षस ने घबराकर कृष्ण को उगल दिया। बाहर निकलते ही कन्हैया ने दोनों हाथों से चोंच पकड़कर बगुले का मुँह चीर डाला। मरने के पूर्व वह अपने दैत्यरूप में आ गया। श्रीकृष्ण को जीवित देखकर सभी गोप-ग्वाल खुश हो गए। दैत्य को मार डालने के साहसी कार्य की सभी बाल-सखाओं ने तालियाँ बजा-बजाकर शाबाशी दी। घर पहुँचकर, सभी ने वन में कृष्ण की वीरता यशोदा मैया को बताई। काल के गाल से बचकर आए अपने लाला को बार-बार हृदय से लगाकर यशोदा भगवान् की प्रार्थना करने लगीं।

## क्रीडास्थल

एक दिन बहुत सवेरे ही उठकर राम-श्याम अपनी लकुटी, काली कमरी तथा कलेवा लेकर गौओं को चराने के लिए चल पड़े। उनके सखा ग्वाल-बाल भी अपने-अपने घरों से निकलकर साथ-साथ चल दिए। रास्ते भर अठखेलियाँ करते रहे। किसीका सामान—कमरी या बाँसुरी एक से दूसरे के पास, दूसरे से तीसरे के पास उछाल-उछालकर, एक-दूसरे को चिढ़ाते, खेलते-कूदते वे वन को चले जा रहे थे। उसी समय कंस का भेजा हुआ अघासुर दैत्य अजगर का रूप लेकर वहाँ आया। वह बकासुर तथा पूतना राक्षसी का भाई था। अपने बहन-भाई का वध करनेवाले कृष्ण को मार डालने की प्रतिज्ञा करके ही वह वहाँ आया था। वह अजगर मुँह फाड़कर रास्ते में पड़ रहा। सब ग्वाल-सखाओं ने समझा—यह कोई गुफा है। मुँह के अंदर दाढ़ें पर्वत-शिखरों के समान दिखाई दे रही थीं। वे खेलते-कूदते अजगर के मुँह के पास पहुँचे। साँस की गरमी उनको महसूस हुई, तभी अघासुर ने जोर से साँस खींची। सारे ग्वाल-बाल उसके मुँह में चले गए। कृष्ण ने देखा कि यह तो मेरे सब प्रिय सखाओं को ही निगल गया। अजगर ने श्रीकृष्ण को भी निगलने के लिए मुँह खुला ही रखा था। अपने सखाओं को बचाकर लाने के लिए कृष्ण ने भी अघासुर के मुँह में प्रवेश किया। अजगर ने कृष्ण के अंदर जाते ही मुँह बंद कर लिया। फिर उसने ग्वाल-बाल, गौ-बछड़ों व श्रीकृष्ण—सभी को चबाने के लिए जबड़ों से हरकत की। भगवान् कृष्ण ने अपने-आपको इतने विशाल रूप में बढ़ा लिया कि अजगर का साँस ही रुक गया। उसके कंठ में भगवान् ने शरीर फँसा लिया था। अघासुर तड़पा, छटपटाया और प्राणहीन होकर पड़ रहा। उसमें से एक ज्योति निकली, जिसने दिशाओं को आलोकित कर दिया। जब श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ उसके मुँह से बाहर निकले तब वह ज्योति भगवान् श्रीकृष्ण में समा गई।

## रहस्य भरा एक वर्ष

श्रीकृष्ण ने जब अघासुर को मारा था, तब वे मात्र पाँच वर्ष के थे, किंतु ग्वाल-बालों ने घर लौटकर जब यह घटना बताई तब वे छह वर्ष के हो चुके थे! आश्चर्य की बात है कि पूरे एक वर्ष का समय क्यों लगा? यह कथा बड़ी रहस्य भरी है। जब श्रीकृष्ण अपने बाल-सखाओं के साथ यमुना तट पर सुंदर वन में पहुँचे तो सखाओं ने सोचा कि यहीं पर बैठकर कलेवा कर लिया जाए। सबने अपना-अपना कलेवा खोल लिया। कोई पत्तल में, कोई हाथ में तो कोई छींके में ही अपना कलेवा खाने लगा। श्रीकृष्ण तो लीला कर ही रहे थे। सब अपना-अपना कलेवा 'अति उत्तम' कहकर एक-दूसरे को चखा रहे थे। किसीके हाथ में दही-भात लगा था तो कोई मक्खन से सनी उँगलियाँ चाटे जा रहा था। बहुत ही आनंदमय था वह दृश्य। ब्रह्मा भी इस दृश्य को देखने लगे। वे अपने आराध्य के साथ इस लीला का आनंद लेने का लोभ-संवरण नहीं कर सके। कृष्ण के साथ कलेवा खाने में मस्त ग्वाल-बालों को पता ही नहीं चला कि गौ-बछड़े दूर निकल गए हैं। जब उन्हें ध्यान आया तो कन्हैया से कहने लगे,

“कन्हैया, तेरी मुरली, तेरे नटखटपन और तेरे दूध-दही-मक्खन के चटकारे में हम सबकुछ भूलकर इतना तल्लीन हो जाते हैं कि पता ही नहीं चलता—हम कुछ अलग भी हैं! सखाओं के वचन एवं उनकी भावनाओं को देखकर कृष्ण दही-भात में सनी उँगलियाँ चाटते हुए अकेले ही गौओं को ढूँढ़ने निकले। देखते-ढूँढ़ते वे काफी दूर निकल गए। यह ब्रह्मा की करतूत थी। उन्होंने गौ-बछड़ों को एक गुफा में ले जाकर छिपा दिया था। जब भगवान् उन्हें ढूँढ़ने निकले तो उधर जाकर ग्वाल-बालों को भी अचेत करके गुफा में छिपा दिया। श्रीकृष्ण ने अंतर्दृष्टि से देखा और ब्रह्माजी की इस माया को वे समझ गए। हँसकर उन्होंने अपने ही अंश से सभी गौओं, बछड़ों तथा ग्वाल-बालों का रूप धारण कर लिया। नई रचना ही रच दी—गौएँ-बछड़े वैसे ही बना दिए, ग्वाल-बाल भी वही बन गए और सब संध्या को नित्यानुसार अपने घर पहुँच गए। गायों ने बछड़ों को तथा गोपियों ने अपने लाड़लों को दुग्धपान कराया। मान-प्रेम से भोजन खिलाया, लाड़-प्यार किया। किसीको कहीं भिन्नता का आभास तक नहीं हुआ। एक बात और भी हुई कि गोपियों को अपने-अपने पुत्रों के प्रति अधिक ही प्रेम बढ़ता गया। उनके स्पर्श से वे भाव-विभोर होने लगीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि गोपियों की कृष्णभक्ति की बराबरी नहीं की जा सकती। कृष्ण के प्रति उनका अनुराग अवर्णनीय एवं अनुपम था। एक वर्ष तक श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने अंश की रचना को यथावत् रखा। वही क्रीड़ाएँ और अठखेलियाँ करते-करते यह समय कब निकल गया, किसीको पता नहीं चला। बछड़ों तथा ग्वालों के प्रति ब्रजवासियों का बढ़ता प्रेम देखकर बलदाऊ को एक दिन शंका हो गई। वे चिंता में पड़ गए कि यह किसकी माया है! किसी देवता की या असुर की? उन्होंने योग दृष्टि से देखा तब उन्हें सारा ब्रज कृष्णमय दिखाई दिया। सब ग्वाल-बाल, गौ-बछड़े कृष्ण-ही-कृष्ण दिखाई दिए। बलदाऊ ने श्रीकृष्ण से पूछा, “नारायण, यह क्या लीला है? जहाँ देखो वहाँ आप-ही-आप नजर आ रहे हैं। आपने मुझे भी भ्रमित कर दिया है। भगवान्, आपकी माया आप ही जानें।” तब श्रीकृष्ण ने बलदाऊ को ब्रह्माजी की करतूत कह सुनाई।

पूरा वर्ष बीत गया, लेकिन ब्रजवासियों को कोई परेशानी नहीं हुई। ब्रह्माजी ने देखा तो उनको सब ग्वाल-बाल, गौएँ आदि अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने नित्य कर्म में लगे हुए दिखाई दिए। कहाँ ब्रह्माजी भगवान् को ठगने चले थे और कहाँ स्वयं ठगे से रह गए! सभी ग्वाल-बाल, गौ-बछड़े चतुर्भुज रूप में पीतांबर पहने, शंख-चक्र-गदाधारी, मुकुट, कौस्तुभ मणि एवं दिव्य आभूषणों से युक्त साक्षात् श्रीकृष्ण के हजारों रूप दिखाई दे रहे थे। ब्रह्माजी चकित रह गए कि इतने श्रीकृष्ण कैसे हैं! पुनः आँखें बंद करके खोलने का उपक्रम करते तो वे कभी ग्वाल-बाल और कभी श्रीकृष्ण दिखाई देते। ब्रह्मा, शंकर, इंद्र आदि देवता उनकी आराधना कर रहे हैं। ब्रह्माजी विह्वल हो गए। आँख मूँदकर श्रीहरि का ध्यान करने लगे। ब्रजवासियों एवं वृंदावन का वह दृश्य वे श्रीहरि में देख रहे थे। वे भगवान् से विनती करने लगे, “प्रभु, अपनी माया से मुझे बाहर निकालो। मैं इस दिव्य धाम वृंदावन में आपके दर्शन करना चाहता हूँ।”

तब श्रीकृष्ण दही-भातवाले हाथ चाटते, भागते, खोजते हुए दिखाई दिए। ब्रह्माजी अपने वाहन हंस से नीचे उतर आए। उन्होंने प्रभु को साष्टांग प्रणाम किया और विनय भाव से सिर झुकाकर खड़े हो गए। उन्होंने भगवान् के गोपालस्वरूप में अपना अनुराग व्यक्त किया और कहा, “भगवान्, मैं, शंकरजी तथा अन्य योगीजन भी समाधि द्वारा आपके श्रीविग्रह की महिमा नहीं जान सके। आपकी शुद्ध भक्ति से आपके स्वरूप को जान लेनेवाले ही उत्तम मार्ग से आपके पद को प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञान-वैराग्य द्वारा आपकी प्राप्ति बहुत कठिन है।” ब्रह्मा ने श्रीहरि की परिक्रमा की और अपने लोक को चले गए।

एक वर्ष पूरा हुआ। श्रीकृष्ण दही-भात सने हाथ से वापस आए तो ग्वाल-बालों को वहीं पर बैठे देखा। सखाओं ने कहा, “कन्हैया देख, हमने एक कौर भी तेरे बिना नहीं खाया है। आओ, अब कलेवा कर लो।” सभी ने बैठकर

कलेवा किया। शाम ढलने पर सभी परस्पर खेलते-कूदते ब्रज की ओर चल पड़े। ग्वाल-बाल अपने घर पहुँचे तो उन्होंने अघासुर वध की कथा अपने-अपने माता-पिता को सुनाई। एक वर्ष का रहस्य, रहस्य ही रहा।

## धेनुकासुर वध

छठा वर्ष लग गया तो श्रीकृष्ण और बलराम अब नित्य गाय चराने जाने लगे। एक दिन दाऊ के साथ कन्हैया ने वृंदावन के उस भाग में प्रवेश किया जहाँ खूब मीठे-मीठे, सुंदर फलों से लदे वृक्ष थे। आगे-आगे बलदाऊ उनके पीछे कृष्ण कन्हैया और पीछे-पीछे ग्वाल-सखा तथा उनके भी पीछे गौ-बछड़े। सब खेलकूद में मग्न होकर वन में घूम रहे थे। वहाँ स्वच्छ जल का एक सरोवर था। इस मनोहर दृश्य को देखकर कृष्ण का मन मचल गया। क्रीड़ा करने की इच्छा से कन्हैया ने बड़े भाई से कहा, “दाऊ, यों तो आपके चरणों में सभी देवता सिर झुकाते हैं, लेकिन वन के ये वृक्ष-लताएँ भी आपके चरणों में झुक-झुककर पल्लव-पुष्प अर्पण कर रहे हैं। ये दिव्य वृक्षों की ओट में खड़े होकर मानो योगीजन, गुरुजन भी आपके चरणों में झुक रहे हैं। आपने अपने स्पर्श से उन्हें कृतकृत्य कर दिया है। वृंदावन की शोभा देखकर मैं मंत्रमुग्ध हो गया हूँ।”

राम और श्याम के एक प्रिय सखा थे—श्रीदामा। श्रीदामा ने एक दिन राम-श्याम से कहा, “भैया, यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर एक तालवन है। वहाँ बड़े मीठे फल लगे रहते हैं। पके-पके फल पृथ्वी पर ढेरों गिरे मिलते हैं। धेनुकासुर नाम का एक राक्षस उस जगह की रखवाली करता है। उसके साथ और भी राक्षस हैं। उनके भय से वहाँ कोई नहीं जाता। वहाँ के मीठे फलों की सुगंध यहाँ तक आ रही है। लेकिन उस राक्षस के भय से वहाँ पहुँचना संभव नहीं है। दाऊ, वहाँ चलिए। मीठे-मीठे फल खाने को मन ललचा रहा है।”

श्रीदामा की यह बात सुनकर दाऊ और कन्हैया दोनों ही हँस पड़े और बोले, “चलो, वहीं चलते हैं।” दाऊ और कन्हैया बाल सखाओं के साथ तालवन में पहुँचे और वृक्षों को हिला-हिलाकर फल गिराने लगे। ग्वाल-बाल दौड़-दौड़कर फल उठाने लगे। इतने में फलों के गिरने तथा वृक्षों के हिलने से पत्तों की खड़खड़ाहट सुनकर बलवान् धेनुकासुर राक्षस वहाँ आ पहुँचा। गधे के रूप में दाऊ के सामने आकर उसने जोर-जोर से रेंकना शुरू किया। उसने उछलकर दाऊ की छाती में दुलत्ती मारी। वह पुनः दुलत्ती झाड़ने जा ही रहा था कि बलदाऊ ने बाएँ हाथ से ही उस असुर की दोनों पिछली टाँगें पकड़कर उसे आकाश में घुमाया और ताड़ के वृक्ष पर दे मारा। घुमाने पर ही उस गधे के प्राण निकल गए थे। उसके गिरने से एक-दूसरे से सटे कई वृक्ष गिर पड़े। बलदाऊ ने खेल-खेल में ही धेनुकासुर का वध कर दिया। धेनुकासुर के भाई-बंधु क्रोध में आकर दाऊ और कृष्ण पर टूट पड़े। दाऊ और कन्हैया ने उन सभी की टाँगें पकड़-पकड़कर वृक्षों पर दे मारने का खेल शुरू कर दिया। सभी दैत्यों का वध हो जाने से वह सुंदरवन लोगों के लिए निर्भय होकर घूमने-फिरने का स्थान बन गया। झुटपुटा होता देख, कृष्ण-बलराम सभी सखाओं एवं गौओं को लेकर अपने-अपने घरों की ओर लौटे। माताओं ने अपने लाड़लों को स्नान कराकर बड़े लाड़-प्यार से भोजन कराया और सुख-शय्या पर सुलाया। दोनों भाई भी आराम से सो गए।

एक दिन कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ यमुना तट पर गए। उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे। ज्येष्ठ-आषाढ़ मास की गरमी थी। गौएँ और सखा ग्वाले प्यास से पीड़ित हो रहे थे। उन्होंने यमुनाजी का जल पी लिया। वह जल विषैला था। पीते ही सभी प्राणहीन होकर यमुना तट पर गिर पड़े। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी अमृतवर्षावाली दृष्टि से उनकी ओर देखकर सबको जीवित कर दिया। उनमें चेतना आ गई। वे उठकर बैठ गए और एक-दूसरे को चकित होकर देखने लगे।

भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि यमुना जल को कालिया नाग ने दूषित कर रखा है। जल विष बन गया है। उस विष से आसपास का वातावरण भी विषैला बन गया है। जीव-जंतु, ऊपर से उड़नेवाले पक्षी, वृक्ष तथा लताएँ तक विष

के प्रभाव से मर जाते हैं। वहाँ की वायु का स्पर्श अथवा साँस लेना तक घातक है। तब कृष्ण ने कमर में दुपट्टा कस लिया। पीतांबर की कसकर लाँग बाँधी और छलाँग लगाकर यमुना तट पर खड़े विशाल कदंब के वृक्ष पर चढ़ गए। उसकी एक भारी-भरकम शाखा यमुना जल के ऊपर पसरी थी।

यमुना जल में कालिया नाग का कुंड था। उसका जल विष की गरमी से खौल रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण वृक्ष की शाखा से कुंड में कूद पड़े। जल में विष के कारण लाल-पीली तरंगें दिखाई दे रही थीं। कृष्ण की छलाँग ने पानी को और भी उछाल दिया। कृष्ण के जोर-जोर से हाथ-पाँव मारने से भयंकर आवाजें आने लगीं। इधर भगवान् जलक्रीड़ा कर रहे थे, उधर कालिया नाग गर्जन-तर्जन करता, फुफकारता, जोर-शोर से सिर-पूँछ पटकता हुआ सामने आ गया। उसने देखा—एक साँवला-सलोना बालक सामने खड़ा है। कालिया नाग आँखें गड़ाकर जहरीली दृष्टि से कृष्ण के सुंदर रूप को देखता रहा। उसने कृष्ण को निर्भय होकर विषैले जल में मौज-मस्ती से खेलते देखा तो अत्यंत क्रोधित होकर झपटा। उसने श्रीकृष्ण के शरीर को जकड़ लिया। भगवान् नागपाश में बँधकर अचेत हो गए। ग्वाल-बालों ने यह देखा तो भय के मारे कृष्ण-प्रेम में दुःख से दग्ध होकर मूर्छित हो गए। गौएँ-बछड़े दुःख से हँकारने लगे और श्रीकृष्ण की ओर टकटकी लगाकर आतंकित से खड़े रह गए।

## कालिया मर्दन

उस समय पृथ्वी, आकाश और प्राणीमात्र के शरीरों में भयंकर उत्पात होने लगे, मानो प्रकृति किसी अशुभ घटना की सूचना दे रही हो। नंद एवं यशोदा ने सोचा—इस अपशकुन का अर्थ है कि अवश्य कोई भारी विपत्ति आनेवाली है! उन्होंने देखा, आज कृष्ण बलदाऊ के बिना अकेला ही गया है। तब वे भय से ज्यादा व्याकुल हुए। कृष्ण-प्रेम में वे भूल गए कि उनका कन्हैया भगवान् का अवतार है! भोले-भाले माता-पिता के मन में आ रहा था कि आज अवश्य कन्हैया विपत्ति में पड़ गया है। व्रज के लोगों का स्वभाव गायों जैसा वात्सल्यपूर्ण था। नंद बाबा और यशोदा मैया के साथ सभी व्रजवासी भी विकल हो गए। कृष्ण को देखने की उत्कट लालसा से वे सब घरों से निकल पड़े। बलराम तो भगवान् की शक्ति एवं स्वरूप को जानते थे, लेकिन व्रजवासियों की आतुरता देखकर वे चुप ही रहे। दाऊ भी व्रजवासियों के साथ कृष्ण को ढूँढ़ने लगे। मार्ग में जहाँ-जहाँ कृष्ण के चरणचिह्न दिखाई दे रहे थे, उनमें कमल-अंकुश आदि अंकित देखकर उन्हें मार्ग की पहचान होती जा रही थी। वे उसीके सहारे-सहारे यमुना तट पर पहुँच गए। दूर से ही सबने देखा कि श्रीकृष्ण नागपाश में बँधे अचेत पड़े हुए हैं। किनारे पर ग्वाल-बाल भी मूर्छित पड़े हैं। गाय-बछड़े आर्तस्वर से हँबर रहे हैं। यह देख व्रजवासी अति व्याकुल हो पीड़ा से अचेत हो गए। गोपियों की पीड़ा तो अपार थी। उनको उस काले नाग पर इतना क्रोध था कि मूर्छा या अचेतना भी उनके पास नहीं फटक रही थी। यशोदा तो अपने लाड़ले के पीछे यमुना में कूदने जा रही थीं। गोपियों ने उन्हें पकड़ रखा था। कृष्ण-वियोग में उनका विलाप, नंद बाबा की कातरता मर्मभेदी थी। आखिर में बलदाऊ ने ही बलपूर्वक या समझा-बुझाकर अथवा हृदय से लगाकर उन सबको सांत्वना दी। इधर कृष्ण ने अपनी लीला से सबको अति दुःखी देखा तो वे नागपाश से निकलने का उपक्रम किया। कृष्ण ने अपने शरीर को फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे नाग का शरीर टूटने लगा। वह फन ऊपर उठाकर अलग खड़ा हो गया और फुफकारें मारने लगा। कालिया नाग अपनी दोहरी जीभ लपलपाकर अपने होंठों के किनारे चाटने लगा। वह आँखों से विष की ज्वाला उगलता जा रहा था। भगवान् कृष्ण भी उसकी ओर टकटकी लगाए देखते जा रहे थे और पैतरा बदलकर उसपर वार करते जा रहे थे। नाग भी दौँव देखकर उनपर चोट करता जा रहा था। इस पैतरेबाजी में नाग की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। तब श्रीकृष्ण ने नाग के फनों को दबा लिया और उछलकर उसपर सवार हो गए। श्रीकृष्ण तो नाचने-गाने में प्रवीण थे ही। उन्होंने वहाँ भी नृत्य करना आरंभ कर दिया। नाग जो भी फन ऊपर उठाता, उसी पर श्रीकृष्ण के चरण से



दबाव पड़ता। आकाश से सिद्ध-चारण, गंधर्वों ने भी कालिया-मर्दन की इस लीला को देखा। नृत्य करते-करते श्रीकृष्ण ने नाग के एक सौ सिरों को कुचल दिया। कालिया नाग शक्तिहीन हो गया। उसके नथुनों से रक्त की धारा बहने लगी। वह चक्कर काटने लगा और अचेत हो गया। फिर भी थोड़ी सी चेतना आते ही वह अपना विष उगलता और फुफकार छोड़ने लगता था। लेकिन वह सब अंतिम चेष्टाएँ ही थीं। कालिया का अंग-अंग चूर-चूर हो गया था। वह मन-ही-मन भगवान् की शरण में गया। नाग-पत्नियाँ अपने पति के क्षत-विक्षत शरीर को देखकर शोकतप्त हो गईं। उन्होंने पृथ्वी पर लेटकर भगवान् के हाथ जोड़े और प्रार्थना की—“आपने हमारे अपराधी पति को दंड दे दिया है, अब छोड़ दें! आपने इसके पूर्वजन्म और इस जन्म के पापों का दंड इसे दे दिया है। इसने अवश्य ही कोई धर्म का भी काम किया होगा, जिससे आपके चरणों का कृपा-प्रसाद इसको मिला है। हमारे ऊपर भी आपने बहुत बड़ा अनुग्रह किया है।”

श्रीकृष्ण की ठोकरों से नाग का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। नाग-पत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने दया करके नाग को छोड़ दिया। धीरे-धीरे कालिया नाग में चेतना आने लगी। थोड़ी देर बाद उसे थोड़ा सा बोध हुआ तो उसने हाथ जोड़कर कहा, “हे परमात्मा, हम जन्म से ही दुष्ट एवं तमोगुणी जीव हैं। हमारा स्वभाव ही दुष्ट एवं क्रोधी है। हम जीवों के लिए अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है। जन्मजात स्वभाव एवं आपकी माया के कारण हमने जो अपराध किया है उसका दंड आप जैसा उचित समझें दें।” तब श्रीकृष्ण ने कहा, “नागदेव, तुम अपने संपूर्ण कुटुंब को लेकर यहाँ से दूर समुद्र में चले जाओ। अब यमुनाजी का यह जल जीवमात्र के उपयोग करने के लिए होगा।” श्रीकृष्ण की बात को मानकर कालिया नाग ने अपने संपूर्ण वंश के साथ भगवान् कृष्ण की परिक्रमा करके प्रणाम किया और वहाँ से रमणीक द्वीप के लिए चल दिया। यमुना जल केवल विषहीन ही नहीं हुआ, अपितु अमृत के समान मधुर हो गया।

प्राचीन कथा है—गरुड़ की माता विनता और सर्पों की माता कद्रू में परस्पर वैर था। माता के वैर को ध्यान में रखकर, गरुड़ जो भी सर्प मिलता उसे खा जाते थे। इससे सर्पों में व्याकुलता फैल गई। उन्होंने ब्रह्मा से प्रार्थना की। तब ब्रह्मा ने एक नियम बना दिया कि प्रत्येक सर्प-परिवार गरुड़ को बलि दिया करे। कद्रू का पुत्र कालिया नाग अपने विष एवं बल के घमंड से मतवाला हो गया था। अपने परिवार से बलि देना तो दूर रहा, अन्य सर्प जो भी बलि ले जाते थे, उसे भी खा जाता था। यह देखकर गरुड़ को बहुत क्रोध आया। उन्होंने कालिया नाग का नाश करने हेतु जोर से पंख फड़फड़ाए और आक्रमण कर दिया। कालिया वहाँ से भागकर इस सुरक्षित स्थान पर छिप गया। उसे मालूम था कि गरुड़ सौभरि ऋषि के शाप के कारण कालिंदी के तट पर बने इस गहरे कुंड तक नहीं पहुँच सकते। गरुड़ ने एक समय भूख के कारण उस कुंड में रहनेवाले मत्स्यराज को खा लिया था। उस मत्स्यराज के बंधु-बंधव एवं मछलियाँ व्याकुल होकर क्रंदन करने लगे। महर्षि सौभरि को इन पर दया आ गई। उन्होंने गरुड़ को शाप दे दिया कि अब तुम कभी इस स्थान पर प्रवेश नहीं कर सकोगे। यहाँ आते ही तुम्हारे प्राण निकल जाएँगे। इस शाप को कालिया नाग जानता था। अतः उसने उसी कुंड में शरण ले ली थी। अब भगवान् कृष्ण ने उस स्थान को कालिया नाग से निर्भय कर दिया और वहाँ से उसे रमणीक द्वीप में भेज दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण कुंड से बाहर निकले। नाग-पत्नियों एवं नाग द्वारा अर्पित सुंदर मणि-रत्नों से आभूषित होकर प्रसन्न मुद्रा में अपने माता-पिता एवं सखाओं के पास खड़े हुए कृष्ण को सकुशल देखकर सब भाव-विभोर हो गए। बलदाऊ ने कृष्ण को आलिंगन में भर लिया। सारा वातावरण प्रफुल्लित हो गया। नंद बाबा एवं यशोदा मैया ने सोचा—आज रात यहीं पर विश्राम करें। सभी यमुना-पुलिन पर विश्राम करने के लिए स्थान ढूँढ़कर सो गए। ज्येष्ठ-आषाढ़ की धूप से वन सूख गया था। सहसा दावानल का प्रकोप हुआ और चारों ओर आग फैलने लगी।

ब्रजवासियों के आसपास भी प्रचंड लपटें उठने लगीं। ताप से घबराकर सब उठ बैठे और देखा—भयंकर आग से कुछ ही क्षण में सब जलकर भस्म हो जाएँगे! तो सबका ध्यान कृष्ण-बलराम की ओर केंद्रित हो गया। वे प्रार्थना करने लगे, “हे कृष्ण, अब हमारी रक्षा आप ही करो!”

श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरे स्वजन बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं तो मुँह खोलकर संपूर्ण दावानल को पी गए। संभवतः त्रेतायुग में रामावतार के समय जानकीजी की रक्षा करके अग्निदेव ने भगवान् राम पर उपकार किया था। उस उपकार का बदला कृष्णावतार में अग्नि को पीकर श्रीहरि ने चुका दिया था।

कालिया नाग का मर्दन तथा दावाग्नि का पान—इन अद्भुत घटनाओं के बाद श्रीकृष्ण, बलराम उनकी माताएँ, नंद बाबा तथा सब ब्रजवासी अपने सुंदर, सदाबहार वसंत ऋतु के स्थायी निवास वृंदावन में आ गए। वृंदावन की अद्भुत शोभा थी। वहाँ की वायु सुगंधित थी। नदियों तथा सरोवरों में अगाध निर्मल जल भरा रहता था। सूर्य की तीखी किरणें भी वहाँ की हरीभरी घास को सुखा नहीं पाती थीं।

## प्रलंबासुर वध

एक दिन कृष्ण-बलराम ग्वाल-बालों के साथ गौओं को चराने वन में गए। वहाँ पर प्रलंब नाम का एक असुर ग्वाले के वेष में कपट से आ गया। श्रीकृष्ण-बलराम ने उसे पहचान लिया, लेकिन ऊपर से मित्र-भाव का व्यवहार रखा। एक खुली जगह पर सबने मिलकर एक नया खेल आरंभ किया। सभी साथियों को अलग हिस्सों में बाँट लिया। एक दल के नायक कृष्ण और दूसरे दल के नायक बलराम बने। कृष्ण के दल में वह राक्षस भी आ गया। खेल का स्वरूप यह था कि एक दल का एक सखा दूसरे दल के एक सखा को पीठ पर बैठाकर एक निश्चित वृक्ष तक ले जाता था। इस खेल में जीतनेवाला दल पीठ पर बैठ जाता था। हारनेवाला उसे पीठ पर लादकर ले जाता था। इस खेल में बलराम जीत गए। कृष्ण दल के एक सखा को बलराम को पीठ पर लादकर वृक्ष तक ले जाना था। प्रलंबासुर की बारी थी। उसने बलराम को पीठ पर चढ़ाया और उन्हें लेकर वृक्ष से भी आगे निकल गया। वह सोचने लगा—‘अब बलराम को लेकर भाग जाना चाहिए और उन्हें मार डालना चाहिए।’ बलराम समझ गए। सहसा उनका भार बढ़ने लगा। असुर उस भार को वहन नहीं कर सका। हारकर उसने अपना विशाल रूप धारण कर लिया। बलराम ने देखा कि यह असुर तो अब आकाश मार्ग से मुझे ले जा रहा है तो एक जोरदार घूँसा उसके मस्तक पर मारा। घूँसा लगते ही असुर का सिर लहूलुहान हो गया। वह मुँह से खून उगलने लगा और भयंकर चीत्कार के साथ प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बलराम ने प्रलंबासुर को मार डाला। यह देखकर सभी सखा खुशी से झूम उठे।

विपत्तियों का क्रम चलता ही रहा। एक दिन कृष्ण और ग्वाल-बाल गौ-बछड़े आदि चराने गए थे तो गरमी से व्याकुल होकर वे थोड़ी दूरी पर सरकंडों के वन में घुस गए। ग्वाल-बाल अपने पशुओं को वहाँ न देखकर परेशान हो गए। वे श्रीकृष्ण से बोले, “कन्हैया, दूँदो हमारी गौओं को, कहाँ गई?”

कृष्ण उन्हें पुकारते-पुकारते सरकंडों के जंगल तक पहुँच गए। श्रीकृष्ण ने गौओं का नाम ले-लेकर पुकारना शुरू किया। वन में से गौओं की ध्वनि भी सुनाई पड़ी। गौओं की हुँकार एवं रँभाने से ग्वाल-बालों को प्रसन्नता हुई। उसी समय एक अद्भुत घटना हो गई—वन में दावाग्नि लग गई और जोर से आँधी भी चल पड़ी। प्रचंड अग्नि ने अपना विकराल स्वरूप वन में फैला दिया। ग्वाले अग्नि का भीषण स्वरूप देखकर भयभीत होते हुए श्रीकृष्ण की शरण में आए और अपनी तथा गौओं की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। कृष्ण ने उन्हें सांत्वना दी और बोले, “डरो मत, अपनी-अपनी आँखें बंद कर लो।”

सबने आँखें बंद कर लीं। श्रीकृष्ण ने उस दावाग्नि को मुँह खोलकर पी लिया। स्वजनों तथा प्रिय गौओं को घोर

संकट से छुड़ाकर श्रीकृष्ण ने उन्हें आँखें खोलने को कहा। अपने-आपको तथा अपने पशुधन को दावानल से बचा देखकर ग्वाल-बाल चमत्कृत हुए। वे श्रीकृष्ण को देवता समझने लगे। सायंकाल कृष्ण ने ग्वाल-बालों के साथ गौओं को लेकर बाँसुरी बजाते हुए व्रज में प्रवेश किया।

व्रज में वर्षा ऋतु आई, जल बरसने से प्राणहीन-सी पृथ्वी में प्राणों का संचार हो गया! पृथ्वी पर जीव-ही-जीव रेंगते दिखने लगे। कीट-पतंगों आदि का जमघट लग गया। मोर, हंस, सारस आदि कुहकने लगे। बिजली कौंधने लगी, वर्षा ऋतु की यह शोभा वृंदावन में अभूतपूर्व रूप से छा गई। सर्वत्र आनंद-ही-आनंद छा गया था।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने के साथ शरद ऋतु आई। वायु मंद गति से बहने लगी। दिन के समय कड़ी धूप एवं रात्रि में शीतलता का अनुभव होने लगा। शरद ऋतु में गौएँ, हिरनियाँ, चिड़ियाँ, नारियाँ सभी ऋतुमती होकर प्रियतमों से मिलने को आतुर रहती हैं। सुहावनी शरद ऋतु में श्रीकृष्ण नटनागर अपनी वेणु बजाने लगे एवं मधुर स्वर से जड़-चेतन, सभी को मुग्ध करने लगे। बंशी की ध्वनि सुनते ही गोपियाँ सुध-बुध भूलकर श्रीकृष्ण में तल्लीन हो जातीं और मन-ही-मन श्रीकृष्ण की मोहिनी मूरत का आलिंगन करने लग जातीं। गोपियाँ आपस में अपने मनोभावों को प्रकट करतीं। कभी-कभी तो बंशी को सौतन समझकर उससे भी ईर्ष्या प्रकट करतीं।

## चीरहरण

शरद ऋतु के समाप्त होने पर हेमंत ऋतु आई। व्रज-कुमारियों ने मार्गशीष मास में कात्यायनी देवी का व्रत करने का निर्णय किया। वे रोज प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही यमुनाजी में स्नान करके आतीं, नित्य माँ भद्रकाली की नियमपूर्वक पूजा करतीं और प्रार्थना करतीं कि भगवान् श्यामसुंदर हमारे पति हों! बालाएँ नित्य अपनी सखियों के साथ कृष्णगान करती हुई स्नान करतीं और कालका की मूर्ति बनाकर, उनकी पूजा करके कृष्ण-प्रेम में विभोर हो घर लौटतीं। वे व्रत में मात्र हविष्य अन्न ही खातीं।

एक दिन सवेरे व्रजबालाएँ अपने-अपने वस्त्र उतारकर यमुना में स्नान एवं जलक्रीड़ा करने लगीं। कृष्ण भगवान् ने अपने सखाओं के साथ वहाँ आकर उनके वस्त्रों को चुपचाप उठा लिया और कदंब के वृक्ष पर चढ़कर बैठ गए। व्रजबालाएँ स्नान करके जब बाहर निकलने लगीं तो वस्त्र नहीं मिले। वे सब ओर देखने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने पेड़ के ऊपर से कहा, “सुंदरियो, तुम्हारे वस्त्र यहाँ हैं, आकर ले जाओ।” व्रजबालाएँ नग्न थीं। वे कंठ तक जल में खड़ी-खड़ी ठिठुरती हुई श्रीकृष्ण से अनुनय-विनय करने लगीं। लेकिन कृष्ण ने उन्हें प्रेमपूर्ण वाणी में समझाया कि मैं ही तुम्हारा स्वामी हूँ, अतः लज्जा छोड़कर आ जाओ और अपने वस्त्र ले जाओ। सभी ने अपने गुप्त अंगों को हाथों से छिपाते हुए, नीची दृष्टि किए पेड़ के नीचे आकर वस्त्रों की याचना की। कृष्ण तो रसिया थे ही और व्रजबालाओं ने भी श्यामसुंदर पति-प्राप्ति के लिए व्रत किया था। उसकी पूर्ति श्रीकृष्ण को करनी ही थी।

कृष्ण ने कहा, “सुंदरियो, तुमने नग्न होकर जल में स्नान किया है। अतः वरुण देवता तथा यमुनाजी से अपराध किया है। अब तुम दोनों हाथ जोड़कर सूर्यदेव को प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगो।” प्रेम के वश में अपना सर्वस्व न्योछावर करनेवाली व्रजबालाओं ने दोनों हाथ जोड़कर सूर्यदेव को प्रणाम किया। फिर श्रीकृष्ण भगवान् को हाथ जोड़कर वस्त्र माँगने लगीं।

श्रीकृष्ण ने उनकी समस्त कामनाओं को तृप्त कर दिया। उनके वस्त्र उनको लौटा दिए। व्रजबालाओं एवं गोपियों ने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण भगवान् पर न्योछावर कर दिया था। उनकी प्रेमभक्ति को तो बड़े-बड़े योगी-ऋषि भी नहीं प्राप्त कर पाए।

उस समय श्रीकृष्ण की अवस्था मात्र नौ वर्ष की थी। गोपियाँ कृष्ण-प्रेम में मग्न होकर अपने-अपने घरों को लौट आईं।

## कृष्ण-बलराम को भूख लगी

श्रीकृष्ण-बलराम ने तो लीला करने के लिए ही व्रज में अवतार लिया था। एक दिन वन में गौएँ चराते-चराते उन्हें भूख लगी। कृष्ण ने दाऊ से कहा, “बलदाऊ, तुम तो बड़े शक्तिशाली हो। हमारी भूख का उपचार करो तो जानें!” बलदाऊ ने हँसकर कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने सुझाव दिया कि यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर मथुरिया ब्राह्मण आंगिरस नाम का यज्ञ कर रहे हैं। इन सखाओं को वहाँ भेजकर कुछ अन्न माँगकर लाने को कहो।

बलदाऊ ने अपने सखाओं से कहा, “जाओ, वहाँ जाकर कहना कि कृष्ण-बलराम को भूख लगी है, अतः भोजन दे दो।”

सखाओं ने यज्ञशाला में पहुँचकर ब्राह्मणों को कृष्ण-बलदाऊ की आज्ञा सुना दी। ब्राह्मणों ने उनकी उपेक्षा कर वहाँ से भगा दिया। वे ब्राह्मण-पत्नियों की तरफ गए। वे तो कृष्णभक्त थीं। कृष्ण लीला की कथा सुनती रहती थीं। जब उन्होंने सुना कि कृष्ण पास में ही आए हैं और भूखे हैं तो तत्काल उठीं और स्वादिष्ट भोजन के थाल सजा-सजाकर वे स्वयं भी सज-धजकर भगवान् के लिए भोजन लेकर चल पड़ीं। एक स्त्री को उसके पति ने जाने से रोक दिया तो उसने शरीर त्यागकर कृष्ण के पास शीघ्र पहुँचने का मार्ग निकाल लिया।

ब्राह्मण स्त्रियाँ भगवान् को भोजन करा रही थीं और उनकी भक्ति में लीन उनकी ओर निहार रही थीं। वे अज्ञानी ब्राह्मण अहंकार में भरे बैठे रहे। ब्राह्मण-पत्नियों से भोजन ग्रहण करके श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, “देवियो! तुमने हमको तृप्त किया है, तुम्हारी भक्ति-भावना का मैं आदर करता हूँ। अब तुम अपने घर लौट जाओ। तुम्हारे पति तुम्हारे बिना यज्ञ पूर्ण नहीं कर सकेंगे।”

ब्राह्मण स्त्रियाँ घर वापस जाने से डर रही थीं कि पति उनके साथ निष्ठुरता का व्यवहार करेंगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाते हुए कहा, “तुम मेरी भक्ति में लीन हो गई हो। तुम्हारा अब सम्मान ही होगा। तुमको शीघ्र ही मोक्ष-प्राप्ति भी होगी।”

ब्राह्मणों को जब ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण तो श्रीहरि नारायण के अवतार हैं तो पछताने लगे कि हम मूढ़, अज्ञानी भगवान् को नहीं पहचान पाए। हमसे तो हमारी स्त्रियाँ ही श्रेष्ठ हैं जिन्होंने प्रभु के दर्शन किए और चरण-स्पर्श करके मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग सुनिश्चित कर लिया। ब्राह्मणों ने अपनी पत्नियों का खूब मान किया। कंस के डर से वे ब्राह्मण इच्छा होते हुए भी श्रीकृष्ण के दर्शन करने नहीं गए।

## गोवर्धन पूजा

इंद्र को अपने पद का बड़ा धमंड हो गया था। ऐश्वर्य एवं धन का घमंड ही मनुष्य की बुद्धि का नाश करनेवाला होता है। देवता लोगों में तो कम-से-कम इस प्रकार का घमंड नहीं होना चाहिए। इंद्र की बुद्धि विनाश की ओर जा रही थी। भगवान् श्रीहरि ने कृष्णावतार में इंद्र को शिक्षा देने का निश्चय किया। व्रज में वर्षा के स्वामी इंद्रदेव की पूजा करने की परिपाटी थी। व्रजवासी बहुत ही जोर-शोर से यज्ञ की तैयारी करने में लगे थे। खूब मिष्ठान्न, यज्ञ-सामग्री, ब्राह्मणों के लिए दान-दक्षिणा, भरपूर दान हेतु अन्न-धन का संग्रह! यह सब देखकर श्रीकृष्ण ने नंद से पूछा, “बाबा, अब किस उत्सव की तैयारी हो रही है?”

नंद बाबा ने अपने बेटे को प्यार से समझाकर कहा, “लाला, मेघपति भगवान् इंद्र की प्रसन्नता के लिए यज्ञ किया करते हैं। इंद्र वर्षा के स्वामी हैं। उन्हींकी कृपा से प्राणीमात्र को तृप्त करनेवाला जल बरसता है। यह यज्ञ हमारी कुल-परंपरा से चला आया है।” कृष्ण भगवान् को तो इंद्र का घमंड भंग करना था। उन्होंने अपनी सात वर्ष की छोटी सी वय में बाबा को समझाया, “प्राणी अपने कर्मानुसार ही पैदा होता है। कर्म द्वारा ही पाप-पुण्य का

भागीदार बनता है और मर जाता है। क्या इंद्र देवता की पूजा के फल से उसके कर्म बदल जाते हैं? इंद्र की पूजा करने के बजाय हम सब वनवासी अपने पहाड़ों और वनों की पूजा क्यों न करें? जो हमारे हैं, बाबा! हम सब अपने गिरिराज की पूजा करेंगे। प्रदक्षिणा करेंगे और खूब बड़ा उत्सव मनाएँगे।” नंद बाबा तथा अन्य वृद्ध गोपों को श्रीकृष्ण की बातें युक्तिसंगत लगीं। सबने एक स्वर से कृष्ण की बात मानकर अपने-अपने छकड़ों में पूजा-सामग्री, अन्न एवं मिष्टान्न आदि रखा और गिरिराज की पूजा करने चल पड़े। खूब धूमधाम से हवन-पूजा, दान-दक्षिणा सब हो रहा था।

इंद्र को भयंकर क्रोध आया—मेरी पूजा न करके ब्रजवासियों ने मुझ इंद्र की उपेक्षा की है! उन्होंने अपने विशाल मेघों को आज्ञा दी—“ब्रज में इतना जल बरसाओ कि सबकुछ बह जाए। समस्त ब्रजवासी डूब जाएँ।”

पूजा संपन्न होते-होते वर्षा होने लगी। मूसलाधार वर्षा का भयंकर विकराल स्वरूप देखकर श्रीकृष्ण समझ गए कि इंद्र की दुर्बुद्धि का ही यह काम है। ब्रजवासी त्राहि-त्राहि करने लगे। नंद बाबा ने कहा, “अब कहाँ आश्रय लिया जाए? कृष्ण, अब तुम ही मार्ग ढूँढ़ो, हम सबको बचाना है।”

श्रीकृष्ण ने कहा, “मैं गिरिराज को उठाता हूँ, बाबा। आप सब अपने रथ-छकड़े, गौएँ-बछड़े एवं सामग्री सहित इस पर्वत के नीचे आश्रय ले लो।”

सबको श्रीकृष्ण पर विश्वास था। भगवान् ने सहज ही गोवर्धन पर्वत को उठा लिया और एक हाथ की सबसे छोटी उँगली पर पर्वत को स्थिर कर लिया। बलदाऊ तथा ग्वाल-बाल सखाओं ने भी अपनी-अपनी छोटी-बड़ी लाठियों से सहारा लगा दिया। श्रीकृष्ण मुसकराते रहे। सब ब्रजवासी उस पर्वत के नीचे बड़ी मौज-मस्ती से अपना सब सामान लेकर नृत्य-गान से भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते रहे। इंद्र ने लगातार मेघवृष्टि द्वारा सारे ब्रजमंडल को जलमग्न करना चाहा, लेकिन भगवान् की कृपा से गोवर्धन पर्वत पर तथा उसके आसपास जल की एक बूँद भी नहीं आई। सात दिन-रात भारी वर्षा होती रही। मेघों का जल समाप्त हो गया। इंद्र का क्रोध निष्फल हो गया।

गिरिराज गोवर्धन को एक उँगली पर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर इंद्र के ज्ञानचक्षु खुल गए। इंद्र को अब भान हुआ कि यह तो साक्षात् श्रीहरि ही हैं! उन्हें अपने अभिमान पर लज्जा आई। पश्चात्ताप स्वरूप अपने ऐरावत एवं कामधेनु को लेकर वे गोवर्धन पर तत्काल पहुँचे। इंद्र का ऐरावत आकाशगंगा का जल अपनी सूँड़ में भरकर लाया था। उसी जल से उसने भगवान् कृष्ण का अभिषेक किया। कामधेनु ने अपनी अमृत दुग्धधारा की वर्षा भगवान् के चरणों में की। इंद्र ने हाथ जोड़कर विनम्रता से भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और प्रार्थना की, “प्रभु, मेरे अपराध को क्षमा कर दें।”

श्रीकृष्ण ने कहा, “तुम ऐश्वर्य के मद में मतवाले हो रहे थे। जो ऐसा मतवाला हो जाता है वह यह नहीं देखता कि उस अपराध के लिए दंड लेकर कालरूप परमेश्वर सामने खड़ा है। अब तुम कभी घमंड नहीं करना। अपने अधिकार के अनुसार उचित रीति से मर्यादा का पालन करना, इसीमें तुम्हारा मंगल है।”

इंद्र देवता ने भगवान् की पूजा की। सभी ब्रजवासियों से हाथ जोड़कर अपने अपराध की क्षमा माँगी और अपने लोक को चले गए।

श्रीकृष्ण ने सभी ब्रजवासियों को गोवर्धन के रूप में साक्षात् श्रीहरि के दर्शन करवाए। बलदाऊ, नंद बाबा तथा ब्रजवासियों के साथ स्वयं श्रीकृष्ण ने गोवर्धन भगवान् की पूजा की। उत्साह से भरे वातावरण में ‘गोविंद जय-जय’ की ध्वनि के साथ सभी ने गोवर्धन की परिक्रमा की।

## नंद वरुण देवता के यहाँ

कार्तिक शुक्ल एकादशी का दिन था। नंद बाबा ने एकादशी का व्रत किया था। द्वादशी तिथि लगने पर वे मध्यरात्रि में ही स्नान करने यमुनाजी में घुसे। असुरवेला में नंदजी को यमुना में घुसते देखकर पहरा दे रहे वरुण देवता के एक सेवक ने उन्हें पकड़ लिया और वरुण देवता के सामने ले गया। नंद बाबा के गुम हो जाने से सभी चिंतित हो गए। ब्रजवासियों की करुण पुकार से कृष्ण द्रवित हो गए। वे तो अंतर्यामी थे ही। उनको पता था कि वरुण देवता कहाँ है। श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। वरुण देवता ने जब देखा कि साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही आ गए तो वह भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़े। हाथ जोड़कर बोले, “हे गोविंद, अज्ञानता के कारण मेरे मूर्ख सेवक ने यह भूल की है। आप मुझे इसके लिए क्षमा करें। मुझ पर कृपा कीजिए।” भगवान् ने लोकपाल वरुण को आशीर्वाद दिया और पिता नंद बाबा सहित ब्रज में आकर ब्रजवासियों एवं भाई-बंधुओं को आनंदित किया।

## रासलीला

शरद ऋतु के आगमन की सूचना बेला, चमेली आदि सुवासित पुष्पों की सुगंध से महकते वातावरण ने दे दी थी। ब्रजबालाएँ बार-बार श्रीकृष्ण का ध्यान करके रोमांचित हो रही थीं। श्रीकृष्ण ने भी योगमाया का आश्रय लेकर गोपियों के साथ रसमयी क्रीड़ा करने का संकल्प किया। श्रीकृष्ण ने अपनी मोहिनी छवि एवं रसिकता का आभास देकर सारे वातावरण को अनुरागमय बना दिया। शरद पूर्णिमा की रात्रि थी। संपूर्ण ब्रजमंडल प्रेमरंग में रँग गया था। श्रीकृष्ण ने अपनी प्रिय बाँसुरी से ब्रजबालाओं के मन का हरण करनेवाली तान छोड़ दी। गोपियाँ तो वैसे ही कृष्णरंग में रँगी हुई थीं। बंसी की ध्वनि ने उन्हें बेसुध कर दिया। वे जहाँ थीं, जैसे थीं, जिस काम को कर रही थीं सबकुछ वैसे ही छोड़कर बौराई-सी भागी चली आईं। किसीके घर में दूध उफन रहा था, कहीं गोद का बच्चा रो रहा था, कहीं गौएँ दुही जा रही थीं तो बछड़े को खुला छोड़कर और कहीं पति के पास अस्त-व्यस्त सी बैठी सभी गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँच गईं। यदि कोई पिता अथवा पति द्वारा रोकी भी गई तो सुध-बुध खोकर वहीं कृष्ण-चिंतन से अपने प्रिय को प्राप्त कर मुग्धावस्था में चली गईं। उन्होंने तो अपना सर्वस्व ही कृष्ण को समर्पित कर दिया था। कृष्ण ने गोपियों को स्वीकार किया। उनकी इच्छा-तृप्ति हेतु उनके प्रति विविध प्रकार से स्नेह जताया। प्रत्येक गोपी के साथ श्रीकृष्ण ने अपने स्पर्श, आलिंगन एवं प्यार से गोपी-कृष्णमय हो जाने का आभास कराया। प्रत्येक गोपी अपने मन में सोचने लगी—‘कृष्ण तो मेरे साथ ही विहार कर रहे हैं।’ वे मानवती हो गईं। गोपियों का गर्व देखकर भगवान् कृष्ण उनका मान दूर करने के लिए सहसा अंतर्धान हो गए। अब श्रीकृष्ण को अपने पास न देख गोपियाँ विरह-वेदना में दग्ध होकर विलाप करने लगीं। मतवाली गोपियाँ अपनी पीड़ा अनेक प्रकार से प्रकट करने लगीं। आपस में कोई कृष्ण बनकर उनकी गजराज की-सी मदोन्मत्त चाल का, तो कोई मनोरम प्रेमालाप अथवा विलासभरी चितवन का अनुकरण करने लगीं। कृष्ण-विरह में आकुल गोपियों ने कातर होकर भगवान् को पुकारना शुरू किया। वियोग से व्यथित होकर वे रो-रोकर भगवान् श्रीकृष्ण से याचना करने लगीं। श्रीकृष्ण ने जब बहुत देर तक गोपियों की व्यथा एवं व्याकुलता भरी वाणी सुनी तो प्रकट हो गए। श्रीकृष्ण को देखते ही गोपियों में नूतन प्राण का संचार हो गया। वे नाना प्रकार से अपना प्रेम प्रकट कर रही थीं; क्षमा माँग रही थीं और उनसे मिलन का अनुरोध कर रही थीं।

श्रीकृष्ण ने गोपियों को ज्ञान का उपदेश दिया—“मेरी प्रिय सखियों, भावनावश तुम सब मेरे लिए लोक-मर्यादा, वेदमार्ग तथा अपने सगे-संबंधियों को छोड़कर प्रेम के वशीभूत हो गई हो। मैं इसका ऋण चुकाना भी चाहूँ तो नहीं चुका सकता। तुम सब मुझे अत्यंत प्रिय हो। तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्मल एवं निर्दोष है।” श्रीकृष्ण के प्रेममय, मधुर वचन सुनकर गोपियाँ उत्साह से भर गईं। उनका मनोरथ पूर्ण हो गया। श्रीकृष्ण ने सबकी बाहों में बाहें डाले यमुना के पुलिन पर रसक्रीड़ा प्रारंभ की।

श्रीकृष्ण ने अत्यंत प्रसन्न होकर दो-दो गोपियों के बीच खड़े होकर, अपने सहस्रों स्वरूपों में सहस्रों गोपियों के साथ, शरद पूर्णिमा की शीतल चाँदनी में 'महारास' उत्सव प्रारंभ किया।

श्रीकृष्ण की अनोखी छवि, जहाँ प्रत्येक गोपी के साथ अलग-अलग थी, वहीं अपने ज्योतिर्मय स्वरूप से यमुना की रेती पर सर्वांग सुंदर, वस्त्रादि से सुसज्जित कृष्ण धीरे-धीरे नृत्य कर रहे थे। नृत्य में गति आती जा रही थी। थिरकन बढ़ती जा रही थी। नृत्यमग्न गोपियों में जैसे ही शिथिलता आती कृष्ण उन्हें सहारा देकर, पुलकित करके नृत्य में गति ला देते थे। महारास की यह अद्भुत लीला जैसे अनंत काल तक चलती रही। अंत में रात बीती। ब्राह्ममुहूर्त में श्रीकृष्ण ने, गोपियों की लौटने की इच्छा न होते हुए भी, उन्हें आज्ञा दी कि वे सांसारिक कर्म को नित्य नियमानुसार करें। बस, अपने प्रेम एवं संकल्प से भगवान् की आराधना करती रहें। गोपियाँ अपने-अपने घर आईं। योगमाया के प्रभाव से सब गोप यही समझ रहे थे कि उनकी पत्नियाँ सारी रात उन्हीं के निकट बनी रहीं।

गोपियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का रमण सर्वथा दिव्य लीला है। इसे लौकिक कामक्रीड़ा नहीं माना गया।

## विद्याधर सुदर्शन का उद्धार

शिवरात्रि का पर्व था। नंद बाबा तथा अन्य गोपों ने उल्लास के साथ अपने छकड़ों-रथों में बैठकर अंबिका वन की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर सबने सरस्वती नदी में स्नान किया। श्रद्धापूर्वक भगवान् शंकर तथा माता अंबिका की पूजा की और व्रत किया। वहाँ पर गौएँ, धन, वस्त्र आदि ब्राह्मणों को दान दिया और भोजन कराया। स्वयं केवल जल पीकर शिवरात्रि व्यतीत की। उस वन में एक भूखा अजगर उधर से निकला। उसने सोए हुए नंदजी का पैर पकड़ लिया और उन्हें निगलने लगा। नंदजी अकुलाकर चिल्लाए—“बेटा कृष्ण! कन्हैया...दौड़ो...यह अजगर मुझे निगल रहा है!” नंदजी की चिल्लाहट से सभी घबराकर जाग पड़े। श्रीकृष्ण भी उठकर दौड़े। उन्होंने देखा—कोई लाठी से, कोई अधजली लकड़ी से अजगर को मार रहा है। सभी चिल्ला रहे हैं। अजगर फिर भी नंद को नहीं छोड़ रहा था। कृष्ण ने अपने चरण से अजगर को छू दिया। चमत्कार! अजगर के स्थान पर एक सुंदर पुरुष उठकर खड़ा हो गया। कृष्ण ने मुसकराते हुए उसकी ओर देखा। नंद बाबा और सारे गोपों को आश्चर्य हुआ—अजगर पुरुष कैसे बन गया! वह पुरुष सुदर्शन नाम का विद्याधर था। उसने सबको बताया कि अद्भुत सौंदर्य एवं अपार धन का अभिमान होने के कारण मैं मदांध हो गया था। एक दिन विमान में बैठकर मैं सैर कर रहा था। वहाँ मैंने अंगिरा गोत्र के ऋषियों को देखा और उनकी कुरूपता की हँसी उड़ाई। ऋषियों ने कुपित होकर मुझे अजगर-योनि में जाने का शाप दे दिया था। यह शाप मेरे लिए वरदान हो गया, क्योंकि उसीके कारण आज मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हो गए। विद्याधर ने श्रीहरि के चरणों में प्रणाम किया और परिक्रमा करके प्रार्थना की कि उनकी कृपा सदैव उसपर बनी रहे। वह अपने लोक को चला गया। व्रजवासी भी भगवान् का गुणगान करते हुए व्रज को लौट गए।

## शंखचूड़ यक्ष का वध

एक दिन कृष्ण-बलराम की युगल जोड़ी सुंदर, सुगंधित फूलों की मालाएँ धारण करके चंदन एवं वस्त्राभूषणों से सज-धजकर बंसी की मधुर तान छेड़कर, गोपियों को सम्मोहित करते वन की ओर निकले। गोपियाँ भी अपने तन-मन की सुध भूलकर बंसी की तान पर युगल जोड़ी के पीछे-पीछे खिंचती-सी चली आईं। गोपियों के वस्त्र शरीर से खिसक रहे थे, अलकें बिखर रही थीं। उसी समय शंखचूड़ नाम का एक यक्ष वहाँ आया और गोपियों को पकड़कर उत्तर दिशा की ओर चल दिया। गोपियाँ चीखने-चिल्लाने लगीं। कृष्ण-बलराम को पुकारने लगीं। तब कृष्ण और बलराम ने उसका पीछा किया।

भय से यक्ष ने गोपियों को छोड़ दिया और भागने लगा। कृष्ण ने बलराम को गोपियों की रक्षा के लिए वहीं छोड़ा

और स्वयं यक्ष का पीछा करने लगे। अंत में उन्होंने उस यक्ष को धर दबोचा और उसके सिर पर एक घूँसा मारा। घूँसे के लगने से यक्ष के सिर पर लगी चूड़ामणि निकल पड़ी और उसका सिर धड़ से अलग हो गया। चूड़ामणि लेकर कृष्ण वापस पहुँचे। वह चूड़ामणि उन्होंने बड़े भाई बलराम को भेंट कर दी।

## अरिष्टासुर का संहार

कंस श्रीकृष्ण का वध करने के लिए नित्य नए उपाय करता था। एक दिन संध्या समय श्रीकृष्ण-बलराम गौओं के साथ घर लौट रहे थे तो कंस का भेजा हुआ अरिष्टासुर नामक दैत्य बैल का रूप धारण करके गौओं के बीच चलने लगा। उसका डील-डौल देखकर श्रीकृष्ण समझ गए कि यह छद्मवेषधारी दैत्य है। वह बड़ी ढिठाई से मूत्र-गोबर करता तथा हुँकारता हुआ चल रहा था। ब्रज में घुसते-घुसते उसके उपद्रव बढ़ गए। वह अपने तीखे सींगों को नीचे किए दौड़ा तो गोपियाँ और ग्वाल-बाल डरकर इधर-उधर भागने लगे। उसकी हुँकार से भयभीत होकर तो ब्रजबालाओं के गर्भ तक गिर जाते थे! वे चिल्लाने लगीं—“कृष्ण! कन्हैया! बचाओ-बचाओ!”

“डरो मत! डरो मत!” कहकर श्रीकृष्ण उस बैल के सामने आए। बोले, “अरे, दुष्ट दैत्य! जिसे मारने तू आया है, वह तो मैं यहाँ खड़ा हूँ।” बैल सींग नीचे करके खुर्ों से जमीन कुरेदता, क्रोध से आगबबूला होकर श्रीकृष्ण के ऊपर झपटा। श्रीकृष्ण ने उसके सींग पकड़े और जोर से धक्का देकर पीछे धकेला। वह बीस कदम पीछे हट गया। अब वह और तेजी से झपटा। तब श्रीकृष्ण ने उसके सींग पकड़े और मरोड़कर उसको जमीन पर पटक दिया। उसके ऊपर एक पैर रखकर उन्होंने सींग उखाड़ लिये और उसी सींग से मार-मारकर उसे लहूलुहान कर दिया। बैल का मल-मूत्र निकल गया। वह बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गए। ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण की जय-जयकार की। भयमुक्त होकर सब अपने-अपने घरों को गए।

## कंस का षड्यंत्र

इतने दैत्य-असुरों का संहार श्रीकृष्ण-बलराम द्वारा हो रहा था तो नारद को चैन कहाँ आता! वे तो और भी जल्दी पृथ्वी को असुरविहीन देखना चाहते थे। वे कंस के पास पहुँचे और उसको समझाने लगे, “अरे, कंस महाराज! ब्रज में जो कृष्ण-बलराम दोनों बालक हैं, वे वसुदेव-देवकी के ही पुत्र हैं। देवकी के अपने गर्भ से कृष्ण हुआ था। वह कन्या तो यशोदा के यहाँ जनमी थी। महाराज, यही तो आपका काल है! अब तक जितने राक्षस-दैत्यों को आपने भेजा, उसने सभी को मार डाला है।”

यह सुनते ही कंस आगबबूला हो उठा। उसने उसी समय वसुदेव-देवकी को मार डालने के लिए शस्त्र उठा लिये।

नारद ने धीरे से उसे समझाया, “वसुदेव-देवकी को मार डालने से क्या होनेवाला है? तुम्हारा काल तो फिर भी जीवित ही रहेगा। तुम तो उस काल को ही समाप्त करो।”

कंस ने वसुदेव-देवकी को उसी समय हथकड़ी पहनाकर जेल में डाल दिया। नारद धीरे से ‘नारायण-नारायण’ कहते हुए वहाँ से खिसक गए।

कंस ने महाबली केशी दैत्य को ब्रज में जाकर कृष्ण-बलराम का वध करने की आज्ञा दी। साथ ही उसने मुष्टिक, चाणूर, शल-तोषल आदि अपने पहलवानों को बुलाकर कहा, “अब तुम सब तैयार हो जाओ, कृष्ण-बलराम का वध करना है। अपने यहाँ एक ऐसा अखाड़ा बनाओ जिसके आसपास चारों ओर ऊँचे-ऊँचे मंच बने हों। जहाँ बैठकर सब लोग दंगल देख सकें।”

उसने महावत से कहा कि तुम अपने कुवलयापीड़ हाथी को फाटक पर खड़ा रखना। कृष्ण-बलराम जब वहाँ से



निकलें तो हाथी से कुचलवाकर उन्हें मरवा देना। मंत्रियों से कहा, “यज्ञ कराओ और उसकी सफलता के लिए पशुबलि चढ़ाओ। कंस ने कृष्ण को मारने के लिए अपनी ओर से पूरी तैयारी कर ली। लेकिन कंस को अपने भाग्य का पता नहीं था।”

कंस ने यदुवंशियों में श्रेष्ठ अक्रूर को बुलाकर कहा, “आप चतुर एवं उदार हैं। आप हमारे शुभचिंतक भी हैं। व्रज में जाकर कृष्ण-बलराम दोनों को बड़ी युक्ति से रथ में बिठाकर यहाँ शीघ्रातिशीघ्र ले आओ। उनको कहना कि मथुरा में बड़ा भारी दंगल होनेवाला है। उनके आने पर मेरे मल्ल उन्हें मार डालेंगे। यदि दैत्यों से भी वे नहीं मरे तो मैं स्वयं उन्हें अवश्य ही मार डालूँगा। उसके बाद मैं अपने पिता उग्रसेन एवं चाचा देवक के सिर भी तलवार से काट डालूँगा।”

कंस को बड़ा घमंड था। वह अपने श्वसुर जरासंध, अपने मित्रों तथा असुरों की सहायता से सबका वध करके पृथ्वी पर निष्कण्टक राज्य करने की ठाने बैठा था।

अक्रूरजी को कंस के विचार अच्छे नहीं लगते थे; लेकिन कंस की आज्ञा को वह भाग्य का खेल मानकर व्रज के लिए रवाना हो गए।

इधर केशी दैत्य व्रज में घोड़े के रूप में पहुँचा। उसके कान बड़े-बड़े और मुँह डरावना था। वह कृष्ण को मारने के इरादे से घूम-घूमकर अपनी हिनहिनाहट से कृष्ण को उकसा रहा था। श्रीकृष्ण ने देखा—यह एक और दैत्य आ गया है! व्रजवासियों को बचाने के लिए वे कूदकर उसके सामने आ गए। केशी ने श्रीकृष्ण को दुलती मारी। कृष्ण ने उसके वही दोनों पैर पकड़कर आकाश में जोर-जोर से घुमाकर दूर फेंक दिया। वह फिर उठकर वेग से दौड़ता हुआ कृष्ण पर झपट पड़ा। कृष्ण ने उसके मुँह में पूरा हाथ ही डाल दिया। उनका हाथ तपते हुए लोहे की तरह गरम हो गया और इतना मोटा हो गया कि घोड़े का मुँह बंद हो गया। साँस रुक गई। वह छटपटाकर पृथ्वी पर ढह गया। कृष्ण के पराक्रम व्रजवासियों के लिए नित्य नए थे! वे कृष्ण को आश्चर्य से देखते रह जाते।

केशी दैत्य के मरने के बाद व्योमासुर आया। उसने भी ग्वाल-बालों तथा गौओं को चुराकर गुफा में छिपा दिया, तब कृष्ण ने उसको भी दबोचकर मार डाला और गुफा में छिपाकर रखे गए अपने बाल-सखाओं तथा प्यारी गौओं का उद्धार किया।

## अक्रूर का भ्रम

बुद्धिमान् अक्रूरजी श्रीकृष्ण के भक्त थे। उन्हें ज्ञान था कि श्रीहरि ने ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया है। अपने आराध्य तथा उस व्रजभूमि के दर्शन करने की अभिलाषा उनके मन में थी। अतः वे कंस की आज्ञा शिरोधार्य करके रथ में व्रज के लिए रवाना हो गए।

अक्रूर रथ में बैठे हुए कृष्ण-बलराम के चिंतन एवं उनकी लीलाओं का स्मरण करने में तल्लीन हो गए। वे नंद बाबा के ग्राम में पहुँचे तो वहाँ की रज में कृष्ण के चरण-चिह्नों को अंकित देखकर भावावेश में रथ से नीचे कूद पड़े। वे व्रजभूमि की उस रज में लोटने लगे। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे।

व्रज पहुँचकर अक्रूरजी ने देखा—श्रीकृष्ण-बलराम गौ दुहने के स्थान पर बैठे हैं। भगवान् का ग्यारहवाँ वर्ष था। पर दोनों भाई अलौकिक आभा से दमक रहे थे। अक्रूर ने रथ से नीचे कूदकर श्रीकृष्ण-बलराम के चरण पकड़ लिये। उनके आँसुओं से भगवान् के चरण भीग रहे थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। अक्रूर बलराम के सन्मुख बड़े विनीत भाव से खड़े हुए तो उन्होंने भी अक्रूर को गले लगाया। दोनों भाई उन्हें हाथ पकड़कर अपने साथ घर में ले गए और चरण धोकर उनका सत्कार किया। अतिथि-सत्कार में उनको भेंट दी और पैर दबाकर उनकी थकान दूर की। भोजन के बाद नंद बाबा ने अक्रूर से पूछा, “आप लोग उस दुष्ट कंस के निकट

कैसे रहते हैं? मथुरा में उसकी प्रजा सुख से कैसे रह सकती है?’

नंद की आत्मीयता भरी बातें सुनकर अक्रूरजी प्रसन्न हो गए। श्रीकृष्ण ने भी उनके परिवार तथा कुटुंबीजनों की कुशलक्षेम पूछी। कंस मामा के विषय में पूछा और अपने माता-पिता का हाल जानना चाहा। उस समय व्याकुल हुए कृष्ण ने कहा, “उन्हें तो कंस ने जेल में डाल ही दिया है। मेरा मन भी मथुरा आने को कर रहा था। चाचाजी, आप किस हेतु यहाँ आए हैं? तब अक्रूर ने कंस का दुष्ट विचार भगवान् के सामने रखा और कहा कि उसने आपको मथुरा बुलाया है।”

श्रीकृष्ण हँस रहे थे। उन्होंने नंद बाबा को कंस की आज्ञा सुना दी। नंद बाबा ने ग्राम कोतवाल को बुलाकर ब्रज में घोषणा करवा दी कि कल प्रातः सब लोग कंस को कर देने जाएँगे और एक उत्सव हो रहा है वह भी देखेंगे।

गोपियों ने जब सुना कि कृष्ण-बलराम सवेरे ही मथुरा जाएँगे तो वे व्याकुल हो गईं। उन्हें तो कृष्ण वियोग की बात भी सुनना सत्य नहीं था। रात काटनी मुश्किल हो गई। वे विरह-व्यथा की कल्पनामात्र से ही पीड़ित हो रही थीं। उन्होंने अक्रूर के लिए भी भला-बुरा सोचा—‘कैसा निर्दयी है यह चाचा! हमारे प्रियतम कृष्ण को ले जा रहा है।’

प्रातःकाल होते ही गोपियाँ यशोदा के पास आ गईं। उन्मत्त की भाँति वे ‘कृष्ण’, ‘गोविंद’, ‘माधव’, ‘प्रियतम’ आदि बोलती जाती थीं। उन्होंने वहाँ खड़े अक्रूरजी को घेर लिया। कृष्ण-बलराम रथ पर सवार हुए तो व्याकुलता से वे रथ को पकड़े कृष्ण की ओर कातर दृष्टि से देख रही थीं। कृष्ण ने उन्हें समझाया कि मैं शीघ्र ही आऊँगा। अक्रूर को गोपियों की व्यथा देखकर उनके प्रेमभाव की अनुभूति हुई। यशोदा को अपने लाला का वियोग बेसुध कर रहा था।

अक्रूर रथ को लेकर यमुना तट पर आ गए। वृक्षों की छाया में रथ खड़ा करके उन्होंने ‘ब्रह्महृदय तीर्थ’ में स्नान के लिए डुबकी लगाई और गायत्री मंत्र का जप करने लगे। सहसा देखा कृष्ण-बलराम दोनों भाई जल में हैं। उन्होंने अपना सिर जल से ऊपर उठाकर देखा तो दोनों भाई रथ में बैठे दिखाई पड़े। उन्होंने फिर डुबकी लगाई तो सामने शेषशय्या पर विश्राम कर रहे चतुर्भुज श्रीनारायण अपने दिव्य स्वरूप में दिखाई दिए। अक्रूर को कुछ क्षणों बाद भान हुआ। वे पुलकित होकर भगवान् के चरणों में गिर पड़े। गद्गद होकर उनकी स्तुति करने लगे, “मैं आपकी माया से मोहित हो रहा हूँ। मेरे बड़े भाग्य जो आपकी चरणरज मुझे प्राप्त हुई। आप अनंत हैं। मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ।”

अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन देकर श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गए। अक्रूर जल से बाहर निकले और विचित्र मनःस्थिति में आकर रथ पर बैठ गए। श्रीकृष्ण ने अक्रूर से पूछा, “चाचाजी, आपने जल में कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या, जिससे आपकी यह अवस्था हो रही है!”

अक्रूर ने कहा, “भगवन्! सब जगह आप ही हैं। वहाँ पर भी आपको ही देखा है और यहाँ भी आप मेरे पास हैं। क्या कोई ऐसी वस्तु भी है जिसमें आप विराजमान नहीं हैं?”

अक्रूर ने रथ हाँका। शाम होते-होते वे मथुरा पहुँच गए। मार्ग में श्रीकृष्ण-बलराम की युगल जोड़ी के दर्शन करके ग्रामों के स्त्री-पुरुष प्रेमानंद में मग्न हो जाते। नंद बाबा एवं अन्य ब्रजवासी पहले ही मथुरा पहुँच गए। वे नगर के बाहर ही एक उपवन में डेरा डालकर अपने लाला की प्रतीक्षा कर रहे थे। अक्रूर का रथ वहाँ पहुँचा तो श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़कर अक्रूरजी से कहा, “चाचाजी, आप अपना रथ लेकर मथुरा पहुँच जाइए। हम यहाँ थोड़ी देर ठहरकर फिर नगर देखने आएँगे।”

## कंस की नगरी में

अक्रूर ने कहा, “भगवन्! मेरा त्याग न करें। मैं आपके बिना मथुरा नहीं जाना चाहता। मैं आपका भक्त हूँ। आप

सब मेरे घर को पवित्र करें।”

श्रीकृष्ण ने कहा, “मैं अपने दाऊ के साथ आपके घर अवश्य आऊँगा। पहले मुझे मेरे प्रियजनों का प्रिय कार्य कर लेने दो।”

कृष्ण-बलराम अपने सखाओं के साथ नगर देखने निकले। मथुरा के सुंदर-सुंदर भवन, स्वर्ण कपाटवाले ऊँचे-ऊँचे सिंहद्वार, कलश, बंदनवार, ताँबे-पीतल से मढ़ी हुई दीवारें। मथुरा नगरी के भवन मोती-माणिक, हीरे-पत्तों आदि से सुसज्जित थे। नगरवासियों ने श्रीकृष्ण के आगमन की खबर पाकर सजाया भी खूब था मथुरा को। मथुरा की युवतियाँ उत्सुकतावश सब काम छोड़कर अटारियों पर चढ़ गईं। आबालवृद्ध श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए लालायित होकर रास्ते पर निकल आए। श्रीकृष्ण-बलराम भी अपनी तिरछी चितवन, मोहक, मंद-मंद मुसकान और मस्ती भरी चाल से सभी के मन-मस्तिष्क पर छा गए। वे युवतियों के हृदय को घायल कर रहे थे; वृद्धों को तृप्त कर रहे थे तथा हमउम्रों को प्रेरणा दे रहे थे। नगर-भ्रमण करते-करते एक धोबी दिखाई दिया। कृष्ण-बलराम ने उससे कपड़े माँगे। धोबी ने दुर्वचन कहे। कृष्ण ने उसे घूँसे से मारकर अपने सखाओं समेत वस्त्र पहन लिये तथा बचे हुए वस्त्र बाँट दिए। उसके बाद एक दर्जी की दुकान दिखाई पड़ी। उससे कहा कि ये वस्त्र हमारे अनुकूल कर दो।

दर्जी ने स्नेह से उनके शरीर के अनुकूल काट-छाँटकर वस्त्र सिल दिए। श्रीकृष्ण-बलराम तो मानो यह सोचकर अधिकार जता रहे थे कि मथुरा में हमारे मामा कंस का राज है। मातुलगृह में तो हमको छीन-झपटकर खाना-पहनना चाहिए। वे हँसते-मुसकराते आगे निकले। देखा—एक बहुत सुंदर स्त्री, शरीर से कुबड़ी, हाथ में चंदन, माला लेकर जा रही थी। श्रीकृष्ण ने उसे अपनी चितवन से घायल कर दिया और पुष्पमाला पहनाने के लिए कहा।

वह दासी श्रीकृष्ण की चितचोर दृष्टि से मोहित हो गई। उसने कृष्ण को चंदनमाला से सुशोभित किया। श्रीकृष्ण ने एक हाथ से उसकी टोड़ी पकड़कर एक पैर से पैर का अँगूठा दबाकर उसे खींचा तो वह श्रीकृष्ण के स्पर्श से अत्यंत सुंदर, सुगठित शरीरवाली यौवना बन गई। उसने भगवान् श्रीकृष्ण से अपने घर चलने की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा, “मैं जिस काम से आया हूँ, पहले उसे कर लूँ, तब अवश्य ही तुम्हारे घर आऊँगा।”

वहाँ से घूमते हुए श्रीकृष्ण व्यापारियों के बाजार में आ गए। सबसे हार, पूजा एवं सत्कार पाकर वहाँ के निवासियों से धनुषयज्ञ का स्थान पूछते हुए वे रंगशाला में पहुँच गए। कंस के बहुत से रक्षक धनुष रक्षा के लिए खड़े थे। रक्षकों ने कृष्ण को उस अद्भुत धनुष को हाथ लगाने से रोका।

श्रीकृष्ण ने अनसुना करते हुए धनुष उठा लिया। उसपर डोरी चढ़ाई। फिर प्रत्यंचा खींचकर धनुष को तोड़ डाला। धनुष टूटते ही असुर उन्हें पकड़ने के लिए दौड़े। बलराम तथा कृष्ण ने धनुष के टुकड़ों को हाथ में लेकर उनका संहार कर दिया। कंस ने जब यह समाचार सुना तो उसने सेना भेज दी। उसका भी यही हाल हुआ। दोनों भाई यज्ञशाला में चले आए। नगर निवासियों ने दोनों भाइयों का पराक्रम देखा तो चकित-से आपस में बतियाने लगे कि ये तो अवश्य ही कोई देवता हैं! दोनों भाई धीरे-धीरे टहलते हुए अपने सखाओं के साथ डेरे पर पहुँच गए। हाथ-पैर धोकर भोजन किया और सो गए।

इधर कंस ने कृष्ण के पराक्रम के विषय में सुना तो उसे रात भर नींद नहीं आई। स्वप्न में अपशकुन दिखे। जागने पर भी अपशकुन होते रहे। वह मृत्यु के भय से डर गया। सवेरा होते ही उसने दंगल महोत्सव जल्दी से आरंभ करवाया ताकि दंगल में दोनों भाई मारे जाएँ। ऊँचे मंच पर कंस बैठ गया। दंगल-स्थान खचाखच भर गया। अट्टालिकाओं, महल के झरोखों, परकोटों पर चढ़कर लोग दंगल देखने के लिए बैठे थे। वाद्य बजने लगे। बड़े-बड़े पहलवान ताल ठोककर अखाड़े में उतर आए। कंस ने नंद को बुलवाया। उनसे भेंट लेकर उन्हें भी मंच पर

बिठाया।

दोनों भाइयों ने दंगल के बाजे सुने। वे रंगभूमि के द्वार पर पहुँचे जहाँ कुवलयापीड़ हाथी खड़ा था। श्रीकृष्ण ने महावत से कहा, “हाथी को रास्ते से हटा दो!” महावत ने उलटे हाथी को ही दोनों भाइयों पर हूल दिया। हाथी ने श्रीकृष्ण को अपनी सूँड़ में पकड़ लिया। भगवान् एकदम पतले होकर सूँड़ से बाहर निकल आए और एक घूँसा मारकर हाथी के पैरों के बीच छिप गए। कुवलयापीड़ अति क्रोधित होकर सूँड़ घुमाकर उन्हें पकड़ने का प्रयास करने लगा। श्रीकृष्ण ने पीछे से उसकी पूँछ पकड़कर उसे दूर फेंक दिया। हाथी फिर चिंघाड़ता हुआ आया तो कृष्ण ने कभी सूँड़, कभी पूँछ पकड़कर उसे घुमाते हुए फेंकने और अपने-आपको बचाने का खेल बहुत देर तक मथुरावासियों को दिखाया। अंत में घूँसा मारकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया और उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये। उन्हीं दाँतों से मार-मारकर श्रीकृष्ण ने हाथी और उसके महावत का अंत कर दिया।

दोनों भाइयों ने हाथी का एक-एक दाँत हाथ में लिये हुए रंगभूमि में प्रवेश किया। पहलवानों ने उन्हें पहलवान समझा, लेकिन साधारण नागरिकों ने उन्हें देवता माना और कंस ने उन्हें अपना काल ही समझा। कंस ने सुना कि श्रीकृष्ण ने कुवलयापीड़ को भी मार डाला और जब उन्हें रंगभूमि में प्रवेश करते देखा तो उसकी दशा बड़ी विचित्र हो गई।

पहलवानों में से चाणूर ने श्रीकृष्ण-बलराम को ललकारकर कहा, “तुम दोनों बड़े बलवान् हो! हमारे महाराज कंस तुम्हारी कुशती देखना चाहते हैं। राजा को प्रसन्न करना प्रजा का धर्म है।”

श्रीकृष्ण ने मुसकराते हुए कहा, “अवश्य, कंस राजा को प्रसन्न करने में ही हमारी भलाई है। हम दोनों बालक हैं। अपनी उम्र के बालकों से ही हम कुशती लड़ सकेंगे!”

चाणूर ने कहा, “तुमने तो बड़े-बड़े दैत्यों, असुरों और कुवलयापीड़ जैसे महाबलशाली हाथी को भी मार डाला है। तुम मुझसे तथा बलशाली मुष्टिक से कुशती लड़ो।”

दोनों भाई उन दैत्य पहलवानों के साथ भिड़ गए और अपने-अपने दाँव-पेच एवं शक्ति का प्रदर्शन करके नगरवासियों का मनोरंजन करने लगे। नगरवासी दबी-दबी जबान से कह रहे थे—“कैसा अधर्म है यह! कहाँ ये सुकुमार किशोर बालक और कहाँ ये विशाल भयंकर दैत्य! यह तो सरासर अन्याय है।”

जेल में वसुदेव-देवकी के कानों में भी भनक पड़ी तो वे सोचने लगे—‘अब कंस अवश्य ही हमारे पुत्रों को मार डालेगा।’ वे दोनों शोकमग्न हो रहे थे।

## कंस वध

श्रीकृष्ण-बलराम ने अब देर नहीं की। उन्होंने चाणूर और मुष्टिक को पृथ्वी पर पटककर पैरों से रौंदा। वे दोनों ही रक्त उगलकर निष्प्राण हो गए। उनकी यह हालत देखकर दूसरे पहलवान भाग खड़े हुए। दर्शकों ने दोनों भाइयों के अभिनंदन में तालियों की गड़गड़ाहट से सारा नगर गुंजायमान कर दिया। कंस डर गया। उसने आतंकित होकर सैनिकों को आज्ञा दी—“इन दोनों को पकड़कर मार डालो। नंद और गोपों को बंदी बना लो! वसुदेव-देवकी और उग्रसेन को भी मार डालो!”

कंस कृष्ण पर तलवार से वार करने का प्रयत्न कर ही रहा था कि कृष्ण ने उसके केश पकड़कर मंच से पृथ्वी पर गिरा लिया और उसपर कूद पड़े। कूदने से ही कंस के प्राण निकल गए। श्रीकृष्ण ने कंस के शरीर को घसीटते हुए रंगशाला में चक्कर लगाए। कंस शत्रुभाव रखते हुए भी सदा भगवान् श्रीकृष्ण का ही ध्यान करता था, इसलिए भगवान् ने उसे मुक्ति दी। बलराम ने कंस के आठों भाइयों को भी मार डाला। कंस और उसके भाइयों की पत्नियाँ विलाप करती हुई वहाँ आईं और अपने-अपने पति के शव से लिपटकर क्रंदन करने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने सबको

समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया।

## माता-पिता का प्रथम दर्शन

श्रीकृष्ण-बलराम कंस की जेल में गए। उन्होंने माता-पिता की हथकड़ी-बेड़ियाँ काटीं और उनके चरणों में गिर पड़े। माता-पिता ने उन्हें भगवान् समझकर, साधारण पुत्र की भाँति स्नेहवश हृदय से नहीं लगाया। दोनों हाथ जोड़कर खड़े ही रह गए। श्रीकृष्ण ने माया से उन्हें मोहित कर दिया। बोले, “हम आपके पुत्र हैं, अब तक आपके वात्सल्य से वंचित रहे; आपकी सेवा नहीं कर सके। हमें क्षमा करें और अपना स्नेहपूर्ण हाथ हमारे सिर पर रखें।” वसुदेवजी ने उमड़ते वात्सल्य से दोनों पुत्रों को हृदय से लगा लिया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखते हुए उन्हें चूमते रहे।

माता-पिता को ढाढ़स बँधाकर श्रीकृष्ण अपने नाना उग्रसेन के पास आए और मथुरा के सिंहासन पर पुनः उनका राजतिलक किया।

फिर श्रीकृष्ण-बलराम अपने डेरे पर नंद बाबा के पास आए। हाथ जोड़कर बोले, “बाबा, आप अब निर्भय होकर व्रज को जाओ। हम कुछ दिन मथुरा में ही निवास करेंगे।”

नंद बाबा तो कृष्ण के बोल सुनते ही सन्न रह गए। व्याकुल होकर उन्होंने कृष्ण को हृदय से लगा लिया।

श्रीकृष्ण ने कहा, “वास्तव में आप ही हमारे माता-पिता हैं। पालनेवाला जन्मदाता से अधिक श्रेष्ठ होता है, बाबा! हम आपके दर्शन के लिए शीघ्र ही आएँगे।”

श्रीकृष्ण ने भारी मन से नंद बाबा को विदा किया।

नंदजी बहुत पछताए-से व्रज में पहुँचे। उनकी दशा बहुत ही दयनीय हो गई थी। यशोदा मैया ने देखा कि नंद बिना कृष्ण-बलदाऊ के अकेले ही लौट आए हैं तो पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और कड़े वचनों से नंद की भर्त्सना करने लगीं।

गोपियाँ भी विछोह से अचेत हो गईं। समूचे व्रजमंडल में दुःख व्याप्त हो गया।

उधर वसुदेव-देवकी के यहाँ आनंद-उत्सव मनाया जा रहा था। सारा मथुरानगर वाद्य ध्वनियों से गूँज रहा था। मंगलगान गाए जा रहे थे।



## सांदीपनि ऋषि के आश्रम में

वसुदेव ने अपने कुल-पुरोहित गर्गाचार्य को बुलावा भेजा और उनसे प्रार्थना की कि दोनों बालकों का उचित संस्कार कराएँ। गर्गाचार्य ने गायत्री मंत्र की दीक्षा से विधिपूर्वक दोनों बालकों को यज्ञोपवीत धारण कराया। संसार को दिखाने के लिए श्रीहरि ने वे सब कार्य किए जो मनुष्य को करने होते हैं। गर्गाचार्यजी से सलाह करके वसुदेव ने दोनों बालकों को उज्जयनी में विद्वान् ब्राह्मण सांदीपनि ऋषि के पास अध्ययन के लिए भेज दिया। श्रीकृष्ण-बलराम ने गुरुजी के आश्रम में रहकर गुरु एवं गुरुपत्नी की सेवा करते हुए चारों वेद, उपनिषदों, शास्त्र-पुराणों, मीमांसा, न्याय आदि की शिक्षा ग्रहण की। साथ ही राजनीति एवं योग आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया। गुरु के एक बार कथन मात्र से उन्होंने चौंसठ कलाएँ केवल चौंसठ दिन-रात में ही प्राप्त कर लीं। विद्याओं में पारंगत होकर कृष्ण ने गुरुचरणों में नम्रतापूर्वक प्रार्थना की, “आपकी जो इच्छा हो, वह गुरुदक्षिणा में देने की हमें आज्ञा करें।” सांदीपनि परमज्ञानी थे। वे श्रीकृष्ण-बलराम की महिमा जानते थे। उन्होंने अपनी पत्नी से सलाह करके दोनों पराक्रमी शिष्यों से कहा, “प्रभास क्षेत्र में हमारा पुत्र समुद्र में डूब गया था उसे ही वापस ला दो।”

दोनों भाई उसी समय प्रभासक्षेत्र के लिए चल पड़े। दोनों समुद्र के किनारे बैठ गए। सागर ने भगवान् कृष्ण-बलराम को देखा तो हाथ जोड़कर उनकी पूजा करने उपस्थित हो गया। भगवान् ने कहा, “समुद्रदेव! आपने हमारे गुरुपुत्र को छिपा लिया है। उसे वापस दे दो।”

सागर ने कहा, “देवाधिदेव! आपके गुरुपुत्र को मैंने नहीं छिपाया है। मेरे उदर में पंचजन नाम का एक दैत्य है। वह शंख के रूप में है। उसीने गुरुपुत्र को चुरा लिया है।”

सुनते ही श्रीकृष्ण समुद्रगर्भ में घुस गए। शंखरूपी पंचजन दैत्य को मारकर उसके उदर में देखा, लेकिन गुरुपुत्र नहीं मिला। श्रीकृष्ण पांचजन्य शंख को लेकर यमलोक जा पहुँचे। यमराज ने देखा, भगवान् श्रीकृष्ण आए हैं तो हाथ जोड़कर बोले, “देवाधिदेव! मैं क्या सेवा करूँ?”

श्रीकृष्ण ने कहा, “यमराज! आप मेरे गुरुपुत्र को ले आए हैं। उसे अपने पाश से मुक्त करके हमें लौटा दो। यमराज ने तत्काल गुरुपुत्र को मुक्त कर दिया। श्रीकृष्ण उसे लेकर बलराम के साथ गुरु के आश्रम में आए। गुरु-पुत्र को सौंपते हुए दोनों भाइयों ने विनयपूर्वक कहा, “गुरुजी! आप बिना संकोच हमसे कुछ और माँग लें।” गुरु ने कहा, “मैं जगत् के साक्षात् स्वामी का गुरु हूँ। मेरे लिए अब क्या माँगना शेष है? मैं आकंठ तृप्त हूँ। तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली कीर्ति तुम्हें प्राप्त हो!” गुरुजी की आज्ञा एवं आशीर्वाद लेकर कृष्ण-बलराम अपने माता-पिता के पास मथुरा लौट आए। मथुरावासी उनके दर्शन से परमानंद में मग्न हो गए।



## उद्धवजी व्रज में

**श्री**कृष्ण ने अपने प्यारे सखा उद्धवजी को एक दिन एकांत में ले जाकर कहा, “वृष्णिवंशियों में प्रधानपुरुष, बृहस्पतिजी के शिष्य एवं परमबुद्धिमान् मित्र उद्धव! मुझे आज मेरे व्रजवासी भक्त, मेरे माता-पिता—यशोदा मैया और नंद बाबा तथा मेरी अतिप्रिय गोपियाँ बहुत याद आ रही हैं। आप मेरे मित्र हैं। मेरी बात समझ गए होंगे। आप व्रज में जाकर मेरी प्रियतमाओं, माता-पिता तथा सखाओं को मेरी भावना, मेरे प्रेम को समझाकर सांत्वना दे आइए। वे मेरे वियोग में व्याकुल हो रहे होंगे।”

कृष्ण की आज्ञा मानकर उद्धव तत्काल रथ पर सवार हो गए। सूर्यास्त होते-होते वे नंदग्राम पहुँच गए। व्रज की धूलि से उनका रथ और वे स्वयं भी ढक गए थे। व्रज की शोभा, वहाँ के वन, पशु-पक्षी एवं वातावरण की सुगंध मोहित करनेवाली थी। उद्धवजी का रथ नंद के द्वार पर आकर रुका। नंदजी ने देखा कि कन्हैया के प्यारे सखा उद्धव रथ से उतर रहे हैं तो हर्षित होकर आगे बढ़े और उद्धव को गले लगा लिया। नंद बाबा को यही लगा मानो वे अपने लाला श्यामसुंदर को ही गले लगा रहे हों। नंद बाबा ने उद्धव का खूब स्वागत-सत्कार किया। पंखा झलकर सेवकों ने उनके पैर दबाए।

उद्धव और नंद बाबा भोजन करने बैठे। नंद ने प्रेम से पूछा, “उद्धव हमारे मित्र वसुदेव तो अब बंदीगृह से छूट गए हैं। उनके कुटुंबीजन प्रसन्न तो हैं न? कभी हमारी याद करते हैं? मेरे कृष्ण-बलराम क्या वास्तव में प्रसन्न रहते हैं? अपनी माता यशोदा, सखा, गौएँ, व्रज, गोवर्धन—सभी उनको याद करते हैं। क्या मेरे प्यारे कृष्ण को कभी हमारी याद आती है? वे कभी यहाँ आएँगे क्या?” कहते-कहते नंद का कंठ भर आया। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

यशोदा मैया भी वहीं बैठी आँसू बहाती सब सुन रही थीं। उनकी दशा तो बहुत ही शोचनीय थी। उद्धव ने यह देखकर अनुभव किया कि कितना अगाध प्रेम है इन माता-पिता का कृष्ण के प्रति! भावातिरेक में भरकर उद्धव ने नंद बाबा और यशोदा मैया को प्रणाम करके कहा, “पूज्यवर! आपके इस अक्षय स्नेह-वात्सल्य के आगे अब कुछ भी शेष नहीं है। कृष्ण अवश्य ही यहाँ आएँगे। कृष्ण सदैव आपके निकट ही हैं। नंदजी, वे केवल आपके पुत्र ही नहीं हैं, वे तो परमब्रह्म सत्य हैं।”

इसी तरह की बातों में सारी रात बीत गई। सुबह के झुटपुटे में गोपियाँ उठीं। दीपक जलाए। घर-आँगन को झाड़-बुहारकर वे दही मथने लगीं। साथ ही अपने प्यारे कृष्ण के मंगलमय चरित्र का बखान करती जाती थीं।

### भ्रमर गीत

जब सूर्योदय हुआ तो व्रजबालाओं ने घर के बाहर निकलकर देखा—नंद बाबा के द्वार पर सोने का रथ खड़ा है। और सुना कि कृष्ण के प्यारे सखा उद्धव आए हैं। वे बड़ी व्याकुलता से एक-दूसरी से कहने लगीं, “कहीं वह अक्रूर ही तो पुनः नहीं आ गया! अब क्या रखा है यहाँ! क्या अब हमको पकड़कर ले जाएगा और अपने स्वामी कंस का पिंडदान कराएगा?”

व्रजबालाओं के कटाक्षपूर्ण उपालंभ चल रहे थे, इसी बीच उद्धव आकर वहाँ खड़े हो गए। भगवान् कृष्ण जैसी वेशभूषावाले पुरुष को देखकर गोपियों को अत्यंत आश्चर्य हुआ। वे उद्धव का परिचय प्राप्त करने के लिए उनके आसपास मँडराने लगीं। जब उन्हें पता चला कि ये तो कृष्ण के वही सखा उद्धव हैं जो हमारे लिए प्रियतम का

संदेशा लेकर आए हैं, तो उनका सत्कार करती हुई बोलीं, “हमारे प्रियतम तो शीघ्र ही आने को कहकर गए थे। अब वे क्यों आने लगे? उन्हें हमारी याद क्यों आएगी? यहाँ रखा भी क्या है? याद आती भी होगी तो अपनी मैया-बाबा की! हमसे उनका क्या संबंध? वहाँ नगर की सुंदर नारियों ने मन मोह लिया होगा! हम तो ठहराँ गँवार गोपियाँ। हमारे प्रेम को वे क्या समझेंगे?”

विलाप करती गोपियाँ उन्मत्त-सी हो गईं। अब उनको हमारी सुध क्यों होने लगी! हम भोली-भाली ब्रजवासिन गोपियाँ तो कृष्ण की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गईं। वह कपटी हमको रोता-बिलखता छोड़कर चला गया।

गोपियों की व्यथा, उनकी वियोग भरी बातें सुनकर उद्धव रोमांचित हो गए। उन्होंने गोपियों के प्रेम का वह स्वरूप देखा जो किसी योगी, मुनि, ऋषि ने भी भगवान् के प्रति प्रकट नहीं किया होगा। वे गद्गद होकर बोले, “हे गोपियो! तुम धन्य हो! तुम्हारा जीवन धन्य है! तुम्हारा कृष्ण-प्रेम अभूतपूर्व है! मैं तुम्हारे प्रियतम का दूत हूँ। तुम्हें उनका संदेशा देने ही यहाँ आया हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं संपूर्ण विश्व की आत्मा हूँ। सबमें व्याप्त हूँ और तुम्हारे अंतर में भी समाया हुआ हूँ। यह सत्य है कि मैं तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ और तुमको अति प्रिय हूँ। तुमसे मैं दूर हूँ। तुम मेरे वियोग में मेरे लिए ही जी रही हो। मेरे में ही लीन हो और मेरे ही निकट हो। तुम निराश न होओ, मैं तुम्हें अवश्य ही मिलूँगा।”

श्रीकृष्ण का यह संदेश सुनकर गोपियाँ अति प्रसन्न हुईं। वे कृष्णलीला का गुणगान करती जातीं और उद्धव के प्रति आभार भी व्यक्त करतीं। उद्धव उनकी भावावेश से परिपूर्ण चेष्टाएँ और कृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम देखकर स्वयं भी प्रेममग्न हो गए। उद्धव महीनों ब्रज में ही रहे। कृष्ण गुणगान सुनते-सुनते वे ब्रजभूमि में तल्लीन हो गए। अंततः एक दिन उद्धव ब्रजवासियों और गोपों-गोपियों से विदा लेकर यशोदा मैया और नंद बाबा द्वारा दी गई भेंट लेकर मथुरा रवाना हो गए। वहाँ जाकर उन्होंने सब भेंट-सामग्री उग्रसेन, कृष्ण और बलराम के सन्मुख रख दी।

## कुब्जा के कृष्ण

अपने प्रेमीजनों की इच्छा पूर्ण करनेवाले कृष्ण क्या मथुरा में भी चुप बैठ सकते थे! उद्धव ने जब ब्रज से लौटकर वहाँ का वर्णन सुनाया तो कृष्ण का मन चंचल हो उठा। उन्हें कुब्जा को दिए गए वचन याद आए। श्रीकृष्ण कुब्जा के घर जा पहुँचे। वह तो नित्य ही कृष्ण भगवान् की प्रतीक्षा में द्वार पर टकटकी लगाए बैठी रहती थी। ज्योंही श्रीकृष्ण भगवान् को द्वार पर देखा, कुब्जा आनंद से सिहर उठी। उसने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण का स्वागत-सत्कार किया। उद्धव भी साथ थे। कुब्जा ने उन्हें भी सुंदर आसन दिया। भगवान् तो कुब्जा की सेज पर ही जाकर बैठ गए। कुब्जा वस्त्राभूषणों से सजकर लजाती हुई कृष्ण के निकट गई। कृष्ण ने कुब्जा की व्यथा अनुभव की। उसे तृप्त करके वे बलदाऊ तथा उद्धव को साथ लेकर अक्रूर के घर जा पहुँचे। अक्रूरजी ने भाव-विभोर होकर भगवान् के चरण पकड़ लिये। उनका आलिंगन किया और घर के अंदर ले जाकर बड़े प्रेम से बोले, “आपने आज मेरा यह निवास पवित्र कर दिया है! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?”

श्रीकृष्ण ने कहा, “चाचाजी, आप हमारे गुरु एवं परम हितैषी हैं। हम आपके बालक हैं। आपके कृपापात्र हैं। मेरा विचार है कि आप हस्तिनापुर जाएँ। हमारी बुआ कुंती और उनके पुत्रों को धृतराष्ट्र-पुत्र कौरव राजा पांडु की मृत्यु के बाद से बड़ा दुःख दे रहे हैं। दुर्योधन अति दुष्ट है। आप वहाँ जाकर सारी स्थिति देखकर आएँ।”

## पांडवों के प्रति स्नेह

अक्रूर हस्तिनापुर पहुँचकर समस्त गुरुजनों, धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य तथा कौरवों-पांडवों आदि से मिले। फिर वे कुंती से भी मिलने गए। सबको मथुरा के कुशल समाचार सुनाए और वहाँ के हाल-चाल पूछे।



कुंती भाई को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। अक्रूर का स्वागत-सत्कार करके वे प्रेमभाव से पूछने लगीं, “भाई, क्या मुझे वहाँ याद करते हैं? सखी-सहेलियाँ और बहनें मुझे कभी-कभी तो स्मरण करती होंगी! मेरे प्रिय भतीजे कृष्ण-बलराम अपनी बुआ और फुफेरे भाइयों के विषय में पूछते हैं, याद करते हैं?”

कुंती के नेत्रों में आँसू भर आए। उन्होंने बताया कि बिना पिता के मेरे इन पुत्रों को कौरव बहुत दुःख दे रहे हैं। मेरे पुत्रों के बल-पौरुष तथा विद्या-बुद्धि से सभी भाई बहुत जलते हैं। उनको सदैव मार डालने का ही विचार करते रहते हैं। उनके अत्याचार तो बहुत ही बढ़ रहे हैं। कुंती फूट-फूटकर रो पड़ीं। फिर बोलीं, “कृष्ण-बलराम से कहना कि वे ही अपने भाइयों की रक्षा करें!”

अक्रूर एवं विदुर ने कुंती को सांत्वना दी। धृतराष्ट्र पुत्रमोह से ग्रस्त थे और भाई पांडु के पुत्रों के प्रति भेदभाव रखते थे। दुर्योधन एवं शकुनी के दुराग्रही व निष्ठुर व्यवहार के वशीभूत होकर वे कर्तव्य से विमुख हो गए थे। पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए अक्रूर काफी समय तक वहीं रहे। जब वे मथुरा जाने लगे तो धृतराष्ट्र से बोले, “कुरुश्रेष्ठ, आप पांडु के परलोक जाने पर ही सिंहासन के अधिकारी हुए हैं। पांडवों के समर्थ होने तक आप समान भाव से उनका पालन करें और उनके वयस्क हो जाने पर उनका राज्य उनको सौंप दें। आप जानते ही हैं, जो धर्म से विमुख आचरण करता है वह महापाप का भागी बनता है। आप पक्षपातरहित होकर अपने तथा पांडुपुत्रों के साथ समान व्यवहार करें।”

अक्रूर की बातों का धृतराष्ट्र के आचरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे बोले, “मेरा चित्त चंचल हो रहा है। पुत्रमोह से इतना विषम हो गया है कि आपका यह उपदेश मेरे मन पर कहीं असर नहीं कर रहा है। अब जो होना है, सो होगा। सर्वशक्तिमान् भगवान् ने यदुकुल में जन्म लिया है, उनकी जो इच्छा होगी, वही होगा। आप उनको मेरा नमस्कार कह देना।”

अक्रूर ने धृतराष्ट्र का अभिप्राय समझ लिया था। वे बहन कुंती से विदा लेकर मथुरा के लिए रवाना हो गए। उन्होंने श्रीकृष्ण-बलराम को कुंती, पांडवों तथा धृतराष्ट्र के विषय में सबकुछ कह सुनाया।



## जरासंध का आक्रमण

**कंस** की दोनों पत्नियाँ मगधराज जरासंध की पुत्रियाँ थीं। कंस की मृत्यु के बाद वे अपने पिता के यहाँ चली गईं। अपनी पुत्रियों के वैधव्य की सूचना पाकर जरासंध को घोर दुःख हुआ। अत्यंत क्रोधित होकर उसने यदुवंश के नाश का प्रण कर लिया। उसने अपनी विशाल सेना लेकर मथुरा को चारों ओर से घेर लिया।

श्रीकृष्ण ने तो अवतार ही पृथ्वी का भार उतारने के लिए लिया था। जब जरासंध जैसा पापी राजा स्वयं ही असुरों को इकट्ठा करके लाया है तो जिस काम के लिए अवतरित हुए हैं, उसे करना चाहिए। इसी विचार के साथ श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप का ध्यान किया। भगवान् के दो दिव्य रथ आकाश से उतरे। उनमें भगवान् के आयुध—चक्र, गदा, धनुष, तरकश आदि तथा बलराम के हल और मूसल थे।

दोनों भाई शस्त्रों से सुसज्जित होकर रथों पर बैठे। श्रीकृष्ण के रथ पर गरुड की ध्वजा थी और बलराम के रथ पर तालध्वजा। नगर से बाहर निकलते ही श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख बजाया। शंख की भयानक ध्वनि से शत्रुओं के हृदय काँप उठे।

जरासंध ने आगे बढ़कर कहा, “मुझे तेरे साथ लड़ने में लाज आती है। तू अपने मामा का हत्यारा है। मैं तेरे साथ नहीं लड़ूँगा। बलराम, यदि तुममें हिम्मत है तो आ जा। तेरे साथ मैं लड़ूँगा। या तो मैं मरूँगा या तुझे मारूँगा।”

श्रीकृष्ण ने कहा, “वीर पुरुष इतना बढ़-बढ़कर नहीं बोला करते।”

कृष्ण-बलराम की सेना जरासंध की महासमुद्र-जैसी सेना के सामने बहुत ही छोटी थी, फिर भी दोनों भाइयों ने जरासंध की सेना को तहस-नहस कर दिया। भगवान् कृष्ण के धनुष से अनगिनत बाण निकल रहे थे। बलराम के हल-मूसल से बड़े-बड़े वीरों का मर्दन हो रहा था। जरासंध की संपूर्ण सेना का नाश हो गया, तब बलरामजी ने जरासंध को बाँधकर श्रीकृष्ण के चरणों में डाल दिया। श्रीकृष्ण ने सोचा, इसे छोड़ ही देना चाहिए ताकि यह बार-बार सेना लेकर आए और मैं उसका नाश करता रहूँ। पृथ्वी का भार हलका हो जाएगा। इसलिए कृष्ण ने उसकी उपेक्षा के साथ उसे छोड़ दिया।

जरासंध लज्जित होकर अपनी राजधानी लौट आया। जरासंध के साथी राजाओं ने उसे समझा-बुझाकर पुनः मथुरा पर आक्रमण करने की सलाह दी।

इस तरह जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया। हर बार श्रीकृष्ण ने उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। अठारहवीं बार प्रबल आक्रमण करने के विचार से जरासंध ने खूब भारी तैयारी करके राजधानी से कूच किया। उसी समय नारद द्वारा भेजा हुआ कालयवन अपने तीन करोड़ म्लेच्छों के साथ मथुरा पर चढ़ आया।

श्रीकृष्ण-बलराम ने रणनीति तैयार कर ली—एक ओर कालयवन था तो दूसरी ओर जरासंध। ऐसे में यदि एक ओर से ध्यान हट गया तो हमारे बंधु-बंधव मारे जाएँगे, यह सोचकर दोनों भाइयों ने समुद्र के भीतर एक विशाल नगर बनवाया, जिसमें वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती थी। भगवान् के स्मरण करते ही विश्वकर्मा ने द्वारिकापुरी का निर्माण कर दिया और रातोंरात समस्त मथुरावासियों को सोते हुए ही उसमें पहुँचा दिया। विश्वकर्मा ने दिव्य नगर बनाया था। इंद्र ने सुधर्मा सभा भेज दी। उस सभा में बैठकर भूख-प्यास तथा अधर्म छू भी नहीं सकते थे।

श्रीकृष्ण बलराम के साथ बिना शस्त्र धारण किए ही मथुरा के विशाल द्वार से निकले।

कालयवन ने एक दिव्य, अद्भुत पुरुष को देखा तो उसने शीघ्र ही पहचान लिया कि यही वासुदेव है! यह बिना शस्त्र के ही इधर आ रहा है! कालयवन कृष्ण की ओर दौड़ा। कृष्ण ने उसे देखा तो रण छोड़कर दूसरी ओर मुँह

करके भाग निकले। आगे-आगे रणछोड़नाथ, पीछे-पीछे कालयवन। कृष्ण भागते-भागते एक गुफा में घुस गए। कालयवन भी पीछे-पीछे गुफा में गया। वह चिल्ला रहा था, “अरे, अपने आपको वीर पुरुष कहलाता है, अब रण छोड़कर क्यों भाग रहा है?”

उस गुफा में एक पुरुष सो रहा था। श्रीकृष्ण ने अपना दुपट्टा उसपर ओढ़ा दिया और स्वयं एक खंभे की ओट में छिप गए। कालयवन ने देखा तो सोचा—कृष्ण ही यहाँ छिपकर सो गया है। उसने एक लात सोए हुए पुरुष पर जमा दी। वह पुरुष क्रोध से उठ बैठा। उसने कालयवन की ओर दृष्टि डाली। कालयवन उसी समय भस्म हो गया। वह इक्ष्वाकुवंश के मुचुकुंद नामक प्रतापी राजा थे। जब देवासुर संग्राम चल रहा था, उस समय राजा मुचुकुंद ने देवताओं की बहुत समय तक रक्षा की थी। इंद्र ने उस समय राजा को कहा था कि मोक्ष के अतिरिक्त आप जो भी माँगेंगे हम वही आपको देंगे। राजा मुचुकुंद ने निद्रा का ही वर माँगा था। देवताओं ने उन्हें विश्राम करने के लिए निद्रा का वरदान दिया और कहा था—“तुम्हारी निद्रा भंग करनेवाला अपने-आप भस्म हो जाएगा।”

कालयवन के भस्म हो जाने पर श्रीकृष्ण भगवान् ने राजा मुचुकुंद को दर्शन दिए और उन्हें ज्ञानोपदेश देकर परमपद प्राप्त करने का वर दिया। मुचुकुंद बदरिकाश्रम में जाकर भगवान् की आराधना करने लगे।

कृष्ण मथुरा लौट आए; उन्होंने कालयवन की सेना का संहार किया और सारा धन छीनकर द्वारिका चलने की तैयारी करने लगे। इतने में जरासंध अपनी विशाल सेना के साथ अठारहवीं बार मथुरा पर आक्रमण के लिए आ धमका। श्रीकृष्ण ने ऐसा दिखावा किया जैसे वे भयभीत हो गए हों और रथ, धन आदि छोड़कर पैदल ही भागने लगे। जरासंध भी उनके पीछे भागा। भागते-भागते कृष्ण ऊँचे पर्वण पर्वत पर चढ़ गए। जरासंध ने खूब ढूँढ़ा, लेकिन उन्हें कृष्ण कहीं नजर नहीं आए। तब उसने पर्वत में आग लगा दी। कृष्ण ने देखा, पर्वत जल रहा है तो ऊपर से पृथ्वी पर कूद पड़े और समुद्र से घिरी द्वारिकापुरी में पहुँच गए। जरासंध ने समझा कृष्ण पर्वत की आग में जलकर भस्म हो गए; अतः अपनी राजधानी लौट आया।



## रुक्मिणी स्वयंवर

विदर्भ देश के राजा भीष्मक के पाँच पुत्र तथा एक अति सुंदर कन्या थी। सबसे बड़े पुत्र का नाम रुक्मी था। अन्य चारों के नाम थे—रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्माली। कन्या का नाम रुक्मिणी था, जो स्वयं लक्ष्मीजी का अवतार ही थीं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के रूप, गुण, सौंदर्य, पराक्रम एवं वैभव की प्रशंसा सुनी थी। उन्होंने निश्चय किया कि वह कृष्ण का ही पति रूप में वरण करेंगी। कृष्ण भी समझते थे कि सुंदर लक्षणोंवाली, बुद्धिमती एवं सौंदर्यवती रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी हो सकती हैं। रुक्मिणी के पिता एवं बंधु-बंधव भी मानते थे कि कृष्ण ही रुक्मिणी के योग्य पति हैं, लेकिन बड़े भाई रुक्मी को श्रीकृष्ण से बहुत चिढ़ थी। उसने रुक्मिणी का विवाह अपने मित्र शिशुपाल से करने का निश्चय कर लिया था।

रुक्मिणी को पता चला कि बड़ा भाई उसका विवाह कृष्ण से नहीं, शिशुपाल से करना चाहता है तो उन्होंने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को कृष्ण भगवान् के पास अपना गुप्त संदेश लेकर भेजा। ब्राह्मण देवता संदेश के साथ द्वारिकापुरी पहुँचे।

श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण का आतिथ्य एवं सेवा-सत्कार करके उनके आने का उद्देश्य पूछा। ब्राह्मण ने कहा, “मुझे विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी ने आपके पास भेजा है। उन्होंने संदेश दिया है—मैं अपना सर्वस्व आपको समर्पित करके पतिरूप में वरण करना चाहती हूँ। मेरा भाई मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहता है। मैंने आपको मन से पति स्वीकार कर लिया है, अतः आप मुझे अपने साथ ले जाइए। हमारी कुल परंपरा है कि विवाह के एक दिन पूर्व कन्या गिरिजादेवी की पूजा करने मंदिर जाती है। मैं भी मंदिर में पूजा के लिए आऊँगी। उसी समय आप मुझे अपने साथ ले चलिए!”

रुक्मिणी का संदेश सुनकर श्रीकृष्ण विचलित हो गए। उन्होंने रथ तैयार करने को कहा। ब्राह्मण से पूछा, “विवाह का मुहूर्त कब है?”

ब्राह्मण ने कहा, “विवाह तो परसों ही है।”

श्रीकृष्ण ने तत्काल ब्राह्मण को साथ लेकर विदर्भ के लिए प्रस्थान किया। एक ही रात में वे कुंतलपुर पहुँच गए। इधर राजा भीष्मक ने ज्येष्ठ पुत्र की बात मानकर शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह की तैयारी कर ली थी। बहुत बड़ा मंडप सजा दिया गया था। विविध रंगों की पताकाएँ फहरा रही थीं। तोरणद्वार बना दिए गए थे। घर-घर आँगन में रंगोली-चौक पूरे गए थे। स्वस्तिवाचन हो रहा था। रुक्मिणी को स्नान कराकर नए वस्त्र, मंगल-कंकण एवं आभूषणों से विभूषित किया गया।

शिशुपाल के पिता चेदिनरेश राजा दमघोष ने भी अपने पुत्र की बरात खूब सजाकर मंगलवाद्यों के साथ कुंतलपुर में प्रवेश किया। विदर्भनरेश ने बारात की अगवानी की। सत्कार के साथ सबको जनवासे में ठहरा दिया गया। बारात में शिशुपाल के सहस्रों मित्र आए थे। वे सभी कृष्ण-बलराम के घोर विरोधी थे। उनका निश्चय था कि राजकुमारी का विवाह शिशुपाल से होने में यदि कृष्ण-बलराम ने कोई विघ्न डाला तो सब मिलकर उनसे युद्ध करेंगे। इस तैयारी का पता बलराम को लगा। उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लाने ही गए हैं। भ्रातृस्नेहवश वे भी बड़ी भारी सेना लेकर कुंतलपुर के लिए रवाना हो गए।

रुक्मिणी चिंता में ब्राह्मण देवता की प्रतीक्षा कर रही थीं। इतने में राजकुमारी ने ब्राह्मण देवता को प्रसन्नमुख आते देखा। वह समझ गई कि भगवान् ने उसकी बात रख ली है, फिर भी वे ब्राह्मण के ही मुख से सारी बात सुनना

चाहती थीं।

ब्राह्मण ने कहा, “कृष्ण मेरे साथ ही आ गए हैं।”

रुक्मिणी ने कहा, “मुझे शुभ शकुन हो रहे थे, मैं समझ गई कि कृष्ण ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है।”

राजा भीष्मक ने सभी अतिथि राजाओं को आदर-सत्कार के साथ उत्तम स्थानों पर ठहराया। कृष्ण-बलराम के लिए भी श्रेष्ठ स्थान पर ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। श्रीकृष्ण के आगमन पर नगर में अति उत्साह व्याप्त हो गया। सभी उनके दर्शन के लिए लालायित हो रहे थे।

रुक्मिणी अपनी सखियों के साथ देवी मंदिर के लिए महल से बाहर निकलीं। बहुत सी ब्राह्मण पत्नियाँ और सेविकाएँ उनके साथ चल रही थीं। रुक्मिणी ने भगवान् शंकर तथा अंबिका की पूजा की। पूजा समाप्त होने पर रुक्मिणी ने ब्राह्मण पत्नियों की भी पूजा की और उनसे आशीर्वाद लिया। बाद में अपनी सखी का हाथ पकड़कर वे गिरिजा मंदिर से बाहर निकलीं। रुक्मिणी राजहंस की-सी मंद-मंद चाल से चल रही थीं। वे श्रीकृष्ण के शुभागमन की प्रतीक्षा करती हुई धीरे-धीरे पग बढ़ाती, इधर-उधर आँखें घुमाकर देखती चल रही थीं। सहसा ही श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। रुक्मिणी रथ पर चढ़ने के लिए पग उठा ही रही थीं कि देखते-ही-देखते श्रीकृष्ण ने भीड़ में से रुक्मिणी को उठाकर अपने रथ पर बिठा लिया और वेग से रथ हँकते हुए वहाँ से निकल गए। जरासंध आदि बलशाली नरेशों के देखते-देखते श्रीकृष्ण अपनी प्रिय रुक्मिणी का हरण करके सबके बीच में से ले गए।

सबके सब राजा क्रोध से आग बबूला हो गए और ललकारते हुए अपनी-अपनी सेना के साथ श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ पड़े। यदुवंशियों ने देखा कि शत्रु आक्रमण कर रहे हैं तो उन्होंने भी शस्त्र उठाकर मुकाबला किया।

रुक्मिणी रथ पर श्रीकृष्ण से सटकर बैठी थीं। श्रीकृष्ण अपने धनुष से बाणों की वर्षा कर रहे थे। रुक्मिणी भयभीत नेत्रों से श्रीकृष्ण की ओर देख रही थीं। श्रीकृष्ण ने प्रियतमा से कहा, “डरो मत, प्रिये! शत्रु अभी नष्ट हो जाएँगे।”

बलराम की बलशाली सेना ने शत्रु सेना को तहस-नहस कर डाला। यह देख जरासंध तथा उसके मित्र राजा युद्ध से पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए। शिशुपाल अपनी भावी वधू छिन जाने के कारण मरणासन्न हो रहा था। सब बराती सिर झुकाए अपने-अपने घरों को लौट गए।

रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी को कृष्ण से बड़ा द्वेष था। उससे सहा नहीं गया कि कृष्ण ने उसकी बहन रुक्मिणी का हरण किया है। उसने भी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया और सबके बीच प्रतिज्ञा की कि यदि वह कृष्ण को मारकर रुक्मिणी को वापस लेकर नहीं लौटा तो राजधानी कुंतलपुर में कभी प्रवेश नहीं करेगा। वह रथ पर सवार होकर सारथि से बोला, “जहाँ कृष्ण है, शीघ्र वहीं मेरा रथ ले चलो!”

बुद्धिहीन रुक्मी कृष्ण के प्रभाव को नहीं जानता था। कृष्ण के सामने पहुँचकर ललकारते हुए उसने कहा, “खड़ा रह! खड़ा रह!” धनुष से तीन बाण कृष्ण पर चलाए और बोला—“तू मेरी बहन को चुराकर कहाँ भाग रहा है? आज मैं तेरा नाश करने आया हूँ। छोड़ दे, मेरी बहन को!”

कृष्ण ने उसके बाणों को काटकर गिरा दिया। रुक्मी क्रोधावेश में तलवार उठाकर श्रीकृष्ण को मारने के लिए रथ से नीचे कूद पड़ा। कृष्ण ने उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उसे मारने के लिए हाथ में तीक्ष्ण तलवार उठा ली। रुक्मिणी घबरा उठीं—अब उनका भाई कृष्ण के हाथों मारा जाएगा! उन्होंने पति के चरणों में गिरकर भाई के प्राणों की भिक्षा माँगी। भगवान् ने रुक्मिणी की कातरता देखकर रुक्मी को छोड़ दिया। रुक्मी ने पुनः वार करने का उपक्रम किया तो कृष्ण ने उसे उसीके दुपट्टे से बाँध दिया। उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश काटकर उसे कुरूप बनाकर छोड़ दिया। यदुवंशी वीरों ने भी शत्रु सेना की गति बना दी थी। बलराम ने पास आकर रुक्मी की दुर्गति

देखी तो उन्हें दया आ गई। उन्होंने रुक्मी के हाथ-पैर खोलकर उसे छोड़ दिया।

बलराम ने कृष्ण से कहा, “तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह निंदित कार्य हम लोगों के योग्य नहीं है। अपने संबंधी को यों कुरूप कर देना एक प्रकार से उसका वध करना ही हुआ। जो अपने अपराध से ही मर चुका है, उस मरे हुए को क्या मरना!” बलराम ने रुक्मिणी से कहा, “देवी! ब्रह्मा ने क्षत्रिय धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई अपने भाई को ही मार डालता है! तुम शोक न करो।”

रुक्मी अत्यंत लज्जित एवं अपमानित होकर वहाँ से चला आया; किंतु लौटकर राजधानी कुंतलपुर नहीं गया। अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करके उसने भोजकट नाम की नगरी बसाई और वहीं रहने लगा। श्रीकृष्णजी ने द्वारिकापुरी में जाकर विदर्भ राजकुमारी रुक्मिणी से विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। भगवती लक्ष्मीजी को रुक्मिणी के रूप में लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर द्वारिकावासी परम हर्षित हुए। सारा नगर उत्सव मनाने लगा।



## कामदेव का पुनर्जन्म

एक बार भगवान् शंकर ने कामदेव को शाप देकर भस्म कर दिया था, तब कामदेव की पत्नी रति ने शिव-पार्वती की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया और अपने पति को जीवित करने का वरदान माँगा। पार्वती ने रति पर कृपा करके कहा, “तुम्हारा पति यदुकुल में भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में जन्म लेगा। तुम्हें तुम्हारा पति शंबरासुर राक्षस के यहाँ मिलेगा। तुम वहीं जाकर उसकी प्रतीक्षा करो।”

रति शंबरासुर के यहाँ दासी के रूप में रहने लगी। तभी से वह पति की प्रतीक्षा करती रही।

कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह किया और सांसारिक जीवनलीला प्रारंभ कर दी। रुक्मिणी के गर्भ से कामदेव का पुनर्जन्म हुआ। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न नाम से जगत् में प्रसिद्ध हुए। प्रद्युम्न भगवान् कृष्ण के प्रतिच्छवि ही थे। बालक अभी दस दिन का भी नहीं हुआ था कि शंबरासुर ने सूतिकागृह से ही शिशु को चुराकर समुद्र में फेंक दिया। समुद्र की एक मछली उस बालक को निगल गई। उस मछली को भी एक बड़े मच्छ ने निगल लिया। एक मछुए के जाल में वह मच्छ फँस गया। मछुए ने घर ले जाकर मच्छ का पेट चीरा तो उसमें से एक बहुत ही सुंदर शिशु निकला। उसको देखकर शंबरासुर की दासी मायावती (रति) आश्चर्यचकित रह गई—उसने अपने पति को पहचान लिया था! उसने मछुए से बालक को माँग लिया और उसे पालने लगी।

देवर्षि नारद घूमते-घूमते वहाँ भी पहुँच गए। उन्होंने मायावती से कहा, “मायावती, यह तेरा पति कामदेव ही है। इसने यदुकुल में भगवान् कृष्ण के यहाँ जन्म लिया है।”

प्रद्युम्न थोड़े ही समय में बड़े हो गए। युवा प्रद्युम्न का सौंदर्य-लावण्य कृष्ण भगवान् की तरह ही मोहक था। रति पतिभाव मन में रखकर ही उनकी ओर देखती थी। वह इस प्रकार रहती कि उनकी पत्नी ही हो! प्रद्युम्न ने एक दिन मायावती से कहा, “तुम मेरी माँ हो, फिर तुम्हारे ये हाव-भाव ऐसे क्यों हैं?” तब मायावती ने कहा, “तुम मेरे पुत्र नहीं, पति हो!” मायावती ने उन्हें महाविद्या सिखाई। उन्हें बताया कि जब आप दस दिन के थे, तभी शंबरासुर चुरा ले गया था। वह सैकड़ों प्रकार की माया जानता है, अतः आप चतुराई से इस मोहन विद्या से उसका नाश कर दें। आपकी माता आपके खो जाने पर बहुत व्याकुल रहती हैं।” प्रद्युम्न ने मायावती से अपने जन्म से लेकर अब तक की सारी कहानी सुनी तो वे शंबरासुर के सामने आकर उसे ललकारने लगे। प्रद्युम्न के कटु कटाक्षों से आहत होकर शंबरासुर हाथ में गदा लेकर बाहर निकला। उसने प्रद्युम्न पर गदा से प्रहार किया। गदा के वेग को भाँपकर प्रद्युम्न ने अपनी गदा के प्रहार से उसकी गदा गिरा दी और असुर पर घातक प्रहार करने लगे। आसुरी माया से शंबरासुर आकाश में उड़ गया। प्रद्युम्न ने महाविद्या के प्रयोग से उसकी माया के साथ-साथ उसका भी नाश कर दिया। शंबरासुर का सिर कटा धड़ पृथ्वी पर एक ओर तथा सिर दूसरी ओर गिरा। प्रद्युम्न ने मायावती (रति) को अपने साथ द्वारिकापुरी चलने को कहा तो वह अपनी माया से प्रद्युम्न को आकाश मार्ग से द्वारिकापुरी ले गई।

नव दंपती अपने नगर में महल के द्वार पर पहुँचे। सब आश्चर्यचकित रह गए। कृष्ण इस सुंदर स्त्री को लेकर कहाँ से आ रहे हैं! उसी समय रुक्मिणी भी वहाँ आईं! वे भी एक बार तो उन्हें देखकर चकित-सी रह गईं। वे गद्गद होकर सोचने लगीं—इस पुरुष को देखकर मेरी छाती में दूध भर आया। कहीं यह मेरा खोया हुआ पुत्र ही तो नहीं है! वे भ्रमित-सी हो ही रही थीं कि कृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव एवं बड़े भैया बलराम के साथ वहाँ आकर चुपचाप खड़े हो गए। नारद ऐसे मौके पर कहाँ चूकते, वे भी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने सभी को बताया कि बालक का हरण कैसे हुआ और अब तक वह कहाँ-कहाँ, क्या-क्या करते हुए द्वारिकापुरी पहुँचा है। यह सुनकर सभी अति

प्रसन्न हुए। देवकी-वसुदेव, भगवान् कृष्ण, बलराम तथा सभी माताओं ने नव दंपती को आशीर्वाद दिया। द्वारिकापुरी में उत्सव मनाया जाने लगा।





## स्यमंतक मणि की कथा

सत्राजित नामक एक यादव योद्धा ने सूर्य भगवान् की कठिन तपस्या की। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे स्यमंतक नामक प्रकाशवान् मणि दी। सत्राजित उस मणि को गले में पहनकर घूमता था। एक दिन कृष्ण चौसर खेल रहे थे। सामने से प्रकाशमान पुरुष आ रहा था, मानो स्वयं सूर्यदेव हों। यादवों ने श्रीकृष्ण से कहा—यह तो स्यमंतक मणि पहनकर सत्राजित आ रहे हैं।

उस मणि की महिमा केवल प्रकाश ही नहीं था, वह मणि नित्यप्रति आठ भार सोना भी देती थी। लोग आपस में मणि की चर्चा कर रहे थे। सत्राजित भी वहीं आकर खड़ा हो गया। यादवों ने सत्राजित को सलाह दी कि यह दिव्यमणि तो राजा के पास होनी चाहिए, तुम इसे राजा उग्रसेन को भेंट कर दो। सत्राजित को यह बात अरुचिकर लगी। कृष्ण ने उसे सलाह दी कि मणि तो तुम पहने रहो; किंतु इससे दिन में प्राप्त होनेवाला सोना तुम्हें राजकोष में जमा करवा देना उचित रहेगा।

सत्राजित को यह बात भी नहीं भाई। वह वहाँ से चला गया।

एक दिन सत्राजित का छोटा भाई प्रसेनजित उस मणि को पहनकर शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह ने प्रसेनजित तथा उसके घोड़े को मार डाला और वह मणि छीन ली। सिंह को ऋक्षराज जांबवंत ने मार डाला और स्यमंतक मणि उससे छीनकर अपनी गुफा में बच्चों को खेलने के लिए दे दी।

इधर प्रसेनजित के शिकार से न लौटने पर सत्राजित को बहुत दुःख हुआ। वह रोते हुए कहने लगा, “दिव्य स्यमंतक मणि के लालच में अवश्य ही कृष्ण ने मेरे भाई की हत्या कर दी तथा मणि छीन ली।”

सत्राजित के इस आरोप की चारों ओर चर्चा होने लगी। कृष्ण ने भी लोगों को कानाफूसी करते सुना कि उनपर चोरी का कलंक लगाया गया है। अपने ऊपर लगा मिथ्या कलंक हटाने के लिए कृष्ण कुछ साथियों को लेकर प्रसेनजित एवं मणि को खोजने निकले। कृष्ण ने वन में प्रसेनजित तथा घोड़े के मरने के चिह्न देखे फिर सिंह के पंजों के चिह्न देखते-देखते वे एक गुफा तक पहुँचे। कृष्ण ने अपने साथियों को गुफा के बाहर ही रुकने को कहकर स्वयं अंदर प्रवेश किया। वहाँ बच्चे उस मणि से खेल रहे थे। कृष्ण को देखकर बच्चे भयभीत होकर चिल्लाए। उनकी आवाज से जांबवंत क्रोधित होकर दौड़ा। कृष्ण की महिमा जाने बिना ही जांबवंत उनपर टूट पड़े। दोनों में युद्ध शुरू हो गया और पूरे अट्ठाइस दिन तक युद्ध चलता रहा।

गुफा के बाहर खड़े कृष्ण के साथियों ने बारह दिन तक उनकी प्रतीक्षा की। अंत में यह समझकर कि कृष्ण को किसी वन्य पशु ने मार डाला होगा, वे नगर को लौट आए।

जांबवंत कृष्ण के प्रबल प्रहारों से परास्त हो गया। तब उसने अपने आराध्य ‘भगवान् रामचंद्र’ का स्मरण किया। कृष्ण ने तत्काल ‘राम’ के रूप में प्रकट होकर जांबवंत को दर्शन दिए। जांबवंत ने तुरंत प्रभु के चरणों में झुककर प्रणाम करते हुए कहा, “मैंने सुना है कि आपने यदुकुल में जन्म लिया है। आप मेरे राम ही हैं जो इस युग में कृष्ण बनकर आए हैं।” जांबवंत ने भगवान् को पहचान लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना हाथ उसके शरीर पर फेरा और कहा, “जांबवंत, स्यमंतक मणि के लिए ही मैं इस गुफा में आया हूँ। मेरे ऊपर इस मणि को चुराने का कलंक लगा है। अपना कलंक मिटाने के लिए मैं इसे ले जाना चाहता हूँ।”

जांबवंत ने कहा, “भगवान्, आपकी माया आप ही जानें। मैं आपको अपनी पुत्री जांबवती भी समर्पित करना चाहता हूँ।” कृष्ण की स्वीकृति पाकर जांबवंत ने अपनी पुत्री का विवाह भगवान् कृष्ण से कर दिया और स्यमंतक

मणि देकर पुत्री को विदा किया। श्रीकृष्ण ने अपनी नववधू जांबवती के साथ नगर में प्रवेश किया। द्वारिकावासी श्रीकृष्ण एवं नववधू को देखकर अति प्रसन्न हुए।

कृष्ण ने राजसभा में सत्राजित को बुलवाया और संपूर्ण कथा दरबार में सुनाई कि वे स्यमंतक मणि कैसे वापस लाए हैं। कृष्ण ने वह स्यमंतक मणि भरी सभा में सत्राजित को दे दी। सत्राजित ने मणि ले तो ली, लेकिन अपराध-बोध से वह बहुत लज्जित हुआ। वह निरंतर सोचता रहता कि मैं इससे कैसे मुक्त हो सकूँगा। पश्चात्ताप करते-करते उसके मन में विचार आया कि अपनी सर्वांगसुंदरी पुत्री सत्यभामा का विवाह यदि मैं कृष्ण से कर दूँ तो मेरी अपराध भावना अवश्य समाप्त हो जाएगी। उसने मन-ही-मन यह संकल्प कर लिया। कृष्ण से मिलकर सत्राजित ने अपना संकल्प दोहरा दिया। कृष्ण ने प्रसन्न होकर सत्यभामा का पाणिग्रहण किया।

पुत्री की विदाई के समय सत्राजित ने बहुत ही विनय-प्रार्थना करके स्यमंतक मणि भी उन्हें भेंटस्वरूप दी। भगवान् ने हाथ जोड़कर सत्राजित से कहा, “यह मणि आप ही के पास रहनी चाहिए, इसका फल जो सोना प्राप्त होता है, राज्य केवल उसीका ही अधिकारी है। आप सिर्फ वह स्वर्ण ही राजकोष में दिया करें।” यह कहकर कृष्ण सत्यभामा को लेकर अपने भवन में आ गए। नगरवासियों ने नव दंपती का खूब स्वागत-सत्कार किया। स्यमंतक मणि की कथा यहीं समाप्त नहीं हुई। इस मणि के पीछे विपत्तियाँ-ही-विपत्तियाँ मँडराती रहती थीं।

एक बार कृष्ण और बलराम, दोनों भाई पांडवों की कुशलक्षेम पूछने के लिए तथा अपनी बुआ कुंती से मिलने हस्तिनापुर गए थे। मौका देखकर अक्रूर और कृतवर्मा ने स्यमंतक मणि पर अधिकार करने का विचार किया। उन्होंने क्रूर एवं पापी शतधन्वा को बहकाया कि सत्यभामा का विवाह तुमसे होना था, किंतु सत्राजित ने तुम्हारा अपमान करके उसका विवाह कृष्ण से कर दिया। तुम अवसर का लाभ उठाओ। सत्राजित से वह मणि छीनकर अपमान का बदला ले लो!

शतधन्वा ने सत्राजित को मार डाला और स्यमंतक मणि लेकर भाग निकला। सत्यभामा को पिता की हत्या का समाचार मिला तो वह शोकग्रस्त होकर विलाप करने लगीं। उन्होंने पिता के शव को तेल के कड़ाह में रखवा दिया और स्वयं हस्तिनापुर कृष्ण के पास पहुँचीं। सत्यभामा ने रो-रोकर सारी कहानी सुनाई। कृष्ण भी दुःखी हुए। कृष्ण बलराम और सत्यभामा को लेकर द्वारिकापुरी लौटे। शतधन्वा को दंड देकर मणि वापस लेने पर दोनों भाइयों में विचार हुआ।

शतधन्वा को मालूम हुआ कि कृष्ण अब मेरी खोज करेंगे तो वह भयभीत होकर कृतवर्मा के पास गया कि मुझे शरण दो। कृतवर्मा ने उसे दुत्कारकर भगा दिया। वह घबराया हुआ अक्रूर के पास गया। उन्होंने भी उसे शरण देने से मना कर दिया। तब शतधन्वा ने स्यमंतक मणि अक्रूर के पास रख दी और अति वेगवान् घोड़े पर सवार होकर द्वारिका से भागा। कृष्ण-बलराम भी सत्राजित के हत्यारे शतधन्वा को पकड़ने के लिए अति वेगवान् रथ पर सवार होकर उसका पीछा करने लगे। अंत में शतधन्वा का घोड़ा थककर गिर पड़ा तो वह पैदल ही भागने लगा। कृष्ण भी रथ से उतरकर पैदल ही उसके पीछे दौड़ पड़े। उन्होंने अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्र से शतधन्वा का सिर काट डाला।

कृष्ण के बहुत दूँढ़ने पर भी वह मणि नहीं मिली, क्योंकि शतधन्वा के पास मणि थी ही नहीं। कृष्ण बलराम के पास आकर बोले, “दाऊ, मणि तो उसके पास नहीं है। हमने व्यर्थ ही इसे मार डाला।”

बलराम ने कहा, “द्वारिकापुरी पहुँचकर ही तलाश करनी होगी। तुम जाओ, मैं मिथिलापुरी के राजा जनकजी से मिलकर आऊँगा।”

बलराम राजा जनक के यहाँ पहुँचे। जनक ने उनका खूब मान-सम्मान किया। वहीं पर बलराम ने दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा भी दी थी।

कृष्ण ने द्वारिकापुरी वापस आकर श्वसुर सत्राजित के मृत शरीर की अंतिम क्रिया की। अक्रूर तथा कृतवर्मा ने ही शतधन्वा को बहकाया था, इसलिए वे कृष्ण से भयभीत होकर द्वारिकापुरी से मणि सहित भाग गए। द्वारिका में प्राकृतिक प्रकोप होने लगे तो वृद्धजनों की सलाह से कृष्ण ने अक्रूर को खोजकर वापस बुलवाया। कृष्ण ने बड़े मधुर स्वर में अक्रूर से कहा, “चाचाजी, आप पहले से ही दानी हैं, लेकिन इन दिनों आप खुले हाथ से स्वर्णदान कर रहे हैं। वैसे तो मुझे ज्ञात ही है कि शतधन्वा आपको स्यमंतक मणि दे गया है। तभी यह स्वर्णदान हो रहा है! आप तो ज्ञानी हैं। सत्राजित का कोई पुत्र नहीं था। उसकी संपत्ति स्यमंतक मणि का अधिकारी सत्राजित की पुत्री सत्यभामा का पुत्र होगा। हमें तो इसका भी लालच नहीं है। वह मणि हमें नहीं चाहिए, लेकिन मेरे दाऊ एक बार उस मणि को देखना चाहते हैं। इसलिए आप दाऊ, सत्यभामा, जांबवती एवं नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों को एक बार वह मणि दिखा दें, जिससे सभी को विश्वास हो जाए कि मणि मौजूद है।”

अक्रूर ने वह मणि सबके सामने निकालकर कृष्ण को दे दी। कृष्ण ने सबको वह प्रकाशमान मणि दिखाई। उनके माथे से कलंक का टीका मिट गया। कृष्ण ने मणि फिर अक्रूर को ही दे दी।



## कालिंदी परिणय

पांडवों पर कौरवों के नित्य नए अत्याचार होते रहते थे। कौरवों द्वारा लाक्षागृह में जलाकर मारने के षड्यंत्र से पांडव बच गए थे। यह हाल सुनकर कृष्ण अपने साथियों को लेकर इंद्रप्रस्थ आए। श्रीकृष्ण को देखकर पांडवों को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर एवं भीमसेन दोनों बड़े थे। श्रीकृष्ण ने उनके चरणस्पर्श किए। अर्जुन को वे अपना प्रिय सखा ही मानते थे। अतः उनको कंठ से लगा लिया। नकुल-सहदेव ने श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श करके वंदना की। कृष्ण उनके साथ महल में गए। उन्होंने बुआ कुंती को प्रणाम किया। कुंती ने श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगाकर गद्गद होकर कहा, “कृष्ण, तुमने हमारा कुशल-मंगल लेने के लिए अक्रूर को भेजा था। तुम्हारा प्रेम एवं अनुग्रह हमारे ऊपर है।”

द्रौपदी ने कृष्ण को प्रणाम करके कहा, “भाई, आप आ गए, हम आज सचमुच धन्य हुए।” श्रीकृष्ण ने सबको अपने मधुर वचनों से संतुष्ट किया और वहीं रहकर चतुर्मास आनंदपूर्वक व्यतीत किए।

एक दिन अर्जुन श्रीकृष्ण को साथ लेकर वन में शिकार खेलने गए। वन्य पशुओं का शिकार करते-करते वे थक गए थे, अतः यमुना के निकट अपना रथ खड़ा करके श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर यमुना में स्नान के लिए उतरे। वहाँ उन्होंने एक परमसुंदरी युवती को तपस्या करते देखा। अर्जुन ने उस सुंदरी से पूछा, “देवी, तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? यहाँ क्या कर रही हो? कहीं तुम पति प्राप्ति के उद्देश्य से ही तो तप नहीं कर रही हो?”

युवती बोली, “मैं सूर्य की पुत्री कालिंदी हूँ। यमुना में ही निवास करती हूँ। जल में ही मेरा महल है। मैं भगवान् विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने हेतु ही तपस्या कर रही हूँ।”

अर्जुन ने कालिंदी की बात कृष्ण को बताई। श्रीकृष्ण तो पहले से ही सबकुछ जानते थे। अतः वे यमुना तट पर गए और कालिंदी को रथ पर बैठाकर धर्मराज युधिष्ठिर के पास ले आए। श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से रवाना होने के पूर्व पांडवों के लिए विश्वकर्मा से कहकर एक अद्भुत नगर बनवा दिया। अर्जुन को गांडीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, रथवान् एवं एक ऐसा कवच दिया जिसे बड़े से बड़ा शस्त्रधारी अथवा शस्त्र भी न भेद सके। इस तरह पांडवों की सुरक्षा का प्रबंध करके वे विदा हुए।

द्वारिका पहुँचकर उन्होंने विधिवत् कालिंदी का पाणिग्रहण किया।

अवंति नरेश विंद एवं अनुविंद, दोनों भाई दुर्योधन के अनुयायी थे। श्रीकृष्ण उनकी बहन मित्रविंदा का स्वयंवर में वरण करके अपने घर ले आए। वह श्रीकृष्ण की बुआ रामथि देवी की पुत्री थी।

कौशल देश के राजा नग्नजित बड़े धार्मिक थे। उनकी एक अति सुंदर कन्या थी—सत्या। राजा ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उनके बलशाली सात बैलों को एक साथ नथकर उनको जीत लेगा, उसीसे वे अपनी पुत्री का विवाह कर देंगे। बड़े-बड़े राजकुमार असफल होकर चले गए थे। कृष्ण ने भी यह समाचार सुना कि नग्नजित की प्रतिज्ञा को कोई पूरी नहीं कर पा रहा है, इसीलिए उनकी पुत्री का विवाह नहीं हो सका है। कृष्ण तो रसिक थे ही। वे अपनी सेना के साथ कौशल देश जा पहुँचे। राजा नग्नजित ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कृष्ण का आदर-सत्कार किया। राजकन्या सत्या ने भी देखा तो यह सोचकर प्रसन्न हुई कि मैं जिनका रात-दिन स्मरण-चिंतन करती हूँ, वही मेरे प्रियतम, मेरे व्रत-नियम आदि का फल लेकर आ गए हैं! राजा ने कृष्ण की पूजा-अर्चना करके पूछा, “मैं आपकी क्या सेवा करूँ?”

कृष्ण ने कहा, “मैं आपकी सेवा-पूजा एवं स्वागत-सत्कार से संतुष्ट हूँ। अब क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए मैं

आपसे संबंध स्थापित करने हेतु आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूँ।” राजा प्रसन्न होकर बोले, “हे यदुवंशशिरोमणि! आपसे बढ़कर मेरी पुत्री के लिए श्रेष्ठ वर और कोई हो ही नहीं सकता। लेकिन मैंने तो प्रण किया है कि मेरे सातों बैलों को वश में करनेवाले बलशाली पुरुष से ही मेरी पुत्री विवाह करेगी।”

कृष्ण ने राजा की बात सुनते ही अपनी कमर पर दुपट्टा कस लिया और सात स्वरूप धारण करके सातों बैलों पर सवारी कर ली। बैलों का घमंड चूर-चूर हो गया। श्रीकृष्ण ने रस्सी से सातों को बाँध लिया और घसीटते हुए राजा नग्नजित के सामने डाल दिया। रनिवास एवं प्रजाजन ने कृष्ण की विजय पर गगनभेदी जय-जयकार की। राजा ने अपनी पुत्री सत्या का विधिपूर्वक कन्यादान किया और मंगलध्वनि के साथ उन्हें विदा किया।

जो राजा एवं राजकुमार पहले बैलों को नाथ न सकने के कारण अपमानित एवं विफल होकर लौट गए थे, उन्होंने जब कृष्ण-सत्या के विवाह का समाचार सुना तो वे मार्ग में इकट्ठा होकर उनपर बाण वर्षा करने लगे। अर्जुन ने अपने सखा एवं भाई कृष्ण के मार्ग को निष्कंटक करने के लिए अपना गांडीव उठाया और उन सभी शत्रुओं का नाश कर दिया। उन्होंने कृष्ण एवं नवपरिणीता सत्या को सत्कारपूर्वक द्वारिका के लिए विदा किया।

श्रीकृष्ण की एक बुआ श्रुतकीर्ति केकय देश में ब्याही थीं। उनकी एक अत्यंत सुंदर कन्या थी—भद्रा। उसके भाई ने कृष्ण से भद्रा का विवाह कर दिया। मद्र देश के राजा की लक्षणा नाम की अत्यंत सुलक्षणी कन्या थी। कृष्ण अकेले ही स्वयंवर में जाकर लक्षणा का हरण कर लाए और विधिवत् उससे विवाह कर लिया।

भौमासुर नामक राक्षस के बंदीगृह में सहस्रों कन्याएँ थीं।



## बंदीगृह से कन्याओं की मुक्ति तथा अन्य प्रसंग

एक समय पृथ्वी ने पुत्र प्राप्ति के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—तीनों की कठिन तपस्या की। तीनों देवताओं ने पृथ्वी की आराधना से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। पृथ्वी ने महाबली पुत्र की कामना की। 'तथास्तु' कहकर तीनों देवता अपने-अपने लोक को चले गए। तब पृथ्वी को महाबली पुत्र प्राप्त हुआ—भौमासुर (नरकासुर)। उसने वरुणदेव का छत्र, देवमाता अदिति के कुंडल, मेरु पर्वत पर स्थित मणिपर्वत नामक स्थान तक छीन लिया था। इन करतूतों से इंद्र बहुत परेशान हो गए। उन्होंने इससे मुक्ति दिलाने के लिए भगवान् कृष्ण से याचना की। कृष्ण ने अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामा को साथ लिया और गरुड पर सवार होकर भौमासुर की राजधानी प्रागज्योतिषपुर पहुँचे। राजधानी के चारों ओर कई परकोटे बने थे। पहाड़ों की किलेबंदी, उसके बाद शस्त्रों का परकोटा, उसके बाद जल का, उसके बाद आग का, बिजली का, वायु का और इसके बाद मुर नामक भयानक दैत्य का जाल था। कृष्ण के लिए इन परकोटों को तोड़ना कोई कठिन काम नहीं था। उन्होंने एक-एक करके सभी परकोटों का ध्वंस करके पांचजन्य शंख की भयंकर ध्वनि से मुर दैत्य की नींद तोड़ी। पाँच सिरोंवाला मुर दैत्य जल के भीतर सो रहा था। हाथ में त्रिशूल उठाकर वह क्रोध से गरजता कृष्ण के सामने आया और उसने गरुड पर त्रिशूल फेंका। कृष्ण ने आकाश में ही उस त्रिशूल के दो टुकड़े कर दिए। दैत्य ने पुनः कृष्ण पर वार करना चाहा, लेकिन कृष्ण के महातेजस्वी चक्र ने उसके पाँचों सिर धड़ से अलग कर दिए।

मुर दैत्य के छह पुत्र थे। पिता के मरने पर वे कृष्ण का सामना करने आए। कृष्ण ने उन्हें भी मार गिराया, तब उसकी पुत्री मौरवी भी युद्ध करने आई। लेकिन अंबिका देवी के समझाने पर वह युद्ध से विरत हो गई।

भौमासुर ने जब देखा कि उसके महाबली दैत्य रक्षक मुर और सेना का नाश हो गया है तो वह क्रुद्ध होकर स्वयं कृष्ण को मारने के लिए असंख्य सेना लेकर नगर से बाहर निकला। उसने कई शस्त्रों से प्रहार किया। उसकी सेना ने भी कई तरह से भगवान् पर वार किए, लेकिन उनके सब शस्त्र एवं सैनिक कट-कटकर पृथ्वी पर गिरते गए। भौमासुर अकेला रह गया तो अत्यंत क्रोधित होकर त्रिशूल लेकर दौड़ा। भगवान् कृष्ण ने अपनी रानी सत्यभामा की ओर देखा और उस दैत्य के सिर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब पृथ्वी भगवान् कृष्ण के पास आई और उनके चरणों में गिर पड़ी। उसने माता अदिति के कुंडल, वरुण का छत्र एवं महामणि पर्वत उन्हें लौटा दिया। हाथ जोड़कर बोली, "भगवन्, भौमासुर के पुत्र भगदत्त को मैं आपके चरणों में डालने के लिए साथ लाई हूँ। इसे अभयदान करें। तब भगवान् ने पृथ्वी की बात मानकर भगदत्त को अभयदान दिया। अंत में उन्होंने भौमासुर के महल में प्रवेश किया। अगाध संपत्ति तो थी ही महल में, वहाँ भौमासुर ने सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों को भी बंदी बनाकर रखा था। भगवान् ने भौमासुर का वध करते समय सत्यभामा की ओर इसलिए देखा था कि रानी, तुम्हारी आज्ञा से ही मैं इसको मारूँगा, लेकिन इन सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों के साथ विवाह भी करूँगा। क्या तुम इसके लिए मुझे स्वीकृति दे सकोगी? सत्यभामा ने भी मौन स्वीकृति दे दी थी। लेकिन संकेत द्वारा समझा भी दिया था कि मेरा स्थान सबसे ऊपर ही रहेगा। श्रीकृष्ण भगवान् तो मुसकराकर सबकी इच्छा पूरी करते ही थे!"

कृष्ण ने राजकुमारियों के मन में अपने प्रति पतिभाव देखा। उन्होंने राजकुमारियों को मुक्त किया और सुंदर वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके पालकियों में बैठाकर द्वारिकापुरी रवाना कर दिया। उनके साथ ऐरावत वंश के सफेद हाथी, रथ, घोड़े तथा बहुत सा धन द्वारिकापुरी भेजकर वे सत्यभामा के साथ गरुड पर बैठे और इंद्रलोक अमरावती पहुँचे। इंद्र-इंद्राणी ने सत्यभामा-कृष्ण की खूब आवभगत की। श्रीकृष्ण ने अदिति के स्वर्ण कुंडल इंद्र को लौटा

दिए। लौटते समय उन्होंने सत्यभामा की इच्छापूर्ति के लिए नंदन वन से इंद्र का कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुड पर रख लिया। द्वारिका पहुँचकर उन्होंने कल्पवृक्ष सत्यभामा के बगीचे में लगा दिया। कृष्ण ने सोलह हजार एक सौ स्वरूप बनाकर सभी राजकुमारियों के साथ विवाह किया तथा उन सभी रानियों के साथ अपने स्वरूपों से नित्य निवास किया।

## प्रेम की परीक्षा

श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर थे, लेकिन मनुष्य रूप में वे ऐसी लीला करते थे जो मनुष्य स्वभाव के अनुरूप थीं।

एक बार भगवान् कृष्ण रुक्मिणी के महल में बैठे थे। रुक्मिणी अति सुंदर एवं लावण्यवती थीं। लक्ष्मीजी का अवतार रुक्मिणी भगवान् कृष्ण के सब भावों को अच्छी तरह समझती थीं। वे अपने मोहक सौंदर्य से उन्हें बाँधे रखती थीं। उन्हें इस बात का गर्व भी था कि भगवान् विष्णु जहाँ भी अवतार लेते हैं उसे अपने साथ अवश्य ले जाते हैं। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से प्रेमभरी बातें करते-करते पूछा, “देवी! तुम्हारे साथ विवाह के लिए तो बड़े-बड़े शूरवीर, प्रतापी और धनसंपन्न राजा-महाराजा इच्छुक थे। शिशुपाल तुम्हारे लिए पागल हो रहा था। जरासंध आदि सभी तो तुमको चाहते थे। फिर तुमने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को क्यों पसंद किया? मेरे साथ रहकर तो तुमको दुःख ही उठाना पड़ रहा है। हम तो दीन-दुखियों की सेवा में लगे रहते हैं और दीन-दुःखी ही हमसे प्रेम भी करते हैं।”

श्रीकृष्ण के अप्रिय वचन रुक्मिणी के हृदय में शल्य की भाँति चुभे। वे व्याकुल होकर रोने लगीं और रह-रहकर काँपने लगीं। भगवान् कृष्ण उनकी भाव-भंगिमा देखकर उनके पास गए। उन्होंने स्नेह से रुक्मिणी को बाहुपाश में बाँध लिया और उनके आँसू पोंछे। श्रीकृष्ण ने उन्हें हृदय से लगाते हुए कहा, “देवी, आपसे मुझे अनन्य प्रेम है। आपको मैं ही जानता हूँ। मैं तो देखना चाहता था कि तुम अप्रसन्नता में अधिक सुंदर लगती हो अथवा प्रसन्नता में।”

इस प्रकार प्रेमभरी बातें करके कृष्ण ने प्रियतमा को मनाया।

रुक्मिणीजी ने कहा, “मैं आपकी शरण में हूँ। आपके पराक्रम, आपकी महानता, आपके अवतार, चमत्कार एवं भक्तों के प्रति आपकी अगाध भक्ति—मैं सब जानती हूँ। किंतु आप ऐसी कड़वी बातें भी कह सकते हैं, यही बात मैं नहीं जानती थी।”

कृष्ण ने कहा, “प्रिये, मैंने यह सब हँसी-हँसी में ही तुमसे कहा था। तुमको इतनी व्यथा होगी, इसका अनुमान नहीं था। अब तुम मेरे भाव एवं मेरे प्रेम को समझकर मुझे क्षमा कर दो।”

इस प्रकार हास-परिहास में समय बीत रहा था।

## रुक्मी का संहार

श्रीकृष्ण की लीलाएँ सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के साथ चल रही थीं। वे सभी के साथ अपने भिन्न स्वरूप के साथ विहार करते थे। हर रानी को दस-दस पुत्र हुए। उनके पुत्रों के भी पुत्र हुए।

रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने अपनी बहन को प्रसन्न करने के लिए, बहन के रूपवान् पुत्र—कामदेव के अवतार—प्रद्युम्न का विवाह अपनी पुत्री रुक्मावती से कर दिया। रुक्मिणी के दस पुत्र और एक अति सुंदर कन्या चारुमती थी। उसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली के साथ किया गया था। रुक्मी ने भी अपनी पौत्री रोचना का विवाह बहन रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध के साथ कर दिया था।

रुक्मी को इस बात का पता था कि इस प्रकार के विवाह-संबंध धर्म के अनुकूल नहीं हैं, फिर भी बहन रुक्मिणी

को प्रसन्न करने के लिए उसने यह विवाह कर दिया। इस विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी, प्रद्युम्न, सांबि आदि सभी परिवारीजन बरात में भोजकट नगर आए। विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया। घमंडी मित्रों एवं राजाओं ने रुक्मी से कहा, “तुम बलराम को पासों के खेल में जीत लो।” बलराम को पासे डालने तो आते नहीं थे, पर खेलने का बहुत शौक था। लोगों के फुसलावे में रुक्मी ने बलराम को आग्रह करके चौसर खेलने के लिए बुलाया। प्रारंभ में छोटे-छोटे दो-चार दाँव बलराम हार गए तो रुक्मी के साथियों ने बलराम का खूब उपहास किया। रुक्मी ने बड़ा दाँव लगाया। इस दाँव में बलराम जीत गए, लेकिन रुक्मी ने उन्हें झूठा कहकर अपने पक्ष की जीत घोषित की। बलराम आवेश में आ गए। उन्होंने उससे बड़ा दाँव लगाया। वह दाँव भी बलराम ने ही जीता। लेकिन रुक्मी के साथी कुटिल नरेशों ने बलराम की हँसी उड़ाते हुए कहा कि ये दाँव भी रुक्मी ने ही जीते हैं! अब तो बलराम का क्रोध अनावर हो गया। इतने में आकाशवाणी हुई कि बलराम ही जीते हैं। लेकिन रुक्मी एवं उसके साथी आकाशवाणी को भी अनसुना कर कहने लगे—“वन-वन भटकनेवाले ग्वाले राजाओं का खेल क्या जानें!”

रुक्मी और उसके साथी राजाओं के उपहासपूर्ण वचनों से बलराम तिलमिला गए। उन्होंने एक मुद्गर उठाकर रुक्मी का सिर फोड़ दिया। उस मांगलिक उत्सव में रुक्मी का वध हो गया। कलिंग नरेश दाँव दिखा-दिखाकर सबसे ज्यादा हँसी उड़ा रहा था। उसको भागते देखकर बलराम ने उसे पकड़ लिया और उसके सारे दाँत तोड़ डाले। वहाँ उपस्थित अन्य कुटिल राजाओं को भी वे मारने लगे।

भगवान् कृष्ण दुविधा में थे—रुक्मी के वध पर यदि दुःख प्रकट करते हैं तो भ्राता बलराम नाराज हो जाएँगे और यदि भाई का समर्थन करते हैं तो रुक्मिणी रुष्ट हो जाएँगी। वे चुप ही रहे। दुलहन रोचना को साथ लेकर सभी द्वारिकापुरी चले आए।





## उषा-अनिरुद्ध की प्रणय कथा

दैत्यराज बलि के पुत्र बाणासुर शिवभक्त, उदार, बुद्धिमान् एवं दानवीर थे। उनकी प्रतिज्ञा अटल होती थी। शिवभक्त बाणासुर की राजधानी शोणितपुर में थी। भगवान् शिव की कृपा से बाणासुर के एक सहस्र भुजाएँ थीं। एक बार भगवान् शिव तांडव नृत्य कर रहे थे। तब बाणासुर ने अपनी एक सहस्र भुजाओं से अनेक वाद्य बजाकर नृत्य में ताल दिया था। इसपर भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने के लिए कहा। बाणासुर ने कहा, “भगवान्, आप मेरे नगर की रक्षा के लिए यहीं निवास करें।” शिव ने उसे यही वरदान दिया। अपने बल-पौरुष के घमंड में चूर बाणासुर ने एक दिन शिव से कहा, “हे महादेव, आपने मुझे सहस्र भुजाएँ देकर मेरा भार ही बढ़ा दिया है, क्योंकि कोई भी मेरे बराबरी का योद्धा नहीं है जो मुझसे युद्ध कर सके। मेरी इन बाँहों में खुजली होती है कि मैं युद्ध करूँ। अंत में, मैं पर्वतों पर चोट कर-करके चला आता हूँ। आप मेरा यह भार उतारिए।”

तब शिव ने क्रोधित होकर कहा, “मूढ़, अब मेरे ही समान योद्धा आकर तेरा घमंड चूर करेगा! जब तेरी ध्वजा टूटकर गिरे तब समझ लेना कि तेरा दर्प दलन करनेवाला योद्धा आ गया है!”

बाणासुर इसे भी भगवान् शंकर की कृपा मानकर प्रसन्नता से अपने घर चला आया। उसकी एक कन्या थी— उषा। उस सुंदरी कन्या ने स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा और स्वप्न में ही अनिरुद्ध के साथ समागम भी किया। यह तो आश्चर्य ही था कि स्वप्न के फल से वह विवाहित स्त्री की भाँति खिल उठी। उषा के महल के चारों ओर बहुत कड़ा पहरा था। रात्रि में अनिरुद्ध उषा के स्वप्न में ही आते रहे। एक दिन वह उषा को छोड़कर कहीं छिप गए तो वह सुंदरी वियोग की वेदना से आहत ‘प्रियतम-प्रियतम’ कहती जाग पड़ी। उषा की प्राणप्यारी सखी चित्रलेखा वहीं थी। उसने उषा से कहा, “यहाँ तो कोई नहीं है! तुम किसके विरह में इतनी व्यथित हो उठी हो?”

उषा ने उसे स्वप्न की सारी बात बताई। वियोग के ताप से विकल होकर वह अपनी सखी से कहने लगी, “चित्रलेखा, मेरे प्रियतम को तुम्हीं ला सकती हो!”

उषा ने अनिरुद्ध का नखशिख वर्णन किया और सखी से अनुरोध किया कि उसे कहीं से भी ढूँढ़कर ला दो!

चित्रलेखा चित्र बनाने में अति निपुण थी। उसने उषा से उसके प्रियतम का वर्णन सुन-सुनकर चित्र बनाना शुरू किया। उसने भगवान् कृष्ण का चित्र बनाया तो उषा उत्साह से भर गई। प्रद्युम्न का चित्र देखकर वह कुछ संकुचित हो गई। चित्रलेखा ने जब अनिरुद्ध का चित्र बनाया तो वह लज्जित होकर कह उठी, “सखी, यही मेरे प्रियतम हैं!”

चित्रलेखा ने कहा, “इनको लाना तो बड़ा ही कठिन कार्य है। ये तो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र एवं कामदेव के अंश प्रद्युम्न के पुत्र हैं। भगवान् कृष्ण की जानकारी के बिना कोई भी द्वारिकापुरी में प्रवेश नहीं कर सकता। तो भी हे सखी, तुम्हारा प्रिय करने के लिए मैं कुछ भी कर सकती हूँ।”

यह कहकर चित्रलेखा वहाँ से रवाना हो गई। उसने एक साधु का वेश धारण करके द्वारिकापुरी में प्रवेश किया। साधु, ब्राह्मण एवं गौ—इन तीनों का प्रवेश सुदर्शन चक्र भी नहीं रोक सकता था। चित्रलेखा ने योगबल से अनिरुद्ध जिस पलंग पर सोए थे, उसे ही उठा लिया और शोणितपुर में लाकर उषा के महल में रख दिया।

उषा अत्यंत प्रसन्न होकर अपने प्रियतम के साथ विहार करने लगी। वे दोनों परस्पर प्रेम में इतने आत्मलीन हो गए और यह भी भूल गए कि अनिरुद्ध कितने दिनों से उषा के अंतःपुर में छिपे-छिपे रह रहे हैं।

अनिरुद्ध के सहवास से उषा का कुँआरापन समाप्त हो गया था। पुरुष पहरेदारों की तेज नजरों ने आभास पा लिया कि उषा अब कुमारी कन्या नहीं रही। उन्होंने बाणासुर के पास जाकर अपना संदेह प्रकट किया। बाणासुर

दौड़ा हुआ उषा के महल में पहुँचा। उसने देखा कि अनिरुद्ध एवं उषा बेखटके चौसर खेल रहे हैं, साथ ही प्रणयलीला कर रहे हैं। बाणासुर क्षण भर के लिए स्तंभित खड़ा ही रह गया। अनिरुद्ध ने देखा कि बाणासुर के साथ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सैनिक भी हैं तो उसने अपने बचाव के लिए एक लौहपरिध उठा लिया। जो भी सैनिक पकड़ने के लिए आगे आता, अनिरुद्ध उसे मार गिराते।

बाणासुर ने देखा कि यह अकेला सुकुमार मेरे वीर सैनिकों को मार रहा है तो उसने नागपाश फेंककर अनिरुद्ध को बाँध लिया। उषा रुदन करने लगी।

उधर द्वारिकापुरी में अनिरुद्ध की खोज चल रही थी। वर्षा ऋतु के चार मास बीत गए। एक दिन नारद वहाँ आए और अनिरुद्ध के हरण एवं उषा-मिलन तथा बाणासुर द्वारा बंदी बनाए जाने का समाचार कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न को दिया।

उसी दिन यादव वीरों ने सेना के साथ शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया। परकोटों एवं बाणासुर की सेना का नाश करते हुए कृष्ण-बलराम आगे बढ़ रहे थे। बाणासुर को पता चला कि शत्रु सेना उसके सैनिकों का संहार कर रही है तो वह भी अपनी सेना लेकर युद्ध में कूद पड़ा। बाणासुर की सहायता के लिए स्वयं भगवान् शंकर अपने गणों के साथ आ गए।

अभूतपूर्व युद्ध हो रहा था। भगवान् कृष्ण से स्वयं शिव, प्रद्युम्न से शिवपुत्र स्वामी कार्तिकेय, बलराम के साथ कुंभांड एवं कूपकर्ण राक्षस भिड़ रहे थे। भगवान् कृष्ण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से शंकर के गणों, भूतप्रेतों तथा वेतालों को खदेड़ दिया। शंकर ने जो-जो अस्त्र प्रयोग किए उन्हींके समकक्ष अस्त्रों से श्रीकृष्ण ने उन्हें नष्ट कर दिया। शिव के 'पाशुपतास्त्र' को कृष्ण ने 'नारायणास्त्र' से शांत कर दिया। अब कृष्ण ने शिव पर 'जंभास्त्र' का प्रयोग किया। शिव को लगातार जँभाई आने लगीं। कृष्ण भगवान् शंकर से छुट्टी पाकर बाणासुर की ओर बढ़े। बाणासुर के सैनिक घायल हो रहे थे और युद्धस्थल छोड़कर भाग रहे थे। सारी सेना नष्ट हो गई। अंत में बाणासुर अपने सहस्र हाथों में पाँच सौ धनुष लेकर एक साथ बाणवर्षा करने लगा। उसके सभी धनुषों-बाणों, सारथि सहित रथ और घोड़ों को कृष्ण ने देखते-ही-देखते नष्ट कर दिया। बाणासुर व्याकुल हो उठा। तब उसकी माता कोटरा राक्षसी नंग-धड़ंग, बाल बिखराए कृष्ण के सामने आकर खड़ी हो गई। कृष्ण ने इस वेश में स्त्री को देखते ही मुख फेर लिया। इतना सा अवसर पाकर बाणासुर पुनः शस्त्र एवं सेना लेकर आ गया। भगवान् शिव ने भी अपना 'शीतज्वर' कृष्ण पर छोड़ा। भगवान् कृष्ण ने अपने 'विषमज्वर' से उसे नष्ट कर दिया। अंत में कृष्ण ने अपने चक्र से बाणासुर की भुजाओं को काट दिया। केवल चार भुजाएँ रहने दीं।

भगवान् शंकर ने बाणासुर से कहा, "अरे मूर्ख, ये तो साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि हैं! मैं भी इन्हींकी पूजा-आराधना करता हूँ। इनकी शरण में जा और अपने अपराध के लिए क्षमा माँग! यह कहकर शिव ने बाणासुर को कृष्ण भगवान् के चरणों में डाल दिया और आग्रहपूर्वक कहा, भगवन्, यह मेरा परमप्रिय भक्त है। लेकिन इसको बल का दंभ हो गया था। तब मैंने ही इसे शाप दिया था। जिसे आपने पूरा किया। अब यह आपकी शरण में आ गया है।" भगवान् कृष्ण ने मुसकराते हुए कहा, "मैंने तो आपकी बात मानकर ही आपके द्वारा मेरे ऊपर चलाए गए शस्त्रास्त्रों का शमन किया है। मैंने प्रह्लाद को वचन दिया था कि तुम्हारे वंशज को मैं कभी नहीं मारूँगा। मैंने बाणासुर का अहंकार मिटाने के लिए केवल इसकी भुजाओं को काट दिया है। ये चार भुजाएँ बनी रहेंगी। और बाणासुर आपका प्रिय पार्षद बना रहेगा।" बाणासुर ने भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की—"मेरी पुत्री उषा को आप अपनी पौत्रवधू बना लें।"

उत्सव के साथ अनिरुद्ध का विवाह उषा से हो गया।

## नृगराजा को स्वर्गलोक

एक बार द्वारिकापुरी के यदुवंशी बालक खेलते-कूदते वन की ओर निकल गए। प्यास लगने पर वे जल की तलाश कर रहे थे तो उन्हें एक कुआँ दिखाई दिया। उन्होंने झाँककर देखा तो एक विचित्र और भयानक जंतु कुएँ में उलटा लटका दिखाई पड़ा। बालकों ने उस जंतु को बाहर निकालने का बड़ा प्रयास किया, किंतु वे सफल नहीं हुए। उन्होंने घर जाकर भगवान् कृष्ण को यह घटना बताई। तब श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ आए। उन्होंने उस प्राणी को खींचकर क्षण भर में ही बाहर निकाल लिया। तब उस जंतु में से एक दिव्य पुरुष बाहर निकला।

भयंकर, विशालकाय गिरगिट के रूप से निकले पुरुष ने कहा, “भगवन्, मैं इक्ष्वाकु पुत्र नृग हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।” फिर नृग ने पूरी कथा सुनाई—“मैं उदारतापूर्वक ब्राह्मणों को दान देता रहता था, लेकिन एक दिन एक भूल हो गई। एक ब्राह्मण देवता कभी दान नहीं लेते थे, उनकी एक गौ हमारी गौओं में आकर मिल गई। मेरे ध्यान में यह बात नहीं आई। नित्य नियमानुसार मैंने ब्राह्मणों को गौएँ दान में दीं। उनमें वह ब्राह्मणवाली गौ भी थी। एक ब्राह्मण उस गौ को लेकर चला गया। तब गौ का स्वामी ब्राह्मण आकर अपनी गौ माँगने लगा। अनजाने में हुआ अपराध मैंने स्वीकार किया और उन्हें एक गौ के बदले में एक लाख गौएँ देने को कहा; लेकिन ब्राह्मण देवता नहीं माने। जिस ब्राह्मण को वह गौ दान में चली गई थी, उनसे भी मैंने प्रार्थना की कि वे एक लाख गौएँ लेकर उस गौ को छोड़ दें, लेकिन वे भी दान में ली गई गौ को वापस करने के लिए तैयार नहीं हुए। दोनों ब्राह्मण बिना किसी फैसले के रुष्ट होकर चले गए। मैं बहुत दुःखी हुआ। मेरी मृत्यु होने पर धर्मराज ने मुझसे कहा, “तुमने पुण्य तो बहुत किए हैं, लेकिन थोड़ा सा पाप भी हुआ है। अतः कौन सा फल तुम पहले चाहते हो? मैंने सोचा कि पाप का फल ही पहले भोग लूँ, इसीलिए मैंने पाप का फल पहले माँगा। उन्होंने मुझे गिरगिट बनाकर लटका दिया। आज आपके स्पर्श से मेरा उद्धार हो गया। मैं आपकी शरण में हूँ।”

भगवान् कृष्ण ने राजा नृग को स्वर्गलोक के लिए विदा किया।



## पौंड्रक वध

**भ**गवान् कृष्ण तथा बलराम दोनों भाई अनेक असुरों को परास्त करके द्वारिका में सुख से रहने लगे। एक दिन उन्हें ब्रज की याद आई। नंद बाबा, यशोदा मैया और ग्वाल-बाल सखा एवं गोपियों से मिलने की तीव्र इच्छा मन में जाग्रत हुई। बलराम ने कहा, “यदि आप आज्ञा दें तो मैं ब्रज में जाकर सबको मिल आऊँ।”

श्रीकृष्ण ने दाऊ की बात को तुरंत स्वीकृति दे दी। बलदाऊ ब्रज के लिए रवाना हो गए। बलराम को अचानक ब्रज आया देखकर माता-पिता, गोपी-ग्वाल सभी आनंदित हो गए। बलराम ने माता-पिता के चरण छुए और सखाओं को गले लगाया।

भोजन आदि से निवृत्त होकर सभी लोग कृष्ण कन्हैया, वसुदेव-देवकी—सब हाल पूछने लगे। गोपियाँ तो बार-बार ताने दे रही थीं। यशोदा ने पूछा, “बेटा, अब तो तुम लोग नाती-पोतेवाले हो गए हो। क्या कभी हम बूढ़े माँ-बाप तुम्हें याद आते हैं!” गोपियों ने तो जी भर उलाहने दिए। अनुराग की कोई सीमा नहीं थी। बलरामजी ने उन्हें सांत्वना दी। वसंत ऋतु के दो मास चैत्र-वैशाख बलरामजी ने उन्हींके साथ बिताए। एक दिन बलरामजी ने जलक्रीड़ा की इच्छा से यमुना को पुकारा। किंतु यमुनाजी ने उन्हें मतवाला समझकर उनकी उपेक्षा कर दी। तब बलराम ने उसे दंड देने के लिए हाथ में हल उठाया। यमुनाजी भयभीत होकर शरण में आ गई। कहते हैं कि तभी से यमुना उस स्थान से टेढ़ी हो गई है जहाँ से हल द्वारा बलरामजी ने उन्हें खींचा था।

बलराम ब्रज में थे, उन्हीं दिनों करुष देश के राजा पौंड्रक ने भगवान् कृष्ण के पास एक दूत द्वारा संदेश भेजा—“असली भगवान् वासुदेव मैं हूँ। मैंने ही प्राणियों पर कृपा करने के लिए अवतार लिया है। तूने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है। तुम यह नाम त्याग दो और मेरी शरण में आ जाओ, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।”

राजसभा में दूत ने यह संदेश सुनाया तो सभी हँसने लगे। श्रीकृष्ण ने दूत से उत्तर भेजा—“चक्र आदि चिह्न मैं नहीं छोड़ूँगा। उन्हें तो तुम्हारे ऊपर ही छोड़ा जाएगा। तुम्हारे जिन मूढ़ साथियों ने तुम्हें बहकाया है, उन्हें भी दंड मिलेगा!”

दूत ने जाकर पौंड्रक को यह संवाद सुना दिया। श्रीकृष्ण ने काशी पर चढ़ाई कर दी; क्योंकि उन दिनों पौंड्रक अपने मित्र काशीराज के पास ही था। श्रीकृष्ण के आक्रमण का समाचार सुनते ही पौंड्रक भी अपनी सेना लेकर नगर से बाहर निकला। उसका मित्र काशीराज भी अपनी सेना के साथ मित्र की सहायता के लिए उसके पीछे-पीछे आ गया। श्रीकृष्ण ने देखा कि पौंड्रक ने दो बनावटी हाथ लगा रखे थे और शंख, चक्र, गदा, धनुष तथा श्रीवत्स चिह्न भी धारण करके आया था। उसने श्रीकृष्ण की-सी वेशभूषा धारण कर रखी थी तथा रथ पर गरुड अंकित पताका आदि से पूरा ही ‘वासुदेव’ होने का अभिनय कर रहा था। श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे। पौंड्रक तथा उसके मित्र ने श्रीकृष्ण पर अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार कर दिया। श्रीकृष्ण ने देखते-ही-देखते शत्रु सेना को तहस-नहस कर दिया। पौंड्रक से कहा, “तूने झूठ-मूठ मेरा नाम रख लिया और मेरे शस्त्रों की नकल करके उन्हें ग्रहण कर रखा है। अब असली चक्र देख!” ये तिरस्कारपूर्ण शब्द कहकर श्रीकृष्ण ने चक्र से उसका सिर उतार लिया। उन्होंने काशी नरेश का भी सिर धड़ से अलग कर दिया। उन दोनों का वध करके श्रीकृष्ण द्वारिका नगरी में लौट आए।

पौंड्रक तो नित्य ही वासुदेव का रूप धारण करके भगवान् कृष्ण का स्मरण करता था, अतः उसकी मुक्ति हो

गई। काशीराज का पुत्र सुदक्षिण था। उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि पिता के हत्यारे को मारकर ही मैं पितृऋण उतारूँगा। उसने भगवान् शंकर की आराधना शुरू कर दी। शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर भक्त को मनवांछित वरदान माँगने को कहा। सुदक्षिण ने अपने पिता के हत्यारे के वध का उपाय बताने को कहा। शिव ने कहा, “तुम ब्राह्मणों द्वारा दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करो। तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा।”

सुदक्षिण ने ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ कराया। उसमें से ताँबे के वर्ण की भयंकर कृत्या प्रकट हुई। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे। उसके अंग-अंग से लपटें उठ रही थीं। वह त्रिशूल लेकर द्वारिका की ओर झपटी। द्वारिकावासी उस भयंकर ज्वाला को देखकर भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे। श्रीकृष्ण उस समय अपने महल में चौसर खेल रहे थे।

सबको भयभीत होते हड़कंप मचाते देखकर उन्होंने कहा, “डरो मत! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।” भगवान् कृष्ण समझ गए कि यह काशी से आई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी—“इसे नष्ट कर दो!” सुदर्शन चक्र ने कृत्या को ध्वस्तप्राय करके काशी लौटा दिया। कृत्या ने काशी में आकर अपने आचार्यों एवं सुदक्षिण को ही जलाकर भस्म कर दिया। सुदर्शन चक्र भी काशी के भवनों तथा संपत्ति का नाश करके श्रीकृष्ण के पास चला आया।

## द्विविद वानर वध

द्विविद नाम का एक महाबली वानर था। उसमें दस हजार हाथियों का बल था। वह वानर भौमासुर का मित्र, सुग्रीव का मंत्री तथा मैद का शक्तिशाली भाई था। उसके मित्र भौमासुर का वध श्रीकृष्ण ने कर दिया तो वह अति क्रोधित होकर आनर्त प्रदेश (जहाँ कृष्ण की द्वारिका नगरी थी) में भयंकर उत्पात करने लगा। पर्वतों से वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फेंकता। पर्वतों को भी उखाड़ देता। समुद्र का पानी इतना उछालता कि किनारे के ग्राम-के-ग्राम बह जाते। उत्पात करके उसने प्रजा को आतंकित कर रखा था। बलरामजी वहीं पर सुंदर स्त्रियों के झुंड में बैठे आमोद-प्रमोद कर रहे थे। वह वानर वहीं आकर स्त्रियों के सामने बलरामजी को नीचा दिखाने के लिए अश्लील हरकतें करने लगा। वह स्त्रियों के वस्त्र फाड़ने लगा तो किसी पर मल-मूत्र डालने लगा। उसने बलरामजी के सामने से मधु कलश उठाकर तोड़-फोड़ डाला और उनको मुँह चिढ़ाने लगा।

बलरामजी को क्रोध आया। उन्होंने अपना हल-मूसल उठा लिया। वानर ने एक भारी वृक्ष उखाड़कर बलरामजी के सिर पर फेंका। उन्होंने वृक्ष को ऊपर ही पकड़ लिया और मूसल से वानर पर प्रहार किया। वानर का सिर फट गया। आहत होकर वह बौखला उठा और वृक्ष-पर-वृक्ष फेंकने लगा। बलराम उनको छिन्न-भिन्न करते जा रहे थे। बहुत देर तक युद्ध चलता रहा। अंत में बलरामजी ने हल-मूसल रख दिए और दोनों हाथों से उसकी हँसली पर प्रहार किया। वानर खून उगलता हुआ धरती पर गिर पड़ा और निष्प्राण हो गया।

## हस्तिनापुर झुक गया

भगवान् कृष्ण के पुत्र सांब अपने पिता की भाँति ही सुंदर एवं बलशाली थे। दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का स्वयंवर था। सांब अकेले ही स्वयंवर में पहुँचे और लक्ष्मणा का हरण कर लिया। कौरवों को इस कार्य से बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने कुपित होकर सांब को पकड़ने के लिए कर्ण जैसे बड़े-बड़े महारथियों को उनके पीछे भेजा। सांब ने उनका सामना किया; लेकिन अंत में कई महारथियों ने मिलकर सांब को बाँध लिया और लक्ष्मणा सहित उन्हें वापस हस्तिनापुर ले आए। कृष्ण-बलराम को यह समाचार मिला तो वे अत्यंत क्रोधित हुए। यादव सेना बलराम के साथ कौरवों को दंड देने के लिए हस्तिनापुर रवाना हो गई। वहाँ पहुँचकर बलराम ने उद्धवजी को धृतराष्ट्र के पास

भेजा।

उद्धवजी ने कौरव सभा में पहुँचकर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, दुर्योधन आदि को बलरामजी के आगमन का समाचार दिया। कौरवों को प्रसन्नता हुई कि हमारे परमहितैषी बलरामजी आए हैं। उन्होंने उद्धवजी का सत्कार किया और मंगल द्रव्य लेकर बलरामजी की अगवानी के लिए चल पड़े। बलरामजी का आदर-सत्कार करके उन्होंने कुशल-मंगल पूछा। बलराम ने बड़ी धीरता से कहा, “राजा उग्रसेन ने घोर दुःख के साथ कहा है कि आपके महारथियों ने मिलकर अकेले सांब को अधर्म से बंदी बना लिया है। आप हमारे संबंधी हैं, अतः इसे सह लेते हैं। आप तत्काल सांब को उसकी पत्नी के साथ द्वारिका भेज दें!”

बलराम की बात सुनकर कुरुवंशी क्रोध से तिलमिला उठे। वे उत्तेजित होकर कहने लगे—“पैरों की धूल आज सिर पर चढ़ रही है। अपनी एक लड़की हमको देकर हमसे संबंध बना लिया और हमारे साथ बैठने लग गए। हमारा ही दिया हुआ सिंहासन, उसपर बैठकर हमारे समान बन रहे हैं। यदुवंशी हमें नीचा दिखाना चाहते हैं। इनके पास अब सिंहासन एवं राजचिह्न कुछ नहीं रहना चाहिए!” कुरुवंशी उठकर हस्तिनापुर नगर में चले आए।

बलरामजी को कौरवों की धृष्टता और अहंकार देखकर बड़ा ही क्षोभ हुआ। वे बोले, “हमारे वंश का अपमान करनेवाले इन दुष्टों को दंड मिलना ही चाहिए। इन धर्मांधों को कलह ही प्रिय है। इन्होंने ऐश्वर्य के मद में मेरा अनादर किया, गालियाँ दीं।” ठीक है! कहकर बलराम ने अपना हल उठा लिया। हल की नोक धँसाकर उन्होंने पूरे हस्तिनापुर को ही उखाड़ लिया और उसे गंगा में डुबाने के लिए खींचने लगे। हल से खींचने पर हस्तिनापुर काँपने लगा। जब कौरवों ने देखा कि हमारा नगर तो गंगाजी में गिरनेवाला है तो वे घबरा गए। उन्होंने तत्काल लक्ष्मणा के साथ सांब को आगे किया और बलरामजी की शरण में जाकर रक्षा की प्रार्थना करने लगे। बलरामजी ने उनको अभयदान दिया। कौरवों ने लक्ष्मणा तथा सांब को सत्कारपूर्वक रथ, घोड़े, हाथी आदि देकर विदा किया। बलरामजी सबको लेकर द्वारिकापुरी आए। हस्तिनापुर आज भी गंगाजी की ओर झुका हुआ है।

## नारद की शंका

एक बार देवर्षि नारद को यह देखने की इच्छा हुई कि भगवान् कृष्ण अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के साथ अपने इतने ही स्वरूप बनाकर, प्रत्येक रानी के पास कैसे रहते हैं?

वे अचानक रुक्मिणी के महल में पहुँचे। द्वारिकापुरी की शोभा तथा महल का प्रांगण आदि देखकर वे मुग्ध हो गए। नारद को देखते ही भगवान् कृष्ण ने पलंग पर से उठकर प्रेम से उनका स्वागत किया। रुक्मिणी ने पूजा की तथा उन्हें जो भी प्रिय हो, उसको पूरा करने की इच्छा व्यक्त की।

नारदजी ने कहा, “मैं तो भगवान् के दर्शन की अभिलाषा से आया हूँ।” ‘नारायण-नारायण’ करते उन्होंने दूसरी पटरानी के महल में प्रवेश किया। प्रत्येक महल में श्रीकृष्ण को कभी बच्चों से खेलते, कभी चौसर खेलते, कभी हास-विलास करते तो कभी मंत्रोच्चारण और कभी पूजा-अर्चना आदि करते देखा। नारदजी ने सोचा—यह तो आठ पटरानियों के साथ है। क्या सोलह हजार एक सौ के साथ भी यहीं व्यवहार है! नारद ने एक-एक करके सभी सोलह हजार एक सौ रानियों के महल में जाकर देखा। प्रत्येक भवन में भगवान् कृष्ण सांसारिक व्यवहार में लिप्त दिखाई पड़े। नारदजी ने हाथ जोड़कर भगवान् की प्रार्थना की—“आप अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त हैं, भगवन्! योगेश्वर! आपकी लीला अद्भुत है!”

श्रीकृष्ण ने कहा, “मैं संसार को धर्मपूर्ण शिक्षा देता हूँ और प्रत्यक्ष रूप से उसका आचरण भी करता हूँ। देवर्षि, मेरी योगमाया से तुम मोहित मत होना!”

श्रीकृष्ण नित्य धर्मपालन करते हुए प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर पूजा-पाठ, दान आदि करते। नित्य ही

सभा में नियमानुसार जाकर बैठते थे।

एक दिन सभा में जरासंध द्वारा बंदी बनाए गए राजाओं की ओर से एक दूत आया। उसने कहा, “दुष्ट जरासंध ने हजारों राजाओं को बंदी बना रखा है। भगवन्! मैं उनको छुड़ाने की प्रार्थना करने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।”

उसी समय नारदजी वहाँ पहुँचे। भगवान् कृष्ण ने मुसकराते हुए नारदजी से कहा, “नारदजी! आप तो तीनों लोकों में भ्रमण करते रहते हैं। हमको आपके द्वारा घर बैठे-बैठे ही सबके समाचार मिल जाते हैं। बताइए, हमारे पांडव-बांधवों के क्या हाल-चाल हैं?”

नारदजी ने कहा, “भगवन्, आप तो सर्वत्र व्याप्त हैं, फिर भी आप मेरा मान कर रहे हैं! धर्मराज युधिष्ठिर आपकी आराधना करने के लिए राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले हैं। बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों एवं राजाओं का आगमन होगा। आप वहाँ भी पधारकर यज्ञ की शोभा बढ़ाइए!”



## राजसूय यज्ञ में कृष्ण

द्वारिका सभा में कृष्ण को दो निमंत्रण एक साथ मिले—एक ओर, जरासंध के बंदीगृह से हजारों राजाओं को मुक्त कराने का, और दूसरी ओर, अपने प्रिय पांडवों के यहाँ राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने का। श्रीकृष्ण ने अपने मंत्री एवं सखा उद्धवजी से पूछा, “आप ही बताइए, मुझे कौन सा कार्य पहले करना चाहिए?” उद्धवजी ने सलाह दी, “शरणागत राजाओं को मुक्त कराना ही आपका पहला कार्य है। बाद में राजसूय यज्ञ में जाना उपयुक्त रहेगा। जरासंध की कारा में बंदी राजाओं की मुक्ति से आपका मान बढ़ेगा और बलशाली जरासंध पांडवों के यज्ञ में किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं डाल सकेगा। जरासंध को भीम द्वारा मल्लयुद्ध में पराजित करवाकर आप राजसूय यज्ञ को भी सफल करा सकेंगे।”

उद्धव की नीतिपूर्ण सलाह के अनुसार कृष्ण ने राजा उग्रसेन की आज्ञा लेकर अपनी आठों पटरानियों के साथ ससैन्य इंद्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया।

भगवान् कृष्ण के आगमन के समाचार से पांडवों तथा नगर की जनता में हर्षोल्लास छा गया। श्रीकृष्ण की अगवानी के लिए राजा युधिष्ठिर गद्गद हृदय से अपने भाइयों के साथ नगरद्वार पर आ पहुँचे। सभी अत्यंत भावुक एवं उल्लसित थे। नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन ने स्नेहालिंगन से तथा नकुल-सहदेव ने चरणस्पर्श से भगवान् का स्वागत किया। बड़ी धूमधाम एवं गाजे-बाजे के साथ श्रीकृष्ण भगवान् को लेकर पांडवों ने नगर में प्रवेश किया। रास्ते भर नगरवासियों तथा अट्टालिकाओं से स्त्रियों ने भगवान् पर पुष्पवर्षा की। भगवान् कृष्ण तथा उनकी पटरानियों को लेकर पांडव महल में गए। भगवान् ने बुआ कुंती को प्रणाम किया और कुशल-मंगल पूछा। बहन सुभद्रा तथा द्रौपदी ने आकर भाई की बलैया ली तथा रुक्मिणी आदि सभी रानियों से गले मिलीं। धर्मराज ने सभी को उपयुक्त स्थानों पर ठहराने की व्यवस्था की। श्रीकृष्ण एवं पांडव जब साथ बैठे तब धर्मराज ने कहा, “मुझे अब कोई काम करना शेष नहीं रहा। आपकी सेवा, पूजा तथा आराधना जिस कार्य से संपन्न हो, वहीं एक कर्म करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा केवल यही है कि राजसूय यज्ञ द्वारा आपकी पूजा करके संसार के लिए अनुकरणीय मार्ग दिखा सकूँ, ताकि जगत् के प्राणी आपको सरलता से प्राप्त कर सकें।”

भगवान् कृष्ण ने कहा, “धर्मराज, आपका विचार अति उत्तम है। राजसूय यज्ञ से धर्म की वृद्धि के साथ-साथ आपकी कीर्ति में भी वृद्धि होगी। आप अवश्य ही इस यज्ञ का आयोजन करें।”

आपस में विचार-विमर्श करके धर्मराज ने अपने चारों भाइयों को दिग्विजय करने की आज्ञा दे दी।

चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के राजाओं को जीतकर अनंत धनराशि लाकर राजा युधिष्ठिर को भेंट की। युधिष्ठिर को चिंता थी कि जरासंध को अभी तक नहीं जीता जा सका था। उन्होंने श्रीकृष्ण से विचार-विमर्श किया। श्रीकृष्ण ने उद्धवजी द्वारा दी गई सलाह से उन्हें अवगत कराया। फिर भीमसेन और अर्जुन को साथ लेकर ब्राह्मण वेश में मगध की राजधानी में जरासंध के यहाँ पहुँचे। जरासंध ब्राह्मण भक्त था। उसने याचक को कभी अपने द्वार से विमुख नहीं होने दिया। इसलिए ये तीनों ब्राह्मण वेश में ही जाकर जरासंध के सामने उपस्थित हुए।

### जरासंध वध

ब्राह्मण वेशधारी तीनों क्षत्रियों ने जरासंध से याचना की कि हम बहुत दूर से आए हैं। राजन्, हम आपके अतिथि हैं और विशेष प्रयोजन से ही यहाँ आए हैं। आप हमारी इच्छा पूर्ण करें।



श्रीकृष्ण ने राजा हरिश्चंद्र, रंतिदेव, शिबि, बलि आदि बहुत से महात्मा दानियों के नाम लेकर अतिथि को अपना सर्वस्व देकर अविनाशी पद को प्राप्त कर लेने की गाथा सुनाई और राजा से प्रार्थना की कि आप भी हमें निराश न करें। हमारी इच्छा को पूर्ण करें।

जरासंध ने उन लोगों की आवाज, सूरत, कलाइयों पर धनुष की प्रत्यंचा की रगड़ के निशान देखकर पहचान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, अवश्य ही क्षत्रिय हैं। जरासंध ने विचार किया कि चाहे ब्राह्मण न हों, लेकिन मेरे भय से ही ये छद्मवेश में आकर याचना कर रहे हैं तो इन्हें जो चाहिए मैं वही दूँगा। मेरे द्वार से कोई याचक विमुख होकर नहीं जाएगा। जरासंध ने उदारतापूर्वक कहा, “ब्राह्मणो, आप लोग मनचाहा माँग लो। मेरा शीश भी माँगो तो मैं दे सकता हूँ।” भगवान् कृष्ण समझ गए कि जरासंध ने उनको पहचान लिया है। वे बोले, “राजन्, हम लोग भोजन के इच्छुक ब्राह्मण नहीं हैं। हम क्षत्रिय हैं। आपके पास युद्ध के लिए आए हैं। हमको द्रुपद चाहिए!”

श्रीकृष्ण ने अपना, भीम तथा अर्जुन का परिचय दिया।

राजा जरासंध ने जोर से हँसकर कहा, “अरे कृष्ण, तुम तो मुझसे वैसे ही हारे हुए हो। युद्ध से भागनेवाले के साथ मैं द्रुपद नहीं कर सकता; अर्जुन भी दुबला-पतला और नपुंसक रहा है, उससे क्या युद्ध करना है; भीमसेन बलशाली दिखाई दे रहा है। मैं इसको अपने बराबर समझकर इसके साथ युद्ध कर सकता हूँ।”

जरासंध ने एक भारी गदा भीमसेन को दी और एक स्वयं उठा ली। दोनों में युद्ध प्रारंभ हो गया। नित नई पैतरेबाजी एवं प्रहार। एक-एक अंग पर होनेवाली चोटों की परवाह किए बिना महान् बलशाली दोनों योद्धाओं ने सत्ताईस दिन तक लगातार युद्ध किया। रात्रि में उनका मित्रवत् व्यवहार रहता और दिन भर युद्ध में गदाएँ टूटती रहीं और नई आती रहीं। घूँसों के आघात, एक-दूसरे को कुचलने की चेष्टा...उनके युद्ध-कौशल देख-देखकर सभी को आश्चर्य हो रहा था। अट्ठाइसवें दिन भीमसेन ने कृष्ण से कहा, “भाई, मैं इस जरासंध को हरा नहीं पाऊँगा।”

तब श्रीकृष्ण ने समझाकर कहा, “जरासंध दो टुकड़ों में पैदा हुआ था। उस समय जरा नाम की एक राक्षसी ने इसे बीच से जोड़ दिया था। तुम मल्लयुद्ध के समय इसके बीच में से दो टुकड़े करके अलग-अलग फेंक दो।”

भीमसेन ने नए उत्साह से युद्ध प्रारंभ किया। मल्लयुद्ध में भीमसेन ने दिन भर जरासंध पर बहुत चोटें कीं। श्रीकृष्ण ने सामने बैठे-बैठे हाथ में एक तृण लेकर उसे खड़ा चीर डाला और दोनों ओर फेंक दिया। यह भीमसेन के लिए सही समय का संकेत था। भीमसेन ने चपलता से जरासंध को नीचे गिराकर उसकी एक टाँग को पैर के नीचे दबाया, दूसरी को हाथों में पकड़कर उसको बीच में से चीर डाला तथा दोनों खंडों को दूर-दूर फेंक दिया।

जरासंध का वध हो गया, हो-हल्ला मचा। सभी हाय-हाय करने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भीम को गले लगाया। जरासंध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करवाकर भगवान् कृष्ण ने सभी राजाओं को, जिन्हें जरासंध ने बंदी बनाकर रखा था, मुक्त करवा दिया। मैले वस्त्र एवं कांतिहीन शरीरवाले राजा कृष्ण के चरणों में गिर पड़े।

भगवान् कृष्ण ने उन्हें अभयदान दिया। उन्हें श्रेष्ठ रथ, घोड़े और संपत्ति के साथ अपने-अपने राज्य के लिए विदा किया। अंत में भीमसेन तथा अर्जुन को साथ लेकर विजय पताका फहराते हुए इंद्रप्रस्थ लौट आए।

## भगवान् कृष्ण की अग्रपूजा

यज्ञ की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। यज्ञ में भाग लेने के लिए सारे भारतवर्ष के बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि आ गए। यज्ञ के ऋत्विज, आचार्य, भगवान् वेदव्यास, महर्षि गर्ग, वैशंपायन, विश्वामित्र, परशुराम, शुक्राचार्य आदि सभी आए थे। युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र एवं कौरव बंधुओं को भी सम्मानित स्थान देकर उनका आदर-सत्कार किया।

शास्त्रविधि के अनुसार ऋत्विजों ने यज्ञभूमि को स्वर्ण के हल से जुतवाकर धर्मराज युधिष्ठिर को दीक्षा दी। यज्ञ

की यह अनुपम शोभा देखने के लिए ब्रह्मा, शिव, इंद्र आदि देवता भी वहाँ उपस्थित हुए। यज्ञ में स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् कृष्ण विराजमान थे। सबसे पहले किसकी पूजा की जाए, इसपर विचार होने लगा। विभिन्न मत सामने आए। तब सहदेव ने उठकर कहा, “यदुवंशशिरोमणि भगवान् वासुदेव कृष्ण ही सब में श्रेष्ठ हैं। अतः उन्हींकी अग्रपूजा होनी चाहिए।”

सभासदों ने सहदेव का साधुवाद किया। पितामह भीष्म ने भी सहदेव के कथन की प्रशंसा करके उसका अनुमोदन किया।

तब भावाभिभूत धर्मराज युधिष्ठिर हाथ में यज्ञ का घृत एवं जल लेकर अपने भाइयों के साथ भगवान् कृष्ण के चरण पखारने लगे। चरणोदक सिर पर चढ़ाकर पांडवों ने विधिवत् दिव्यमाला, वस्त्राभूषण एवं केसर-तिलक से वासुदेव की पूजा की।

काल की गति बड़ी विचित्र होती है। अपार उत्साह भरी उस भीड़ में शिशुपाल अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। वह अत्यंत कठोर शब्दों में बोला, “यहाँ बड़े-बड़े तपस्वी, विद्वान्, ज्ञानी, परमज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ महर्षियों के होते हुए भी इस ग्वाले कृष्ण की अग्रपूजा की बुद्धि आपको कैसे हुई? बालक बुद्धि से सहदेव ने कह दिया और आपने मान लिया। इस कृष्ण का न तो कोई चरित्र है, न ही इसका कुल, वर्ण अथवा आश्रम है। यह अग्रपूजा के योग्य कैसे हो सकता है!”

कृष्ण की नाना प्रकार से भर्त्सना करते हुए शिशुपाल अपने मन का गुबार निकाल रहा था। कृष्ण रुक्मिणी का हरण करके ले आए थे। उस जलन एवं ईर्ष्या की प्रतिध्वनि शिशुपाल के शब्दों से बड़ी ही कठोरता एवं कटुता के साथ आ रही थी।

शिशुपाल के कटु वचन एवं अभद्रता से अर्जुन और भीमसेन उत्तेजित हो उठे। वे शिशुपाल को मारने के लिए तत्पर हो गए; किंतु कृष्ण ने उन्हें संकेत से रोक दिया। जो सभासद् कृष्ण की निंदा नहीं सुन सके वे उठकर यज्ञस्थल से चले गए। जब शिशुपाल सौ गालियाँ दे चुका तब भगवान् कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र की ओर देखा। चक्र ने पलक झपकते ही शिशुपाल का सिर काट दिया। शिशुपाल की देह से एक दिव्य ज्योति निकलकर सबके देखते-देखते भगवान् कृष्ण में समा गई।

धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ विधिवत् संपन्न हो गया। यज्ञ में सब कार्य योग्यता के अनुसार युधिष्ठिर ने बाँट दिए थे। भीमसेन को भोजनालय के प्रबंध का कार्य दिया था। दुर्योधन को कोषाध्यक्ष बनाया गया था, ताकि ईर्ष्यावश खूब खर्च करे। सहदेव को आतिथ्य सत्कार का भार दिया था। अर्जुन गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा के लिए नियुक्त थे। भगवान् कृष्ण ने स्वयं अतिथियों के पद पखारने का कार्य लिया था। द्रौपदी को भोजन परोसने का और कर्ण को दान देने का काम सौंपा था।

यज्ञ समाप्ति पर सभी ने गंगाजी में ‘अवभृथ’ स्नान किया। सम्राट् युधिष्ठिर एक सुसज्जित विशाल हाथी पर छत्र-चँवर के साथ अपनी रानी द्रौपदी, भाइयों तथा कृष्ण के साथ इंद्रप्रस्थ नगरी में पधारे।

## चमत्कारी महल

यज्ञ में आए अतिथियों की बिदाई हो रही थी। प्रियजन इंद्रप्रस्थ नगरी तथा मयदानव द्वारा बनाए गए चमत्कारी महल को देख रहे थे। दुर्योधन ने भी महल को देखने की इच्छा से उसमें प्रवेश किया। वह इधर-उधर भ्रमण करता रहा। वह ईर्ष्या की अग्नि से दग्ध हो रहा था। वह महल की चित्रकारी, नक्काशी देखते-देखते एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ जल दिखाई दे रहा था वहाँ स्थल था। उसने जहाँ स्थल समझकर पाँव रखा वहाँ लड़खड़ाकर जल में गिर पड़ा। उसे गिरते देखकर सभी खिलखिलाकर हँसने लगे। भीमसेन तो कृष्ण के प्रश्रय से ज्यादा ही जोर से

तालियाँ बजा-बजाकर मजाक कर रहे थे। दुर्योधन आग बबूला हो रहा था। वह द्रौपदी के महल की तरफ चला गया। वहाँ एक दरवाजा देखकर खोलना चाहा तो पता लगा, वह तो दीवार थी। एक जगह वह दीवार से सट गया तो सहसा दरवाजा खुल गया और वह गिर पड़ा। द्रौपदी की हँसी छूट गई। वह बोली, “अंधे के पुत्र अंधे ही होते हैं!” इस व्यंग्य बाण से दुर्योधन का मर्म छिद गया। वह चुपचाप हस्तिनापुर लौट गया। धर्मराज को इस बात से दुःख हुआ। श्रीकृष्ण चुप ही रहे। सबको भविष्य में महान् दुर्घटना होने की आशंका-सी व्याप गई।



## शाल्व का आक्रमण

शिशुपाल का एक अंतरंग मित्र राजा शाल्व था। वह शिशुपाल के विवाह का निमंत्रण पाकर उसके साथ विदर्भ गया था। कृष्ण ने जब रुक्मिणी हरण किया, उस समय वह भी कृष्ण को मारने के लिए पीछे दौड़ा था; लेकिन जरासंध आदि के साथ उसको भी कृष्ण भगवान् ने परास्त करके खदेड़ दिया था। उस अपमान के कारण उसने प्रतिज्ञा की थी कि यदुवंशियों को दंड दूँगा। उसने अपनी प्रतिज्ञापूर्ति के लिए भगवान् शंकर की तपस्या प्रारंभ कर दी। भगवान् भोले शंकर ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा। उसने वर माँगा—“मुझे आप ऐसा विमान दीजिए, जो देवता, असुर, मनुष्य, गंधर्व, नाग—किसीसे भी तोड़ा न जा सके। जहाँ इच्छा करूँ वहीं पहुँच जाऊँ और विशेष रूप से यदुवंशियों के लिए अत्यंत भयंकर हो।”

भगवान् शिव ने ‘तथास्तु’ कह दिया। मयदानव ने शिव की आज्ञा से लोहे का ‘सौभ’ नामक विमान तैयार करके राजा शाल्व को दे दिया। शाल्व ने विमान प्राप्त करते ही द्वारिकापुरी पर चढ़ाई कर दी। शिशुपाल की मृत्यु के समाचार से वह अत्यंत कुपित था। अपनी सेना के साथ वह द्वारिकापुरी का नाश करने लगा। उस समय कृष्ण, बलराम आदि इंद्रप्रस्थ में थे। प्रद्युम्न अपने बलशाली भाइयों के साथ द्वारिका की रक्षा करने लगे। युद्ध के मैदान में सांब, चारुदेष्ण आदि के साथ ही अक्रूर, कृतवर्मा आदि महारथी भी डटे हुए थे। प्रद्युम्न अपने पराक्रम से शाल्व की माया को बाणों से बाँध रहे थे। शाल्व माया से छिप-छिपाकर युद्ध करता था। शाल्व ने आकाश में रात्रि का घोर अंधकार फैला दिया। प्रद्युम्न ने अपने तेजयुक्त बाणों के प्रकाश से वायुमंडल प्रज्वलित करते हुए शाल्व की माया का नाश किया। प्रद्युम्न के पराक्रम को देखकर शाल्व चकित रह जाता था। तभी शाल्व के एक मंत्री द्युमान ने प्रद्युम्न पर गदा का विकट प्रहार किया। इस प्रहार से प्रद्युम्न का वक्षःस्थल फट गया। वे अचेत होकर पृथ्वी पर गिरने लगे तो उनका सारथि अपना कर्तव्य समझकर रथ द्वारिकापुरी में ले आया। प्रद्युम्न की मूर्च्छा हटी तो उन्हें ठेस लगी कि वे युद्धक्षेत्र से भागकर आ गए हैं! वे लौटकर पुनः युद्धस्थल में आए और अपार धैर्य के साथ शाल्व से सत्ताईस दिन तक युद्ध करते रहे।

इधर कृष्ण ने बलराम से कहा, “दाऊ, अनेक अपशकुन हो रहे हैं। कहीं द्वारिका में कोई नया उत्पात न खड़ा हो गया हो!”

कृष्ण ने पांडवों तथा अपनी बुआ से विदा ली और द्वारिका पहुँचे। वहाँ घोर उपद्रव देखकर उन्होंने द्वारिकापुरी की रक्षा का भार बलदाऊ को सौंपा और स्वयं युद्धस्थल पर पहुँच गए। भगवान् कृष्ण के रथ को देखते ही यादव सेना हर्षोल्लास से उछल पड़ी। शाल्व ने देखा कि श्रीकृष्ण आ पहुँचे हैं तो उसने कृष्ण के सारथि दारुक पर अपनी शक्ति का प्रयोग किया। भगवान् ने क्षणमात्र में उसे ही काट दिया। श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से शाल्व के विमान को जर्जर कर दिया। शाल्व के एक प्रखर बाण से कृष्ण के हाथ से शार्ङ्ग धनुष छूटकर गिर गया। इससे हाहाकार मच गया और शाल्व गर्व से उन्मत्त होकर बकवास करने लगा।

कृष्ण ने अपनी विशाल गदा से शाल्व की पसली पर वार किया। गदा का वार पड़ते ही वह रक्त उगलने लगा। फिर वह अंतर्धान हो गया। तभी एक पुरुष रोता हुआ आया और श्रीकृष्ण से बोला, “आपके पिता वसुदेवजी को शाल्व बाँधकर ले गया।” उसी समय कृष्ण ने देखा कि शाल्व ने वसुदेव का सिर तलवार से काट दिया। भगवान् ने सोचा—द्वारिकापुरी की रक्षा बलदाऊ कर रहे हैं। उनको कोई पराजित कैसे कर सकता है? योगशक्ति से कृष्ण शाल्व की दानवी माया को समझ गए। उन्होंने गदा के प्रहार से सौभ विमान को खंड-खंड कर दिया। शाल्व पृथ्वी

पर आ गिरा। कृष्ण ने झपटकर शाल्व की गदावाली भुजा भाले से काट दी। फिर चक्र से उसका सिर काट गिराया। इस तरह पापी शाल्व मारा गया।

उसी समय शाल्व का परममित्र दंतवक्र शिशुपाल एवं शाल्व की मृत्यु का बदला लेने के लिए आ पहुँचा। भगवान् कृष्ण ने उसको भी अपनी गदा से मार डाला। उसमें से दिव्य ज्योति निकलकर भगवान् में समा गई!

दंतवक्र का एक भाई विदुर था। भाई की मृत्यु से दुःखी होकर वह कृष्ण को मारने के लिए द्वारिका पर चढ़ आया। कृष्ण ने उसे भी मार डाला।



## बलरामजी पर ब्रह्महत्या का पाप

बलराम को जानकारी मिली कि कौरव-पांडवों में युद्ध की तैयारी हो रही है और इस भावी युद्ध में श्रीकृष्ण का ही हाथ है। वे अपने-आपको तटस्थ रखने के उद्देश्य से तीर्थयात्रा पर चले गए। दुर्योधन उनका शिष्य था और पांडव उनके भाई थे। इसी कारण वे किसीका पक्ष नहीं लेना चाहते थे।

तीर्थयात्रा करते-करते वे नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ पर ऋषियों का दीर्घकाल से सत्संग चल रहा था। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि वहाँ विराजमान थे। व्यासजी के प्रिय शिष्य रोमहर्षण सूतजी पौराणिक कथाएँ सुना रहे थे। बलराम वहाँ पहुँचे तो सभी ने आदर के साथ उठकर उनका स्वागत किया; किंतु रोमहर्षण, जो व्यास गद्दी पर बैठे थे—न उठे, न उन्हें प्रणाम ही किया। बलराम को इसपर बड़ा क्रोध आया। वे बोले, “यह विलोम कुल (क्षत्रिय पिता एवं ब्राह्मण माता की संतान) सूत अभिमानवश ही ऊँचे आसन पर बैठा हुआ है। झूठे ज्ञान के घमंड में इसने मेरा अपमान किया है। इस उद्दंड को अवश्य दंड मिलना चाहिए।”

बलराम ने वहीं पर पड़ी कुशा की नोक से रोमहर्षण पर प्रहार किया। रोमहर्षण की मृत्यु हो गई। इस कृत्य को देखकर ऋषि-मुनि हाय! हाय! करने लगे। वे बोले, “भगवन्, व्यास गद्दी पर तो हम लोगों ने ही इन्हें बिठाया था। आपने यह अच्छा नहीं किया। आपको ब्रह्महत्या का पाप लगा है। आपको अब प्रायश्चित्त अवश्य ही करना चाहिए, अन्यथा संसार इसी प्रकार आचरण करने लगेगा। आपका जन्म धर्म की रक्षा के लिए हुआ है।”

बलराम ने कहा, “आप चाहते हैं तो मैं रोमहर्षण को अभी जीवित किए देता हूँ। आपके कहे अनुसार प्रायश्चित्त भी करूँगा।”

ऋषियों ने उनसे कहा, “भगवन्, अब ऐसा उपाय सोचें जिससे आपका वचन तथा इसकी मृत्यु झूठी न पड़े और नित्य सत्संग के लिए हमने भी इन्हें दीर्घजीवन का वरदान दिया था—वह भी सत्य साबित हो।”

तब बलराम ने कहा, “पुत्र में पिता की आत्मा एवं अंश होते हैं, अतः रोमहर्षण के पुत्र आपको कथा सुनाएँगे। मैं उन्हें अपनी शक्ति से दीर्घायु तथा बल देता हूँ। अब मुझे ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त बताइए।”

ऋषियों ने कहा, “यहाँ पर्व के समय और वैसे भी बल्वल नामक राक्षस के उपद्रव से घोर त्रास छाया रहता है। इन विघ्नों का नाश करके इस स्थान को तथा हम सबको भयमुक्त करें। उसके पश्चात् एक वर्ष तक भारतवर्ष के समस्त तीर्थों का भ्रमण करने से ब्रह्महत्या के पाप से आपको मुक्ति मिल जाएगी।”

ऋषियों की आज्ञा के अनुसार बलराम पर्व तक वहीं ठहरे। पर्व के समय बल्वल राक्षस आँधी के रूप में आया और ऋषियों पर मांस-मज्जा आदि की वर्षा करने लगा। यज्ञशाला में भी उसने मल-मूत्र की वर्षा की और अंत में हाथ में त्रिशूल लेकर प्रकट हुआ। बलराम ने उसे अपने हल से खींचा और मूसल से मार डाला। उसके बाद तीर्थयात्रा के लिए चल पड़े।

उन्होंने कौशिकी में स्नान किया फिर सरयू नदी के उद्गम स्थान पर गए। वहाँ से प्रयाग पहुँचे और पितरों का तर्पण किया। वहाँ से पुलहा, गोमती, गंडकी, विपाशा आदि में स्नान किया फिर गया में जाकर पिंडदान किया। वहाँ से वे गंगासागर पहुँचे और परशुराम के दर्शन किए। फिर कामाक्षी, शिवकांची, विष्णुकांची होते हुए कावेरी में स्नान करके वे रंगक्षेत्र में गए। वहाँ सदैव भगवान् विष्णु विराजमान रहते हैं। उन्होंने ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा एवं सेतुबंध की यात्रा की। कृत्तमाला एवं ताम्रपर्णी नदियों में स्नान करके बलराम मलयपर्वत पर गए। वह सात पर्वतों में से एक है। वहाँ अगस्त्य मुनि के दर्शन किए। उनका आशीर्वाद प्राप्त करके वे दक्षिण समुद्र की यात्रा के लिए चल

पड़े। कन्याकुमारी के दर्शन किए और फाल्गुन तीर्थ अनंत शयनक्षेत्र में गए। वहाँ से वे पंचाप्सरस तीर्थ में गए। बलराम केरल एवं निगर्त देशों में होकर गोकर्ण तीर्थ में आए। वहाँ जल से घिरे द्वीप में निवास करनेवाली आर्यादेवी का दर्शन करके शूर्पारक क्षेत्र की यात्रा करते हुए तापी, पयोष्णी, निर्विंध्या नदियों में स्नान करके वे दंडकारण्य में आए। नर्मदाजी में स्नान करके बलरामजी महिष्मतीपुरी में मनुतीर्थ में स्नान करके प्रभासक्षेत्र पहुँचे। वहीं उन्होंने सुना कि कौरव-पांडवों के युद्ध में अधिकांश क्षत्रियों का संहार हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि अब पृथ्वी का अधिकांश भार उतर गया है। वे कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध चल रहा था। वे उसे रोकने के लिए ही वहाँ पहुँचे थे। भगवान् कृष्ण, धर्मराज, अर्जुन, नकुल, सहदेव ने बलरामजी को प्रणाम किया और चुपचाप खड़े रहे। सभी सोच रहे थे कि अब बलरामजी क्या कहते हैं? भीम और दुर्योधन युद्ध में मतवाले होकर रक्त से लथपथ हो रहे थे, लेकिन कोई भी युद्ध त्यागने को तैयार नहीं था। बलरामजी ने कहा, “तुम दोनों ही बलशाली हो। युद्ध में कुशल हो। मुझे तो दोनों में से किसीकी भी हार-जीत के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं। तुम लोग व्यर्थ ही क्यों लड़ रहे हो? युद्ध बंद करो, इसीमें तुम्हारी भलाई है।”

लेकिन एक-दूसरे के परम शत्रु वे दोनों बलरामजी की बात क्यों सुनने लगे? दुर्योधन ने भीम पर गदा का प्रचंड प्रहार किया। उसी समय कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने अपनी विशाल गदा घुमाकर दुर्योधन की जाँघ पर मारी। दुर्योधन की जाँघ टूट गई। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। भीम ने अति क्रोध में आकर नीचे गिरे दुर्योधन के सिर पर एक लात और मारी। इसे अमानुषी अत्याचार समझकर बलराम को अतिशय क्रोध आया। वे मूसल उठाकर भीमसेन को मारने के लिए दौड़े और क्रोधित स्वर में बोले, “अरे मूर्ख, तूने गदायुद्ध के नियम को भंग करके कटि प्रदेश से नीचे जाँघा पर गदा मारी! और फिर उसके पृथ्वी पर गिरने के बाद, जिस सिर पर राजमुकुट रहता था उस सिर पर लात मारी!”

भगवान् कृष्ण ने दौड़कर उन्हें रोका और शांत किया। उन्हें बताया कि दुर्योधन ने पांडवों पर क्या-क्या अत्याचार किए थे। भीम की प्रतिज्ञा भी बताई। बलराम ने कृष्ण की इच्छा समझी और वहाँ से द्वारिका चले गए।

उग्रसेन आदि गुरुजनों ने बलराम का स्वागत किया। बाद में फिर नैमिषारण्य में जाकर बलरामजी ने यज्ञ करवाए और अपनी पत्नी रेवतीजी के साथ यज्ञांत स्नान करके द्वारिकापुरी लौट आए।



## सुदामा की मैत्री तथा अन्य प्रसंग

सुदामा नाम का एक गरीब ब्राह्मण श्रीकृष्ण का परममित्र था। वह ब्रह्मज्ञानी एवं शांतचित्त था। भिक्षा में जो कुछ मिल जाता उसीमें संतोष करके जीवन यापन करता रहा। उसकी पत्नी भी उसके ही अनुरूप थी। एक दिन भूख से व्याकुल होकर वह दुःखी मन से पति से बोली, “साक्षात् लक्ष्मीपति आपके मित्र हैं। वे भक्तवत्सल एवं ब्राह्मणभक्त हैं। आप उनके पास जाइए तो, बिना माँगे ही आपकी दरिद्रता दूर कर देंगे। वे तो इतने उदार हैं कि भक्त को बिना माँगे ही अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं।”

पत्नी की बात सुनकर सुदामा बोले, “यह बात तो सत्य है कि मेरे मित्र दीनबंधु एवं भक्तवत्सल हैं, लेकिन जब अपना इतना समय दरिद्रता में निकल गया है तो अब शेष जीवन के लिए उनसे क्यों याचना करने जाऊँ। याचना करने पर मित्रता में फर्क अवश्य आ जाएगा। इसलिए देवी, हम तो जैसे हैं, वैसे ही ठीक हैं।”

पत्नी ने बहुत दीनभाव से कहा, “देव, एक समय भी आधा पेट भोजन मिल जाता था, तब तक तो ठीक था, लेकिन अब तो रोज फाके ही हो रहे हैं!” पत्नी का आग्रह एवं दीनता भरी दृष्टि देखकर ब्राह्मण सुदामा को दया आ गई। वे दुःखी अवश्य हुए, लेकिन एक विचार यह भी आया कि चलो, भगवान् के दर्शन का लाभ तो हो ही जाएगा। याचना तो मैं करूँगा नहीं। सोच-समझकर सुदामा ने पत्नी से कहा, “मित्र से मिलने जाना है, कुछ भेंट तो ले जानी चाहिए। मित्र राजा भी हैं, तब तो कुछ-न-कुछ भेंट अवश्य ही चाहिए।” पत्नी पड़ोसिन से एक मुट्ठी चिड़वा माँगकर लाई और सुदामाजी के फटे चिथड़े में बाँध दिए। सुदामा कृष्ण के बचपन का साथ और उनकी मित्रता का स्मरण करते हुए द्वारिकापुरी को चल दिए।

ज्यों-ज्यों द्वारिकापुरी नजदीक आ रही थी, सुदामा की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी—मुझे भगवान् के दर्शन किस प्रकार होंगे? कौन उनके भव्य महलों में मुझे घुसने देगा? मैं मिलूँगा तो वे मुझे पहचानेंगे या नहीं? इस प्रकार उधेड़बुन में पड़े सुदामा द्वारिका पहुँच गए। ब्राह्मण को द्वारिका में कोई रोक-टोक नहीं थी। वे भगवान् कृष्ण के महल में पहुँच गए। सामने देखा तो कृष्ण पलंग पर बैठे हैं। रुक्मिणीजी पास ही खड़ी हैं। सुदामा को देखते ही श्रीकृष्ण उत्साहपूर्वक उठे और दौड़कर बड़ी प्रसन्नता से मित्र को गले लगा लिया। भगवान् कृष्ण मित्र के स्पर्श से बहुत प्रफुल्लित हुए। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। मित्र का हाथ पकड़कर कृष्ण उन्हें पलंग के पास ले गए। उन्हें बैठाकर स्वयं उनके लिए जल लेकर खड़े हो गए। उनके हाथ-पैर पोंछे। उनके पैर धोकर चरणोदक सिर पर धारण किया। दिव्य गंध एवं केशर का लेप करके, सुंदर पुष्पमाला आदि पहनाकर उनकी पूजा की तथा उनके पास बैठ गए। रुक्मिणीजी स्वयं पंखा झलने लगीं। कृष्ण उनका हाल-चाल पूछ रहे थे। अंतःपुर की स्त्रियाँ देख रही थीं कि फटे-पुराने वस्त्र पहने इस दुर्बल, निर्धन ब्राह्मण ने ऐसा क्या पुण्य किया है कि स्वयं भगवान् उसकी सेवा कर रहे हैं! और रुक्मिणीजी पंखा झल रही हैं।

कृष्ण-सुदामा—दोनों भिन्न बाल्यकाल के समय की गुरुकुल की घटनाओं को स्मरण कर रहे थे और प्रसन्नचित्त होकर एक-एक बात का स्मरण कर-करके हँस रहे थे।

श्रीकृष्ण ने कहा, “मित्र, गुरुदक्षिणा देकर जब आप गुरुकुल से लौटे तब आपने अपने अनुरूप किसी स्त्री से विवाह किया या नहीं? आप तो प्रारंभ से ही विरागी थे। धन आदि में भी कभी आपकी आसक्ति नहीं रही। मित्र, आपको याद है...जब हम गुरुकुल में रहते थे, एक दिन गुरुमाता ने हमें जंगल में लकड़ी लेने भेजा था। हम घने जंगल में चले गए थे। तभी वर्षा और भयंकर तूफान आ गया था। सूर्यास्त हो गया और चारों ओर अँधेरा छा गया



था। दिशा का हमें पता नहीं चला। हम दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर इधर-उधर भटक रहे थे। हमारे पूज्य गुरुवर सांदीपनि को इस बात का पता चला कि हम जंगल में लकड़ी लेने गए हैं तो वे स्वयं हमें ढूँढ़ने आए थे...उन्होंने हमें देखकर कहा था, “पुत्रो, तुमने हमारे लिए अत्यंत कष्ट उठाया है। मैं तुम लोगों से अत्यंत प्रसन्न हूँ। तुमने यहाँ जो वेदाध्ययन किया है वह सदैव तुम्हें कंठस्थ रहे। तुम कहीं भी निष्फल नहीं होगे...। हमारे ऊपर गुरुदेव की बड़ी कृपा रही!”

इसी प्रकार की बातें करते हुए प्रगाढ़ प्रेम के साथ सुदामा आनंदपूर्वक कई मास तक द्वारिकापुरी में रहे। सुदामा को अपनी पत्नी का स्मरण भी नहीं रहा। उनका मन कृष्ण के प्रेमभाव में मग्न हो गया था। कृष्ण ने सहसा एक दिन मित्र से पूछा, “हमारी भाभी ने हमारे लिए क्या भेंट भेजी है?”

श्रीकृष्ण के अपार वैभव को देखते हुए सुदामा लज्जावश ही चिड़वा नहीं निकाल पाए। उन्होंने सिर नीचा कर लिया। भगवान् कृष्ण से भला कोई बात छिपी रह सकती थी! वे सुदामा की इच्छा तथा उनकी पत्नी द्वारा धन की कामना से उन्हें द्वारिका भेजने के विषय में सभी कुछ जान गए थे। भगवान् कृष्ण ने सुदामा की बगल में दबी चिड़वे की पोटली को छीना-झपटी से निकाल लिया। खोलकर बोले, “तुम तो मेरे मन लायक ही भेंट लाए हो! इससे मैं ही क्या, संपूर्ण विश्व संतुष्ट हो जाएगा!” उन्होंने पोटली में से एक मुट्ठी चिड़वा उठाकर खा लिया। दूसरी मुट्ठी भरकर वह मुँह की ओर ले जाने लगे तो लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी ने भगवान् कृष्ण का हाथ पकड़ लिया और बोलीं, ‘देव! एक मुट्ठी चिड़वा ही बहुत है। आपकी प्रसन्नता के लिए इतना ही बहुत है। इतने में ही आपने मित्र को पूर्ण समृद्धि तो दे ही दी है। अब क्या दूसरी मुट्ठी खाकर आप मुझे भी दे देंगे!

सुदामा अब वहाँ से विदा होना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने उनके मन की इच्छा समझकर प्रत्यक्ष रूप में उन्हें कुछ नहीं दिया और न सुदामा ने कुछ याचना ही की। वे तो कृष्ण के प्रेम में इतना डूब गए थे कि विदा के समय बार-बार विह्वल हो रहे थे। प्रेमाश्रु भरे नेत्रों से देखते हुए वे अपने घर के लिए विदा हो गए। श्रीकृष्ण काफी दूर तक उनको पहुँचाने गए।

रास्ते में सुदामा विचार करने लगे कि भगवान् कृष्ण ने अवश्य मेरे जैसे दरिद्र के लिए यही सोचा होगा कि धन-दौलत पाकर मैं मतवाला न हो जाऊँ, इसीलिए कुछ नहीं दिया। मेरा मित्र सच्चा है, उसने मेरी सच्ची मदद की है।

कृष्ण के प्रेम का स्मरण करते-करते वे अपने नगर में पहुँच गए। पर वे हतप्रभ रह गए। जहाँ उनकी झोंपड़ी थी वहाँ पर तो एक भव्य भवन बन गया था! घोड़े, रथ आदि के साथ सेवकगण इधर-उधर घूम रहे थे। सुदामा अपनी झोंपड़ी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भटक रहे थे, तभी उनकी पत्नी आ गई। बोलीं, “पतिदेव, यह आपका ही महल है!” तब सुदामा भगवान् कृष्ण का लीला समझ गए। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम किया। सुदामा के मन में कृष्णभक्ति का आनंद द्विगुणित हो गया।

## यशोदा-कृष्ण

कुरुक्षेत्र तीर्थ में सूर्यग्रहण पर स्नान की भारी महिमा है। एक बार सूर्यग्रहण के पर्व पर द्वारिकावासी उग्रसेन, अक्रूर, वसुदेव, प्रद्युम्न, सांब आदि सभी परिवारजनों को लेकर कृष्ण-बलराम कुरुक्षेत्र आए। सभी ने सूर्यग्रहण पर स्नान कर। दान-पुण्य किए। ग्रहण-मोक्ष हो जाने पर उन्होंने परशुराम द्वारा बनाए गए कुंडों में स्नान किया तथा ब्रह्मभोज कराया। वहाँ पर अनेक राजा, इष्टमित्र आदि भी आए थे। हस्तिनापुर से पांडव तथा व्रज से नंद बाबा के साथ गोपियाँ एवं मैया यशोदा भी आई थीं।

उग्रसेन, वसुदेव आदि अपने संबंधियों से बहुत समय के बाद मिले थे। वे एक-दूसरे से कुशलक्षेम पूछ रहे थे। कुंती ने भाई को देखा तो बड़ी व्याकुल हुई। बोलीं, “मुझ अभागिन की कभी सुध ले ली होती! भाई, मैं बड़े कष्ट में

रही। उस समय भी तुमने मुझे कभी याद नहीं किया।” वसुदेव ने प्यार भरे शब्दों में कहा, “मेरा बहुत समय तो कारावास में ही निकल गया। कृष्ण-बलराम का पालन-पोषण नंद ने ही किया। तुम्हारे भतीजों ने दुष्टों का संहार किया। तब जाकर अब द्वारिका में शांति से रह रहे हैं।”

सभी मित्र, बंधु-बंधव एक-दूसरे से मिल रहे थे। बातें कर रहे थे। नंद बाबा और मैया यशोदा भी यह सुनकर कि वसुदेवजी अपने पूरे परिवार के साथ आए हैं, बेसुध से कृष्ण-बलराम से मिलने दौड़ पड़े। दोनों भाइयों ने चरण छुए; कृष्ण यशोदा को पकड़कर खड़े रह गए। यशोदा के आँसुओं से कृष्ण का मस्तक भीग रहा था। वे बालक की तरह मैया की छाती से चिपके रहे। कृष्ण-बलराम, नंद बाबा तथा सभी गोप सखाओं से गले मिले। गोपियों को एकांत में ले जाकर उनके उलाहने सुने और उन्हें हृदय से लगाया। श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा, “तुम्हारे अपार स्नेह की बराबरी कोई नहीं कर सकता। संयोग-वियोग तो प्रारब्ध के अनुसार होते हैं; लेकिन जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तथा योगीजनों को भी प्राप्त नहीं हुआ, मेरा वह अनन्य प्रेम तुम्हींको प्राप्त हुआ है। तुम मेरी आराधना करके मेरे स्वरूप में लीन हो जाओगी। मैं ही अविनाशी सत्यब्रह्म हूँ।” इस प्रकार अध्यात्मज्ञान का उपदेश देकर कृष्ण ने गोपियों को सदा के लिए ईश्वर की भक्ति में रत कर दिया।

कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के साथ द्रौपदी बैठी थीं। वे इस रहस्य को जानना चाहती थीं कि कैसे भगवान् कृष्ण ने इनसे विवाह किया और कैसे उनके मन को तृप्त करते हैं? तब रुक्मिणी ने अपने स्वयंवर की कथा सुनाई, सत्यभामा ने मणि के चुराने के आरोप की कथा सुनाई, जांबवती ने भी अपनी बात बताई। कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा तथा लक्ष्मणा—आठों पटरानियों ने अपने-अपने विवाह का तथा भगवान् के उनके प्रति अगाध प्रेम की कथाएँ द्रौपदी को सुनाई। सोलह हजार एक सौ रानियों में से भी एक-एक ने अपने जीवन को कष्ट से उबारनेवाले अपने प्रिय पति कृष्ण के प्रेम-व्यवहार एवं विवाह की बात बताई। कुंती, गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा आदि सभी कृष्ण की रानियों के पतिप्रेम की बातें सुनकर मुग्ध हो गईं। भगवान् कृष्ण तथा बलराम के दर्शनों के लिए वहाँ व्यास, नारद, सप्तर्षि आदि आ गए। कृष्ण ने अपनी मधुर वाणी से उनका सम्मान करते हुए कहा, “संत पुरुष ही वास्तव में तीर्थ हैं।”

वसुदेवजी ने ऋषियों को प्रणाम करते हुए पूछा, “मुनिवर, कोई ऐसा अनुष्ठान बताएँ जिससे मुझे मोक्ष प्राप्ति हो!”

नारदजी बोले, “वसुदेवजी, आपने तो आदिपुरुष नारायण को जन्म दिया है! जो स्वयं मोक्षदाता हैं, आपका स्नेह तो अपने बालक के प्रति है। आपने उन्हें नारायण नहीं माना है। आप धन्य हैं!”

ऋषियों ने वसुदेवजी से कहा, “आपको देवऋण से उऋण होना है, इसलिए आप यज्ञ कीजिए। बाद में संसार से संन्यास ले लीजिए।”

वसुदेवजी ने ऋषियों के आदेशानुसार कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया। सभी ऋषि-मुनियों की पूजा-अर्चना की। यज्ञपूर्ण होने पर पत्नियों के साथ स्नान किया और स्नेही-संबंधियों को बहुमूल्य विदाई देकर विदा किया।

वर्षा ऋतु आ गई थी, अतः उग्रसेन यदुवंशियों को लेकर द्वारिकापुरी के लिए रवाना हो गए।

## सुभद्राहरण

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा, “राजन्, तुम्हारे दादा वीर अर्जुन की एक कथा तुमको सुनाता हूँ।”

अर्जुन एक बार तीर्थयात्रा करते हुए प्रभासक्षेत्र में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने सुना कि बलराम अपनी बहन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं। उन्हें पता चला कि वसुदेवजी एवं श्रीकृष्ण की इसमें सहमति नहीं है। तब अर्जुन ने त्रिदंडी ब्राह्मण का वेश धारण किया और सुभद्रा को प्राप्त करने के उद्देश्य से द्वारिकापुरी में चातुर्मास के

लिए निवास रखा। बलराम ने त्रिदंडी ब्राह्मण देवता को अपने महल में निमंत्रित किया। भोजन के समय अर्जुन ने सुभद्रा को देखा तो उनके सौंदर्य पर मुग्ध हो गए। उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि सुभद्रा का हरण करके उससे विवाह करना ही है। लेकिन कैसे? इधर सुभद्रा भी अर्जुन के सुदर्शन मुख एवं सुंदर शरीरयष्टि को देखकर मोहित हो गईं।

एक दिन सुभद्रा देवदर्शन के लिए अपनी सखियों को साथ लेकर द्वारिकापुरी से बाहर निकलीं। अर्जुन तो अवसर की ताक में थे ही। उन्होंने वसुदेव-देवकी एवं कृष्ण की मूक सहमति से सुभद्रा का हरण कर लिया। सुभद्रा के रक्षकों को अर्जुन ने भगा दिया। बलराम ने जब यह सुना कि अर्जुन सुभद्रा का हरण करके ले गए हैं तो वे अत्यंत क्रुद्ध हो गए। भगवान् कृष्ण और अन्य संबंधियों ने उनके चरण पकड़कर उन्हें शांति किया। अंत में बलराम ने अपनी बहन की प्रसन्नता के लिए स्वयं खुश होकर, अपनी बहन तथा उसके वर अर्जुन के लिए रथ, हाथी, घोड़े आदि सम्मान-सामग्री भेजी और उन्हें आशीर्वाद दिया।

## श्रुतदेव की कथा

मिथिलापुरी के राजा जनक तथा एक ब्राह्मण श्रुतदेव भगवान् कृष्ण के परमभक्त थे। भगवान् कृष्ण अपने दोनों भक्तों पर कृपा करने के लिए रथ पर सवार होकर मिथिलापुरी पहुँचे। नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम आदि अनेक ऋषि-मुनि और योगीजन भी उनके साथ थे। उनके आगमन से संपूर्ण मिथिलावासी बहुत प्रसन्न हुए और घर से निकल-निकलकर भक्ति भाव से उनके चरणों में गिर पड़े। राजा जनक भी अत्यंत प्रसन्न हुए। श्रुतदेव ब्राह्मण भी अति प्रसन्न होकर अपनी सामर्थ्यानुसार पूजा-सामग्री लेकर श्रीकृष्ण भगवान् की अगवानी करने के लिए पहुँच गए।

भगवान् कृष्ण को दोनों ही भक्त समान रूप से प्रिय थे। उन्होंने दोनों की इच्छा पूरी करने के लिए सभी ऋषियों-मुनियों समेत दो स्वरूप धारण किए और दोनों के यहाँ पहुँच गए। दोनों समझ रही रहे थे कि भगवान् उन्हींके यहाँ आए हैं। वे प्रेम-विह्वल होकर भगवान् तथा ऋषि-मुनियों की पूजा-अर्चना करके उनकी सेवा कर रहे थे।

भगवान् श्रीकृष्ण ने दोनों को भिन्न स्थानों पर एक साथ श्रीहरि की आराधना एवं पूजा का ज्ञान प्रदान किया और द्वारिका लौट आए।

## देवकी के छह पुत्र

कुरुक्षेत्र से लौटने के बाद वसुदेव-देवकी ने अपने दोनों पुत्रों को परमेश्वर का स्वरूप मानकर कहा, “हे देव! पुत्ररूप में आपने हमारे यहाँ जन्म लेकर हमको परमगति दे दी है। मेरी एक इच्छा है कि जिन छह पुत्रों को कंस ने मार डाला था, उनको वापस ला दो।” तब भगवान् कृष्ण ने योगबल से ‘सुतल लोक’ में जाकर अपने छहों भाइयों को राजा बलि से माँगकर देवकी के सामने ला खड़ा कर दिया। देवकी ने अपने पुत्रों को देखा तो वात्सल्य से उनकी छाती से दूध की धारा बहने लगी। पुत्रों को माँ के हृदय का स्पर्श और दूध की धारा का पावन तीर्थ मिला। वे शापमुक्त हो गए। माता-पिता तथा भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम करके वे छहों दिव्य पुरुष सशरीर देवलोक को चले गए।

## अद्भुत सत्य

एक अद्भुत सत्य है कि भगवान् शिव की उपासना करनेवाले प्रायः ऐश्वर्य-संपन्न होते हैं, जबकि लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु की उपासना करनेवाले दीन-दरिद्र। यह विचार हर किसीके मन में आता है। राजा परीक्षित के मन में

भी यही शंका उत्पन्न हुई कि त्यागी की उपासना से भोग और लक्ष्मीपति की उपासना से त्याग कैसे मिलता है? शुकदेव भगवान् ने उनकी शंका का निवारण करते हुए कहा, “शिवजी हमेशा अपनी शक्ति से युक्त रहते हैं। वे सत, रज एवं तामस—तीनों गुणों से युक्त अहंकार के अधिष्ठाता देवता हैं। इनसे ही पंचमहाभूत, दस इंद्रियों एवं एक मन की सृष्टि हुई है। एक की उपासना करने पर ही संपूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। भगवान् श्रीहरि प्रकृति से परे हैं। वे स्वयं गुणरहित एवं गुणातीत हैं। इसलिए उनके भक्त भी गुणातीत हो जाते हैं। भगवान् कृष्ण से एक बार युधिष्ठिर ने भी यही पूछा था, तब भगवान् कृष्ण ने कहा, “जिसपर मेरी कृपा होती है, उनका धन मैं पहले ले लेता हूँ। निर्धन होने पर सांसारिक बंधनों से जुड़े हुए भाई-बंधव एवं सगे-संबंधी अपने-आप उसे छोड़ देते हैं। उसकी धन कमाने की चेष्टा भी मैं विफल कर देता हूँ। तब वह विरक्त होकर मेरी भक्ति की शरण में आता है। मेरे भक्त परमपद प्राप्त करते हैं जबकि दूसरे देवताओं की आराधना करके उन्हें शीघ्र प्रसन्न करके वर प्राप्ति के लिए मनुष्य उन देवताओं की तपस्या करते हैं और वर प्राप्त करके प्रमादी होकर धर्म-मर्यादा का नाश करने लगते हैं।”

## भस्मासुर का नाश

एक बार भगवान् शंकर शीघ्र प्रसन्न हो जाने के कारण बड़े संकट में पड़ गए। वृकासुर नाम का एक महाबली दैत्य था। उसने नारदजी के कहने से शिव को प्रसन्न करने के लिए अपना शरीर काट-काटकर अग्नि में हवन किया। छह दिन तक अग्नि को शिवजी का मुख समझकर वह अपने अंगों का हवन करता रहा, तब भी भगवान् शंकर ने उसे दर्शन नहीं दिए। उसने सातवें दिन केदार तीर्थ में स्नान करके अपने सिर पर कुल्हाड़ी चलाई, तभी भगवान् शंकर हवनकुंड से प्रकट हुए और उसे मनोवांछित वर माँगने को कहा।

वृकासुर बोला, “भगवन्, जिसके सिर पर मैं हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाए, यही वरदान आप मुझे दीजिए।” शिवजी ने ‘तथास्तु’ कहा। वृकासुर उनके ही सिर पर हाथ रखने को लपका। उसकी नीयत खराब हो गई थी। वह भगवान् शंकर को भस्म करके पार्वती को ले जाना चाहता था। भगवान् शंकर घबराकर भागने लगे। भगवान् तीनों लोकों में दौड़े पर किसीने उनकी रक्षा नहीं की। अंत में वे बैकुण्ठलोक पहुँचे। उनके संकटमोचन तो भगवान् श्री नारायण ही थे! नारायण ने देखा कि शिव भयभीत होकर उनकी शरण में आए हैं तो श्रीहरि ने ब्रह्मचारी का रूप धारण करके दैत्य से पूछा, “क्यों भाग रहे हो?” दैत्य ने शिवजी से प्राप्त वरदान की कथा सुना दी। ब्रह्मचारी जोर से हँस दिया। बोला, “असुरराज, तुमको उस योगी महादेव ने मूर्ख बना दिया है। भला वह संन्यासी किसीको कुछ देने लायक है क्या? उसे तो दक्ष ने शाप से दुर्बुद्धि बना दिया है। वह बड़ा ढोंगी है। तुम तो विद्वान् हो। तुमको वास्तविकता ही देखनी है तो अपने सिर पर रखकर देख लो! अभी झूठ का प्रमाण तुम्हें मिल जाएगा!”

दैत्य ने सचमुच अपना हाथ अपने सिर पर रख लिया और तत्काल भस्म हो गया। भगवान् शंकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। श्रीहरि ने मुसकराते हुए कहा, “महापुरुषों पर अपराध करनेवालों का नाश अवश्य हो जाता है!”

## सबसे बड़ा कौन?

एक बार सरस्वती नदी के तट पर बैठे ऋषियों में विवाद होने लगा कि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—तीनों में कौन देवता सबसे बड़ा है? तीनों की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा के पुत्र भृगुजी को नियुक्त किया गया।

भृगु सर्वप्रथम ब्रह्मलोक में पहुँचे। ब्रह्माजी ने पुत्र को देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। किंतु भृगुजी ने न तो पिता को प्रणाम किया, न स्तुति-वंदना ही की। ब्रह्मा क्रोधित हुए और बिना बोले ही मुँह फेरकर चले गए।

भृगुजी वहाँ से कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शिवजी ने भाई को देखा तो बड़ी प्रसन्नता से गले मिलने के लिए उठ खड़े हुए। किंतु भृगुजी ने उद्दंडता के साथ कहा, “तुम तो लोक एवं वेदमर्यादा का उल्लंघन करते हो। तुमसे मैं

नहीं मिलूँगा।” इस व्यवहार से शिव क्रोधित हो गए और त्रिशूल उठाकर मारने दौड़े। तब पार्वती ने उनके पैर पकड़कर उन्हें शांत किया।

अब भृगुजी वैकुण्ठधाम पहुँचे। भगवान् विष्णु शयन कर रहे थे और लक्ष्मीजी उनके चरण दबा रही थीं। भृगुजी ने जाते ही एक लात भगवान् के वक्षःस्थल पर मारी। भगवान् विष्णु एकदम उठकर खड़े हो गए। विनीत भाव से बोले, “हे देवता! वज्र समान मेरे वक्ष से आपके कोमल चरण में चोट आ गई होगी।” यह कहकर वे भृगुजी के चरण पकड़कर धीरे-धीरे सहलाने लगे। भगवान् ने ऊँचे आसन पर बैठाकर उनका आदर-सत्कार किया। विष्णु भगवान् के आचरण से भृगुजी तृप्त हुए। नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए चुपचाप वहाँ से चल दिए। ऋषिमंडली के सामने तीनों देवों की कथा विस्तारपूर्वक सुनाते हुए भृगुजी ने कहा, “भगवान् विष्णु ही सब देवों में श्रेष्ठ हैं।”



## अर्जुन का दंभ

एक बार द्वारिकापुरी में एक ब्राह्मण के यहाँ पुत्रजन्म हुआ। जन्मते ही बालक की मृत्यु हो गई। ब्राह्मण उस मृत बालक को लेकर उग्रसेन की सभा में आया और बोला, “इस समय राजा धूर्त, ब्राह्मणद्रोही एवं अकर्मण्य हो गए हैं। इसी कारण जन्म होते ही मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई। प्रजा आपके राज में सुखी नहीं है!” उस ब्राह्मण के यहाँ आठ पुत्र हुए और आठों इसी प्रकार मर गए। ब्राह्मण आठों का मृत शरीर राजसभा में लाकर राजा की भर्त्सना करता रहा। जब नौवाँ बालक हुआ और वह भी मर गया तो ब्राह्मण उसे भी राजसभा में लाया। उस समय वहाँ कृष्ण और अर्जुन भी उपस्थित थे। उन्होंने ब्राह्मण के मुख से निंदा सुनी तो उत्तेजित हो गए। अर्जुन ने कहा, “क्या द्वारिका में कोई धनुर्धारी नहीं है? सब यदुवंशी ब्राह्मण बन गए हैं! यज्ञ-पूजा में ही लगे रहते हैं? कोई ब्राह्मण के कष्ट को दूर नहीं कर सकता?” फिर अर्जुन ने ब्राह्मण से कहा, “ब्राह्मण देवता! मैं आपके पुत्र की रक्षा करूँगा। तुम इस बार अपनी पत्नी के प्रसवकाल के पूर्व ही मुझे सूचित कर देना। मैं तुम्हारे पुत्र को मरने नहीं दूँगा। यदि मैं अपना वचन पूरा नहीं कर सका तो स्वयं जलकर भस्म हो जाऊँगा।”

ब्राह्मण ने धृष्टतापूर्वक कहा, “जब श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न ही मेरे पुत्रों की रक्षा नहीं कर सके तो मैं तुम पर कैसे विश्वास करूँ।”

अर्जुन ब्राह्मण की बात से पुनः उत्तेजित होकर बोले, “मैं कृष्ण-बलराम नहीं हूँ। गांडीवधारी अर्जुन हूँ। मेरा तिरस्कार मत करो। मैंने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है।”

ब्राह्मण-पत्नी का प्रसवकाल निकट आया तो ब्राह्मण देवता ने अर्जुन से प्रार्थना की कि इस बार मेरे बच्चे को मृत्यु से बचा लो! अर्जुन ने शुद्ध जल से आचमन कर भगवान् शंकर का स्मरण किया। फिर अपनी दिव्य शक्ति का स्मरण करके गांडीव पर प्रत्यंचा चढ़ा ली और ब्राह्मण के घर पहुँचे। बाणों को मंत्रों से अभिमंत्रित करके अर्जुन ने प्रसवगृह के चारों ओर बाणों का ऐसा पिंजरा बना दिया कि वायु भी उसमें से प्रवेश न कर सके।

ब्राह्मणी ने फिर एक पुत्र को जन्म दिया। किंतु बालक रोया और देखते-ही-देखते सशरीर आकाश में जाकर अंतर्धान हो गया। ब्राह्मण बहुत ही रुष्ट हो गया। वह श्रीकृष्ण के पास जाकर अर्जुन की निंदा करते हुए बोला, “इस नपुंसक की डींग भरी बातों पर मैंने विश्वास कर लिया था। धिक्कार है इस अर्जुन को और इसके गांडीव धनुष को।” विलाप-प्रलाप करता ब्राह्मण अर्जुन की निंदा करता रहा।

इस घटना से अर्जुन स्तब्ध रह गए। वे योगबल से यमपुरी गए। यमराज के यहाँ भी ब्राह्मण पुत्र नहीं मिले। फिर अर्जुन इंद्र, अग्नि, सोम, वायु, वरुण आदि सभी की पुरियों में गए। कहीं भी अर्जुन को ब्राह्मण पुत्र नहीं मिले। अंततः प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने के कारण अर्जुन ने अग्नि में प्रवेश करने का विचार किया। तब कृष्ण ने अर्जुन को समझाया, “अपना इतना तिरस्कार मत करो, सखा। चलो, मैं दिखाता हूँ, ब्राह्मण पुत्र कहा है?”

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने रथ पर बैठाया और पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया। सात पर्वत, सात द्वीप तथा सातों समुद्रों को लाँघकर भगवान् का रथ घोर अंधकार में प्रवेश कर गया। वहाँ रथ के चारों छोड़े चारों तरफ भटकने से लगे। तब भगवान् कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र को मार्ग दिखाने के लिए छोड़ा। उस तेजस्वी चक्र की ज्योति में गतिमान होकर रथ अंधकार की सीमा के पार पहुँच गया। वहाँ दिव्य ज्योतिर्मय आभा जगमगा रही थी। अर्जुन ने अपने नेत्र बंद कर लिये तब भगवान् के रथ ने दिव्य ज्योति में प्रवेश किया। विशाल जलराशि में रथ के चलने से तरंगें उठ रही थीं। वहीं एक सुंदर भव्य महल था। उज्ज्वल ज्योति से घिरे उस मणिमय महल की ओर

देखते ही आँखें चौंधिया जाती थीं। उस महल में सहस्र सिरवाले शेष भगवान् की सुखमयी शय्या पर सर्वव्यापक परब्रह्म श्रीहरि विराजमान थे। संपूर्ण अलंकारों से सुशोभित भगवान् का स्वरूप अवर्णनीय था। पार्षद, आयुध, पुष्टि, श्री, कीर्ति, अजा आदि, चारों शक्तियाँ, संपूर्ण ऋद्धियाँ एवं ब्रह्मादि लोकपाल भगवान् की सेवा में तत्पर थे। लक्ष्मी चरण-सेवा कर रही थीं। नारद वीणा बजा रहे थे।

श्रीकृष्ण ने अपने ही स्वरूप शेषशय्याशायी भगवान् को प्रणाम किया। अर्जुन ने भी प्रणाम किया। दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए। तब भगवान् पुरुषोत्तम ने कहा, “श्रीकृष्ण-अर्जुन, तुम दोनों को देखने के लिए ही मैंने ब्राह्मण पुत्रों को अपने पास बुला लिया था। तुमने धर्म की रक्षा के लिए ही मेरी कलाओं के साथ पृथ्वी पर अवतार ग्रहण किया है। पृथ्वी के भाररूप दैत्यों का संहार करके अब तुम शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ। तुम दोनों नर और नारायण हो। धर्म का आचरण करो।”

श्रीकृष्ण-अर्जुन ने अनंत भगवान् की आज्ञा स्वीकार की। उन्हें नमस्कार किया और ब्राह्मण पुत्रों को लेकर द्वारिका लौट आए।

ब्राह्मण पुत्र अपनी वय के अनुरूप बड़े हो गए थे। ब्राह्मण उन्हें पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने सांसारिक विषयों का भोग किया। श्रेष्ठ यज्ञ किए। दैत्यों का संहार किया। बहुतों को अर्जुन द्वारा मरवा डाला और पृथ्वी पर धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य धार्मिक राजाओं से धर्म-मर्यादा की स्थापना करा दी।



# कृष्ण की गृहस्थी और उनका वंश

**श्री**कृष्ण भगवान् की द्वारिका नगरी की छटा अलौकिक थी। सौभाग्यशाली थे वे लोग, जो द्वारिका में निवास करते थे। श्रीकृष्ण भगवान् सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के साथ विहार करते थे। सुख-सुविधा से संपन्न महलों में वे रानियाँ भी भगवान् के नानाविध रूप तथा भाव में प्रेममग्न रहती थीं। उनके अनन्य प्रेम से उन्होंने परम आनंद प्राप्त कर लिया था।

श्रीकृष्ण भगवान् ने वेदोक्त धर्म का बार-बार आचरण करके संसार को दिखा दिया कि घर ही धर्म, अर्थ एवं काम-साधन का स्थान है। इसीलिए वे गृहस्थ धर्म का आश्रय लेकर व्यवहार कर रहे थे। भगवान् के पुत्र-पौत्रों की संख्या एक करोड़ से अधिक थी। उनमें से अठारह पराक्रमी पुत्र थे। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, सांब, मधु, वृषभानु, चित्रभानु, विरूप, कवि एवं न्यग्रोध आदि सभी श्रेष्ठ एवं गुणी थे। इनमें भी प्रद्युम्न सबसे श्रेष्ठ थे। उनके पौत्र एवं रुक्मी के दौहित्र अनिरुद्ध में दस हजार हाथियों का बल था। अनिरुद्ध ने नयना की पौत्री से विवाह किया था। उसके गर्भ से वज्र का जन्म हुआ। ब्राह्मणों के शाप से पैदा हुए मूसल के द्वारा जब यदुवंशियाँ का नाश हुआ तब अकेले वज्र ही बचे रहे। उन्हींसे वंश आगे बढ़ा। यदुवंश में अनेक पराक्रमी पुरुष हुए। यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अट्ठासी लाख तो आचार्य ही थे। विद्यार्थियों की संख्या तो गिनाई ही नहीं जा सकती।

भगवान् कृष्ण के अवतार लेते समय देवताओं ने भी यदुवंश में जन्म लिया था। वे एक सौ कुल थे।

भगवान् कृष्ण की लीला अति रहस्यमयी है। वे स्वयं अप्रमेय हैं। उन्होंने बलराम के साथ यदुवंश में अवतार लेकर असंख्य दैत्यों का संहार किया। पृथ्वी का भार उतारने तथा धर्म स्थापित करने के लिए ही उन्होंने यह अवतार लिया था। गीता का उपदेश देकर धर्म के गुह्यतम स्वरूप को लोक में प्रकट किया। यह सब करने के पश्चात् भगवान् कृष्ण ने विचार किया कि अब जो यदुवंशी बचे हुए हैं, वे अति उद्दंड तथा अहंकारी हो गए हैं। मेरा आश्रय पाकर ही उनमें यह भावना आ गई है। अतः स्वधाम गमन के पूर्व मुझे इनके भी अंत का उपाय करना चाहिए, तभी पृथ्वी का भार पूर्णरूपेण उतर जाएगा।

## यदुवंश के नाश का शाप

एक दिन यदुवंश के कुछ उद्दंड राजकुमार खेल-खेल में जांबवती के पुत्र सांब को स्त्रीवेश में सजाकर द्वारिका के पास बड़े-बड़े योगी-मुनि-ऋषियों के निवास क्षेत्र 'पिंडराखंड' में गए। भगवान् कृष्ण के स्वधाम जाने के पूर्व भृगु, अंगिरा, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ, नारद आदि श्रीहरि की प्रेरणा से ही वहाँ आकर निवास कर रहे थे। यदुवंशी राजकुमारों ने बनावटी नम्रतापूर्वक इन्हीं श्रेष्ठ महर्षियों के साथ उच्छृंखल व्यवहार किया। उन्होंने सुंदर युवती के रूप में सांब को उनके सन्मुख करते हुए कहा, "महामुने, यह स्त्री गर्भवती है। लज्जावश आपसे पूछने में संकोच कर रही है। यह जानना चाहती है कि इसके गर्भ में कन्या है या पुत्र?"

ऋषियों को यह उद्दंडता अच्छी नहीं लगी। वे क्षुब्ध होकर बोले, "इसके गर्भ से मूसल पैदा होगा जो तुम यदुवंशियों का विनाश कर देगा!"

यह सुनते ही सभी यादव युवक व्याकुल हो गए। लेकिन अब क्या कर सकते थे! वे अपराध-भावना के साथ राजा उग्रसेन की सभा में आए और अपना अपराध तथा ऋषियों द्वारा दिया गया शाप अद्योपांत वहाँ सुना दिया।



राजा उग्रसेन ने सांब के उदर का वस्त्र हटवाया तो चकित रह गए—वहाँ लोहे का एक मूसल चिपका हुआ था। उन्होंने उस मूसल को चूर-चूर करवाकर उसका चूर्ण समुद्र में फिंकवा दिया। थोड़ा सा चूर्ण एक मछली ने निगल लिया। एक मछुए के जाल में वह मछली फँस गई। उसके पेट से चूरा निकला। उस चूरे को एक व्याध ने अपने बाण की नोक पर लगा लिया।

नारदजी तो श्रीहरि के आसपास मँडराते ही रहते थे। एक दिन वे वसुदेवजी के पास पहुँचे। वसुदेवजी उन्हें देखकर प्रसन्न हुए। आसन देकर उनको सम्मान के साथ बैठाया और बोले, “नारदजी, मैंने भगवान् को पुत्ररूप में प्राप्त कर लिया, लेकिन मेरे मोक्ष का मार्ग कौन सा है, इससे अभी मैं अनजान ही हूँ। आप तो मुझे यह उपदेश दें कि मैं जन्म-मृत्यु के इस चक्कर से छूट जाऊँ। मेरा उद्धार हो जाए।”

नारदजी ने वसुदेवजी की भावना का आदर किया। वे आनंदमग्न होकर बोले, “भगवान् के चरित्र के श्रवणमात्र से मनुष्य का उद्धार हो जाता है। वह सबको पवित्र करता है।”

## स्वधाम गमन का निश्चय

जब नारदजी द्वारिका से चले गए तब ब्रह्मा, शिव, इंद्र आदि देवता, ऋषि-मुनिगण, गंधर्व, अप्सराएँ एवं सिद्ध-चारण-पितर सभी वहाँ आए। भगवान् कृष्ण के दर्शन कर वे स्तुति करने लगे, “हे भगवान्! हम सब मन, वचन, कर्म से आपकी प्रार्थना करते हैं। आप अपनी माया से जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करते रहते हैं। अब आपने पृथ्वी का भार उतार दिया है। धर्म की स्थापना कर दी है तथा जिस कार्य के लिए आपने कृष्णावतार धारण किया था, वह कार्य आप समाप्त कर चुके हैं। हे नारायण! हे श्रीहरि! आपने पापों का नाश करने हेतु दो पवित्र नदियाँ प्रवाहित की हैं—एक आपकी अमृतमयी कथा तथा दूसरी गंगा। इन दोनों के सेवन से मनुष्यमात्र के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अब हम आपके सेवक आपके बिना वहाँ अति दुःखी हो रहे हैं। हे नारायण! आप स्वधाम लौटकर हम सबको सुख एवं आनंद प्रदान करें।”

भगवान् कृष्ण ने गंभीर वाणी से कहा, “ब्रह्माजी, आपका कहना सत्य है, मैंने एक सौ पच्चीस वर्ष यहाँ व्यतीत किए हैं तथा कोई कार्य शेष नहीं छोड़ा है। अब ब्राह्मणों के शाप से यदुवंशियों का नाश होते ही मैं स्वधाम को आऊँगा।”

सभी ने भगवान् कृष्ण को साष्टांग प्रणाम किया और अपने-अपने लोक को चले गए।

इधर द्वारिका में अपशकुन हो रहे थे। इससे वहाँ के यदुवंशी बड़े-बूढ़े घबरा गए और भगवान् कृष्ण के पास आए। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, “ये अपशकुन एवं उत्पात ब्राह्मणों के शाप से हो रहे हैं। इनको टालना संभव नहीं है। आप लोगों को मैं यही सलाह दूँगा कि हम सबको अब यहाँ से अविलंब परमपवित्र प्रभासक्षेत्र की ओर निकल चलना चाहिए और प्राणरक्षा करनी चाहिए।”

प्रभासक्षेत्र अति पवित्र तथा श्रेष्ठ तीर्थ स्थान है। वहाँ दक्ष द्वारा शापित चंद्रमा का राजयक्ष्मा रोग भी स्नानमात्र करने से समाप्त हो गया था। हम सब उसी तीर्थ में स्नान, दान एवं पूजा-आराधना करके ब्राह्मणों को संतुष्ट करेंगे तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके संकटमुक्त हो जाएँगे।

भगवान् श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर सभी ने अपने-अपने रथ सजाए, खाने-पीने की सामग्री ली तथा कुटुंब-परिवार के साथ प्रभासक्षेत्र के लिए रवाना होने की तैयारी कर ली।

उद्धवजी ने जब यह देखा तो वे एकांत में भगवान् श्रीकृष्ण के पास आए। भगवान् के चरण पकड़कर वे दीन स्वर में बोले, “माधव, आप हमें त्यागकर न जाइए। हमको भी अपने साथ ही ले चलिए। मेरे जीवन, मेरे प्राण—सब आप ही हैं। आपके बिना इस संसार में रहकर क्या करेंगे? आपके साथ की हमको इतनी आदत पड़ गई कि

हमारे शरीर में आप आत्मारूप प्राणों में बसे हुए हैं, ऐसे में आपका क्षण भर का वियोग भी सहना संभव नहीं है। हम वहीं आपके पास रहकर आपकी सेवा, भजन-कीर्तन आपके प्रेमी भक्तों के बीच करते रहेंगे। श्रीहरि, मुझ दास को अपने चरणों में ही स्थान दीजिए।”

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी की आर्त पुकार सुनकर बोले, ‘उद्धव, मैं अग्राह्य, विलक्षण वृत्तियों द्वारा खोजने में अगम्य हूँ। ज्ञानीजन मुझे दो प्रकार से खोजते हैं—एक तो यह है कि जितनी भी बुद्धि आदि जड़ वृत्तियाँ देखने में आती हैं, वे स्वयं प्रकाशतत्त्व के बिना अपने-आप प्रकाशित नहीं हो सकतीं, इसीलिए इनको प्रकाशित करनेवाला परमात्मा है, यह अनुमान से सिद्ध किया गया है।

दूसरे, जो इंद्रियाँ चेतन होकर कार्य करती हैं। इनको चेतन करनेवाला अर्थात् प्रवर्तक यदि कोई न होता तो ये स्वयं अपना-अपना कार्य नहीं कर पातीं। अतः यह सिद्ध हुआ है कि इंद्रियों की प्रवर्तक कोई महान् शक्ति है, जिसके द्वारा सभी इंद्रियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं। इन दोनों प्रकार से मेरा अनुमान किया जाता है। उद्धवजी, आपको वह प्राचीन इतिहास ज्ञात होगा ही, अर्थात् अवधूतोपाख्यान—जिसमें दत्तात्रेय भगवान् ने राजा यदु को अपने चौबीस गुरुओं से शिक्षा ग्रहण की कथा सुनाई है।”



## दत्तात्रेय के चौबीस गुरु

**भगवान्** दत्तात्रेय ने राजा यदु को अपने चौबीस गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करके संतोषपूर्वक स्वच्छंद विचरण करते हुए प्रारब्धवश जो कुछ मिलता है, उसे ग्रहण करने की कथा कही थी।

दत्तात्रेय ने कहा था, “मेरे चौबीस गुरु—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौरा, मधुमक्खी, पिंगला वेश्या, कुरदपक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मछली तथा भृंगी कीड़ा हैं। मैं उन्हींसे शिक्षा ग्रहण करके आचरण करता हूँ। मेरे आश्रयदाता मेरे ये गुरु हैं।”

मैंने पृथ्वी से धैर्य एवं क्षमा के मार्ग पर चलने की तथा पृथ्वी के पर्वत एवं वृक्षों से दूसरों के हित फल, छाया आदि से परोपकार की शिक्षा ग्रहण की है।

प्राणवायु से मैंने यह शिक्षा ली है कि जितने आहार की आवश्यकता हो उतना ही आहार ग्रहण करके संतुष्ट रहना चाहिए। जीवन-निर्वाह हेतु जितनी जरूरत है, उतना भोजन लें। संग्रह न करें। बाहरी वायु से मैंने ग्रहण किया कि अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए भी किसीमें आसक्त न हों, न किसीके गुण-दोषों का अपने में समावेश करें। अपना मार्ग स्थिर बना रहे।

जल से मैंने शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार विशाल समुद्र का जल एक घट में रहने के कारण भिन्न प्रतीत होता है, किंतु उस घट के टूट जाने के कारण वह जल फिर जल में ही समाविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा भी अभिन्न हैं, अखंड हैं। साधक को आकाश की भाँति होना चाहिए। वर्षा, गरमी, सर्दी, प्रचंड वायु, बादल आते हैं, अनेक उपद्रव होते हुए भी आकाश अछूता ही रहता है। उसका इन उपद्रवों से कहीं, किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। इसी प्रकार प्रलय या सृष्टि होती रहती है, किंतु आत्मा का उससे कोई संबंध नहीं है। जल को ग्रहण करके साधक तृप्त एवं संतुष्ट होकर प्रसन्न होता है।

अग्नि से प्राप्त शिक्षा है—जैसे अग्नि तेजस्वी एवं ज्योतियुक्त है, उसी प्रकार साधक को तेजस्वी होना चाहिए। उसे कोई हरा नहीं सके। अग्नि काष्ठ आदि में गुप्त रूप से प्रकट रहती है। उसी तरह साधक को भी कल्याण चाहनेवालों के लिए गुप्त रूप से प्रकट होकर उनका कल्याण करना चाहिए।

चंद्रमा से मैंने शिक्षा प्राप्त की है कि चंद्रमा तो वही रहता है, उसकी कला कालानुसार घटती-बढ़ती रहती है। उसी तरह जन्म से मृत्यु तक शरीर की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, उसमें स्थित आत्मा का न कभी कुछ घटता है और न बढ़ता है।

सूर्य से यह शिक्षा पाई है कि सूर्य जल को पृथ्वी से खींच लेता है और फिर उचित समय पर बरसा देता है। उसी तरह योगी पुरुष विषयों को ग्रहण करते हैं और समय पर त्याग भी देते हैं; किंतु उनमें आसक्ति नहीं रखते। सूर्य एक होते हुए भी जल के भिन्न-भिन्न पात्रों में भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, उसी प्रकार परमात्मा एक है, लेकिन हर शरीर में आत्मा के रूप में भिन्न प्रतीत होता है।

कबूतर से मैंने शिक्षा पाई है कि कबूतर की भाँति मनुष्य को गृहस्थी में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। एक कबूतर-कबूतरी का जोड़ा था। उन दोनों में परस्पर बहुत प्रेम था। एक-दूसरे के प्रति आसक्ति थी। उनके बच्चे हुए। एक दिन अपने बच्चों को एक व्याध के जाल में फँसा देखकर कबूतरी स्नेहवश स्वयं जाल में जा गिरी। कबूतर ने जब देखा कि उसके बच्चे तथा प्रिय कबूतरी जाल में फँस गए हैं तो ‘जीवित रहकर मैं क्या करूँगा’ कहते हुए वह कबूतर भी जाल में जा गिरा। व्याध अति प्रसन्नता से जाल को समेटकर चला गया। कबूतर की तरह कामासक्त

होकर अपने प्राण नहीं त्यागने चाहिए। मनुष्ययोनि मुक्ति का द्वार है। इसमें अनासक्त भाव से ईश्वर की आराधना करके मुक्ति प्राप्त करना सरल है।

मैंने अपने गुरु अजगर से यह शिक्षा ग्रहण की कि जिस प्रकार अजगर बिना माँगे तथा चेष्टा किए प्राप्त भोगों को भोगता है, उसी प्रकार प्रारब्धानुसार जो कुछ मिल जाए, उसीमें संतुष्ट रहना चाहिए। जितना भी मिले उतने में ही निर्वाह करके शक्तिशाली बने रहना चाहिए।

मैंने समुद्र से गंभीरता एवं असीम बने रहने की शिक्षा ली है। पतंगों से शिक्षा ली है कि किसीके रूप पर या मोह में जलकर मर मिटना बुद्धि का नाश ही है। भौरों की भाँति जीवन व्यतीत करें। गृहस्थों को अधिक कष्ट न दें। संन्यासी धर्म का पालन करते हुए किसी एक घर का अन्न न खाएँ, अन्यथा उस घर के प्रति आसक्ति बढ़ जाएगी। भौरों की आसक्ति एक ही कमल में रहने से उसी कमल के प्रति हो जाती है। वह उसीमें बंद हो जाता है। अतः आसक्ति का त्याग करना चाहिए। भौरा जैसे सभी छोटे-बड़े पुष्पों से रस ग्रहण करता है, उसी तरह सभी वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों का रस रूपी सार ग्रहण करके बिना किसी झगड़े के अपने लक्ष्य पर पहुँच जाना चाहिए।

मधुमक्खी से सीखा है कि साधक को कभी संग्रह नहीं करना चाहिए। मधुमक्खी स्वयं शहद का उपभोग नहीं करती। शहद का छत्ता तो और ही कोई तोड़कर ले जाता है। संन्यासी को कभी भी जोड़कर कुछ नहीं रखना चाहिए। भिक्षा का पात्र हाथ और रखने का पात्र पेट है!

हाथी से मैंने शिक्षा प्राप्त की है कि हथिनी का संग करने के कारण वह दूसरे प्रबल हाथियों द्वारा मारा जाता है। संभोग से ही आसक्ति बढ़ती है। अतः संन्यासी को तो काष्ठ की स्त्री का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए।

मधुछत्ता तोड़कर लानेवाले भील से मैंने सीखा है कि लोभी जीवन भर धन-संचय करते रहते हैं। कोई उनका सर्वस्व चोरी करके ले जाता है। मनुष्य के संचित धन को भी प्रायः कोई दूसरा ही भोगता है। हिरण से मैंने शिक्षा प्राप्त की है कि संन्यासियों को कभी राग, गायन-वादन आदि से प्रेम नहीं करना चाहिए। हिरण व्याध की बीन सुनकर मोहित हो जाता है और अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है। उसी प्रकार संन्यासी भी संगीत से आकर्षित होकर आसक्ति में फँस जाता है। ऋष्य शृंग मुनि को स्त्रियों ने नाच-गान से मोहकर ही तपस्या से भ्रष्ट कर दिया था।

अब मछली की सीख सुनो—मांस के टुकड़े के लोभ में मछली काँटे में फँस जाती है। वह जिह्वा के वश में खाने के लोभ से ही तो मारी जाती है! इसलिए जिसने भी अपनी संपूर्ण इंद्रियाँ वश में कर लीं, लेकिन जिह्वा वश में नहीं की, वह जितेंद्रिय नहीं हो सकता। जिसने जिह्वा वश में कर ली, उसने सबकुछ वश में कर लिया।

राजन्, पिंगला वेश्या से प्राप्त शिक्षा भी सुनो। मिथिलापुरी में पिंगला नाम की अति स्वेच्छाचारिणी, रूपवती वेश्या रहती थी। वह संध्या को किसी धनिक की प्रतीक्षा में बैठती। हर आनेवाला व्यक्ति लोभ वश उसे धनिक-सा दिखाई देता, लेकिन पास आने पर वह पछताने लगती। पिंगला वेश्या ने उस धनी की प्रतीक्षा करते-करते पूरी रात्रि काट दी। सारी रात बेचैनी में गुजरी फिर भी उसका धनी प्रेमी नहीं आया तो वेश्या को इस जीवन से घृणा हो गई। उसने विचार किया 'मेरे जैसा नीच एवं घृणित कोई नहीं होगा। धन के लोभ में कितनी व्याकुल हो रही हूँ मैं? अपने-आपको लंपट पुरुषों के अधीन करके मैंने अपना जीवन नष्ट कर लिया। मुझे अब परमात्मा की आराधना करनी चाहिए, जो सदा मेरे निकट रहेगा।'

पिंगला ने धनिक के आगमन की आशा त्याग दी और अपने पलंग पर जाकर आनंदपूर्वक सो गई। उसे सुख मिला। निराशा से सदा कष्ट ही मिलता रहा। अतः आशा-निराशा दोनों को ही त्याग देना चाहिए और वैराग्य का मार्ग अपनाना चाहिए।

कुरर पक्षी की तरह मांस का टुकड़ा पकड़े रहकर अन्य बलवान् पक्षियों की चोंचों से घायल होकर कष्ट सहने

की अपेक्षा मांस का टुकड़ा फेंककर सुख की प्राप्ति का मार्ग अपनाना ही उत्तम है। मैंने सीखा है कि संग्रह कभी नहीं करना चाहिए।

बालक से मैंने शिक्षा अबोध बालक की अपनी क्रीड़ा में ही आनंदमग्न रहने की भावना से ली है। अपनी आत्मा में ही मग्न रहकर ज्ञानी पुरुष परमानंद में मग्न रहता है। मैंने कुमारी कन्या से भी शिक्षा ग्रहण की है। एक कुमारी कन्या के घर उसके वरण हेतु कुछ लोग आए हुए थे। घर के सब लोग कहीं बाहर गए थे। कन्या घर में अकेली थी, अतः स्वयं ही उनकी आवभगत करने लगी। घर में उनके भोजन के लिए वह धान कूटने लगी तो उसकी कलाई की चूड़ियों की आवाज जोर-जोर से आने लगी। कन्या ने सोचा अपनी दरिद्रता का भान इन मेहमानों को हो जाएगा। यह सोचकर उसने मात्र दो-दो चूड़ियाँ हाथ में रहने दीं, बाकी चूड़ियाँ उतार दीं, लेकिन उन दो चूड़ियों के बजने की भी आवाज आने लगी तो उसने एक-एक चूड़ी और उतार दी। अब अकेली चूड़ी होने के कारण आवाज बंद हो गई। मैंने यह सारा दृश्य देखा और उससे शिक्षा ग्रहण की कि बहुत लोग साथ रहते हैं तो कलह होता है। दो रहते हैं तब भी बातचीत होती है, इसलिए उस कुमारी कन्या की चूड़ी की तरह अकेले रहने से ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में बाधा नहीं आती।

बाण बनानेवाले से मैंने एकाग्रता सीखी है। एक बाण बनानेवाला बाण बना रहा था। राजा की सवारी वहाँ से निकल गई, किंतु वह एकाग्रचित्त से अपने काम में लगा रहा। इसी प्रकार भगवान् की एकाग्रता में तल्लीन होने की शिक्षा मैंने उससे ग्रहण की। साँप से मैंने सीख ली है कि साँप अकेला ही विचरण करता है। उसी प्रकार अकेले ही विचरण करने से किसी कर्म का बखेड़ा नहीं रहता। संन्यासी को कहीं स्थान तथा मठ बनाकर नहीं रहना चाहिए। न एक ही स्थान पर चिपके रहना चाहिए। संन्यासी किसीसे बातचीत न करे और न किसीसे सहायता ही माँगे।

मकड़ी से मैंने शिक्षा पाई कि जिस प्रकार मकड़ी स्वयं अपने मुख से धागा निकालती है, उसे फैलाती है और स्वयं ही निगल जाती है, उसी प्रकार परमात्मा भी जगत् की रचना करता है, विस्तार करता है और स्वयं अपने में लीन भी कर लेता है। मैंने भृंगी कीड़े से भी शिक्षा पाई है कि जिस प्रकार भृंगी कीड़ा किसी कीड़े को लेकर अपने बिल में जाता है तो वह कीड़ा भृंगी के भय से चिंतन करता रहता है और उसीका स्वरूप बना लेता है। उसी प्रकार मनुष्य को भी केवल भगवान् का ही चिंतन करते हुए उनके स्वरूप में तद्रूप हो जाना चाहिए।

हे राजन्! इस शरीर से मैंने ये सभी शिक्षा प्राप्त की हैं। यह शरीर नाशवान् है। आयु पूरी हो जाने पर नष्ट हो जाता है और कर्म रूपी फल जीव को दुःख सहने के लिए छोड़ जाता है। जीव की दुर्दशा है—जिह्वा स्वाद की ओर खींचती है, प्यास जल की ओर खींचती है, त्वचा कोमल शय्या की ओर और जननेंद्रिय स्त्रियों की ओर। इसी तरह सभी इंद्रियाँ अपनी-अपनी ओर खींचती हैं।

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि मृत्यु के पूर्व ही मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न करे। यह मनुष्य योनि अनित्य होते हुए भी अति उत्तम है। मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति होना चाहिए। 'अपने जीवन को मैं व्यर्थ खोने का नहीं हूँ' यही विचार करके मैंने जगत् से वैराग्य ले लिया है।

भगवान् कृष्णने उद्धवजी से कहा, "उद्धव, जिस प्रकार परमज्ञानी दत्तात्रेयजी ने इस असार जगत् से छुटकारा पा लिया है, उसी प्रकार तुम भी आसक्तियों का त्याग करके समदर्शी हो जाओ!"



## यादवों का विनाश

उद्धवजी के बदरिकाश्रम प्रस्थान के बाद सभी यदुवंशी भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार प्रभासक्षेत्र के लिए रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर सभी ने तीर्थ में स्नान किया। स्वस्तिवाचन आदि कराकर ब्राह्मणों को भोजन कराया। काल की गति एवं भगवान् कृष्ण की माया से ही ब्राह्मणों द्वारा दिए गए शाप से यदुवंशियों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उन्होंने खूब छककर मदिरापान किया। यदुवंश के नाश का समय आ गया था। गांधारी द्वारा यदुवंश के नाश के शाप को भी सत्य करना ही था। मदिरापान से यदुवंशी मतवाले हो जाने के कारण आपस में ही लड़ने लगे। वे इतने भयंकर रूप से युद्ध करने लगे मानो दूसरा महाभारत युद्ध ही हो रहा था। एक-दूसरे के प्राणों के प्यासे वे आपस में कटने-मरने लगे। भाई-बंधु, कुटुंब-परिवार, यहाँ तक कि पिता-पुत्र भी एक-दूसरे पर प्राणघातक हमला करके मारने लगे। श्रीकृष्ण की संतानें भी शाप से मुक्त नहीं थीं। प्रद्युम्न, सांब, अनिरुद्ध, सात्यकि, सुभद्र, संग्राम आदि सभी यादव एक-दूसरे से लड़ते हुए काल के आधीन हो रहे थे। श्रीकृष्ण भगवान् की माया से सभी के हृदय से भाईचारा, सौहार्द, सबकुछ समाप्त हो गए। जब अस्त्र-शस्त्र टूट गए, धनुष-बाण भी समाप्त हो गए, तब वे उस लौहचूर्ण से उगी हुई 'एरका' नामक घास को उखाड़कर उसीकी धार से एक-दूसरे को काटने-मारने लगे। विनाश काल में विपरीत बुद्धि के कारण वे श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी पर भी टूट पड़े। तब महापराक्रमी बलराम तथा श्रीकृष्ण ने भी एरका घास उखाड़कर बचे हुए आततायी यादवों का संहार कर डाला। युद्धक्षेत्र में केवल बलराम और श्रीकृष्ण ही शेष रहे।

बलराम भी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा जानकर समुद्रतट पर एकांत में जाकर बैठ गए और श्रीकृष्ण भगवान् के परमचिंतन रूपी आत्मस्वरूप में लीन होकर मानव शरीर का त्याग कर दिया।



## कृष्ण का महाप्रयाण

भगवान् कृष्ण ने जब देखा कि बलराम भी उनके स्वरूप में लीन हो गए हैं, तब वे एक पीपल के वृक्ष के नीचे जाकर शांत भाव से धरती पर बैठ गए। उन्होंने अपना चतुर्भुज स्वरूप धारण कर रखा था। तप्त स्वर्ण की भाँति उनके शरीर की काँति एवं श्याम वर्ण पर पीतांबर और संपूर्ण श्रृंगार के साथ कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स चिह्न की शोभा से विभूषित भगवान् कृष्ण ने अपना बायाँ चरण दाहिनी जाँघ पर रख लिया था। वे पीपल के तने के सहारे बैठे थे। एक व्याध ने उनके रक्तवर्ण तलुए को मृगशावक का मुँह समझकर बाण छोड़ा। बाण भगवान् के चरण में लगा। यह वही बाण था जिसकी नोंक पर मछली के पेट से निकला लौहचूर्ण लगा था। व्याध जब शिकार के पास आया तो देखा—चतुर्भुजधारी भगवान् वहाँ पर विराजमान हैं। वह ग्लानि से भर उठा और हाथ जोड़कर बारंबार प्रार्थना करने लगा, “हे प्रभु! अब दंडस्वरूप मुझे मार डालिए।”

भगवान् कृष्ण ने कहा, “तू भयभीत न हो। यह तो मेरी इच्छा से ही हुआ है। रामावतार में तुम सुग्रीव के भाई बाली थे। मैंने तुम निरपराध को बाण से मारा था। तुम मेरे परमपद को प्राप्त हो चुके थे, लेकिन उस समय शाप दिए जाने के कारण तुमने इस जन्म में व्याध बनकर मुझे मारा है। यह सुनकर व्याध को ज्ञान प्राप्त हो गया। उसने भगवान् की परिक्रमा की। तभी आकाश से एक दिव्य विमान आया। व्याध दिव्य पुरुष के रूप में उस विमान में बैठकर चला गया।”

भगवान् कृष्ण का सारथि दारुक उनके गले से गिरी वनमाला की सुगंध के सहारे भगवान् तक पहुँचा। उसने भगवान् को पृथ्वी पर बैठे देखा। रथ से उतरकर उसने प्रणाम किया। उसी क्षण भगवान् का रथ अस्त्र-शस्त्र एवं घोड़ों के साथ आकाश में उड़ गया। दारुक चकित रह गया। भगवान् ने कहा, “दारुक, तुम अब द्वारिका जाओ और मेरे माता-पिता—देवकी-वासुदेवजी, रोहिणी तथा उग्रसेन को यहाँ यदुवंश के नाश, बलरामजी के परमधामगमन एवं मेरे भी स्वधाम प्रस्थान का समाचार देना। उनसे कहना कि वे भी शीघ्र ही द्वारिका छोड़ दें और अर्जुन के साथ इंद्रप्रस्थ चले जाएँ; क्योंकि मेरे न रहने पर समुद्र द्वारिकापुरी को डुबा देगा। तुम भी आत्मज्ञान द्वारा माया से मुक्त होकर मुझमें लीन हो जाओ।”

सारथि दारुक उदास होकर द्वारिका के लिए रवाना हो गया।

उसके बाद भगवान् शिव-पार्वती, ब्रह्मा, ऋषि-महर्षि आदि सभी भगवान् के परमधाम पधारने की प्रसन्नता में कीर्तन-गान करने लगे। भगवान् पर पुष्पवर्षा होने लगी। सब विभूतियों के देखते-ही-देखते भगवान् कृष्ण ने अपने कमलनयन बंद किए और निजधाम को चले गए। कोई जान नहीं सका कि भगवान् कैसे अंतर्धान हो गए। उनके पीछे-पीछे पृथ्वीलोक से सत्य, धर्म, दया, कीर्ति, धैर्य एवं श्री—सभी ने प्रस्थान कर दिया।

जब दारुक ने द्वारिका पहुँचकर प्रभासक्षेत्र का सारा समाचार सुनाया तो सभी शोकमग्न हो गए। बलराम-श्रीकृष्ण के स्वधामगमन तथा यदुवंशियों के नाश का समाचार सुनकर वसुदेव-देवकी अत्यंत दुःखी हुए। सभी व्याकुल होकर समुद्र तट पर गए। वहाँ कृष्ण भगवान् तथा बलरामजी को न पाकर वसुदेवजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े और तत्काल प्राण त्याग दिए। स्त्रियाँ अपने-अपने पति के साथ ही चिता में प्रवेश कर गईं। कृष्ण भगवान् की वधुएँ भी चिता में भस्म हो गईं। रुक्मिणी आदि सभी रानियों ने योगाग्नि से अपने-आपको भस्म कर लिया।

भगवान् कृष्ण के परम सखा अर्जुन ने इस शोक को देखा तो उन्हें महाभारत युद्ध की याद आ गई। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का गीता उपदेश स्मरण हो आया। उन्होंने अपने-आपको सँभाला। यदुवंशियों के शवों का अंत्येष्टि संस्कार

कर विधिवत् पिंडदान किया। उसके पश्चात् अर्जुन बची-खुची स्त्रियों तथा अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ को लेकर इंद्रप्रस्थ आ गए। वहाँ आकर अर्जुन ने यदुवंश के नाश का सारा संवाद सुनाया। वज्रनाभ का राज्याभिषेक किया गया। फिर पाँचों पांडव द्रौपदी सहित हिमालय को चले गए।





# कलियुग के राजवंश

**य**दुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने परमधाम पधार गए तब पृथ्वी पर जिन वंशों का राज्य होगा, वह श्रीमद्भागवत में संक्षिप्त रूप से पूर्ववर्णित है।

जरासंध के पिता बृहद्रथ के वंश में अंतिम राजा रिपुंजय होगा। उसका मंत्री शुनक उस राजा को मार डालेगा तथा अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर देगा। इसके वंश में भी पाँच नरपति होंगे। ये एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। फिर शिशुनाग नाम का राजा होगा और इसके वंश में दस राजा होंगे। ये कलियुग में तीन सौ साठ वर्ष तक राज्य करेंगे। इनके आगे के वंश में महापद्म नंद नाम का अधिपति होगा। वह महाबली होगा तथा क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा। तभी से राजा लोग शूद्र एवं अधार्मिक हो जाएँगे।

महापद्म नंद के आठ पुत्र होंगे। वे सभी राजा होंगे और सौ वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। इन्हींके समय में 'कौटिल्य', 'वात्स्यायन' एवं 'चाणक्य' नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण नंद के इन आठों पुत्रों का नाश कर डालेगा और चंद्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर अभिषिक्त करेगा। मौर्य वंश के दस नरपति कलियुग में शासन करेंगे। फिर एक सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामी को मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। पुष्यमित्र शुंगवंश का होगा। उस वंश के भी दस नरपति राजा होंगे।

शुंगवंश का शासन समाप्त होने पर पृथ्वी का शासन कण्ववंशी ब्राह्मणों के हाथ में आ जाएगा। कण्ववंशी अपने पहले के राजाओं से कम गुणी होंगे। शुंगवंश का अंतिम राजा देवभूति लंपट होगा। कण्ववंशी वसुदेव उसे मार डालेगा और स्वयं राजा बनेगा। कण्ववंश के चार नरपति कलियुग में तीन सौ पैंतालीस वर्ष तक शासन करेंगे। अंतिम कण्व राजा सुशर्मा को एक शूद्र सेवक मार डालेगा और स्वयं शासन करेगा। उसके बाद उसका भाई शासन करेगा। ये तीसों राजा चार सौ छप्पन वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे।

इसके बाद पृथ्वी पर आभीर, गर्दभी एवं कंक राज्य करेंगे। बाद में यवन और तुर्क भी राज्य करेंगे। ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जाएगा, त्यों-त्यों सौराष्ट्र, अवंति, आभीर, हरा, अर्बुद काल आदि देशों के ब्राह्मणगण संस्कारशून्य हो जाएँगे। राजा लोग भी शूद्र तुल्य हो जाएँगे। सिंधुतट तथा चंद्रभागा का तटवर्ती प्रदेश, कौंतीपुरी एवं कश्मीर मंडल पर प्रायः शूद्रों के संस्कारवाले ब्रह्मतेज से हीन तथा नाममात्र के ब्राह्मणों और म्लेच्छों का राज्य होगा।

ये सभी दुष्ट होंगे और स्त्री, गौ, बच्चे, ब्राह्मणों को मारने में भी नहीं हिचकेंगे। दूसरों की स्त्री तथा धन लूटने में इन्हें लज्जा नहीं आएगी। इनमें परंपरागत संस्कार नहीं होंगे। राजा के वेश में म्लेच्छ ही होंगे जो लूट-खसोटकर अपनी ही प्रजा का खून चूसेंगे। अंततः ये सब-के-सब नष्ट हो जाएँगे।

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा, "समय बड़ा बलवान् है। ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जाएगा त्यों-त्यों धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, आयु, स्मरण-शक्ति सभी का लोप होता जाएगा। नीच पुरुषों की सेवा होगी। सत्यवादी एवं धार्मिक भूखों मरेंगे। जो जितना नीच होगा वह उतना ही व्यवहारकुशल माना जाएगा। ब्राह्मण नाममात्र को यज्ञोपवीत धारण करनेवाला होगा। ब्राह्मणत्व कुछ भी न होगा। ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि नाममात्र के होंगे। न्यायालयों में रिश्वत तथा धन के बल पर न्याय मिलेगा। वाचाल ही विद्वान् एवं पंडित माना जाएगा। दंभी तथा पाखंडी ही बड़ा साधु माना जाएगा। धन कमाना ही जीवन का ध्येय होगा। यश के लिए धर्म के नाम का उपयोग करेंगे। अकाल-पर-अकाल पड़ेंगे। अति वर्षा होगी तो कभी सूखा पड़ेगा। भयंकर प्राकृतिक उत्पात बढ़ जाएँगे। रोगों

से मुक्ति नहीं मिलेगी। मनुष्य की आयु कम रह जाएगी। धर्म पाखंडियों के हाथ में चला जाएगा। अतिथि-धर्म एवं वेदध्वनि कहीं सुनाई नहीं देगी। जब ऐसा समय आ जाएगा तब धर्म की रक्षा के लिए भगवान् 'कल्कि' अवतार लेंगे। उन दिनों सँभल ग्राम में विष्णुयश नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होगा। उसीके घर में भगवान् अवतार लेंगे। वे हाथ में तलवार लिये देवदत्त नामक द्रुत, गतिवान् घोड़े पर चढ़कर दुष्टों का संहार करेंगे। जिस समय सूर्य, चंद्र एवं बृहस्पति एक ही समय में पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण के प्रथम पल में प्रवेश करते हैं, उसी समय 'सत्ययुग' लग जाता है। जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर विचरण करते हैं, उस समय कलियुग का आरंभ होता है। कलियुग का प्रमाण चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है। जिस समय मघान क्षत्र से चलकर सूर्य पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में आएँगे, उस समय राजा नंद का राज्य आएगा। उसी काल से कलियुग की वृद्धि आरंभ होगी।”

मान्यता है कि भगवान् कृष्ण जिस घड़ी स्वधाम चले गए, उसी घड़ी से कलियुग का प्रारंभ हो गया है। कलियुग के व्यतीत होने पर भगवान् कल्कि अवतार लेंगे। तब मनुष्य फिर सात्त्विक वृत्ति का हो जाएगा और सत्ययुग का आरंभ होगा। भीष्म पितामह के पिता राजा शांतनु के दो भाई देवापि तथा मरू कलाषि ग्राम में निवास करते हैं। वे महान् योगी हैं। कलियुग के अंत में कल्कि भगवान् की आज्ञा से वे पुनः वर्ण-व्यवस्था का विस्तार करेंगे। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग—यही चार युग हैं, जो अपने-अपने काल में वर्तते रहते हैं। पृथ्वी को 'अपनी-अपनी' कहनेवाले राजा बनते हैं और समाप्त हो जाते हैं। सब काल के गाल में चले जाते हैं। पृथ्वी भी हँसती है कि जो राजा मृत्यु के खिलौने हैं, वही मुझे जीतने का प्रयत्न करते हैं। सभी जानते हैं कि एक-न-एक दिन मृत्यु अवश्यंभावी है, फिर भी मुझे जीतने की कामना करते हैं। ये सब नाशवान् हैं। कृष्ण भगवान् की अनन्य भक्ति मात्र परमार्थ का साधन है।

परीक्षित ने पूछा, “कलियुग में दोष-ही-दोष हैं! क्या मनुष्य इन पापों से मुक्त हो सकेगा?”

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा, “हे राजन्! कलियुग में अनेक दोष हैं, फिर भी भगवान् कृष्ण के नाम-संकीर्तन एवं श्रवणमात्र से ही सब पाप भस्म हो जाते हैं। करोड़ों जन्म-जन्मांतर के भी पाप नष्ट हो जाते हैं और सद्गति प्राप्त होती है। सत्ययुग में तपस्या से, त्रेतायुग में बड़े-बड़े यज्ञों से, द्वापर में विधिपूर्वक पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है, वही कलियुग में भगवान् कृष्ण के संकीर्तनमात्र से प्राप्त होता है।”

## प्रलय के प्रकार

कल्प अर्थात् ब्रह्माजी का एक दिन एक हजार चतुर्युगी का होता है। जब एक कल्प (ब्रह्माजी का एक दिन) व्यतीत हो जाता है, उतना ही समय—एक कल्प तक—प्रलय रहता है। उस प्रलय को ही 'ब्रह्माजी की रात्रि' कहा जाता है। कल्प में चौदह मन्वन्तर व्यतीत हो जाते हैं। प्रलय में तीनों लोक समाप्त हो जाते हैं। इस अवसर पर ब्रह्माजी सारे विश्व को समेटकर सो जाते हैं। उस समय शेषशायी नारायण भी क्षीरसागर में शयन करते हैं। रात्रि समाप्त हो जाने पर पुनः सृष्टि की रचना करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी के सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, तब ब्रह्मा स्वयं भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय महत्त्व, अहंकार एवं पंचतन मात्रा—ये सातों सत्त्व मूल प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। इसीको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं।

पृथ्वी के नीचे संकर्षण भगवान् (शेषनाग) के मुख से प्रलयकालीन अग्नि निकलने लगती है। वह पृथ्वी के नीचे के सातों लोकों को भस्म कर देती है। पृथ्वी पर प्राकृतिक प्रलय में सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होती। वृक्ष, लता तथा प्राणीमात्र जल के बिना सूख जाते हैं। सूर्य प्रचंड ताप से समुद्र एवं नदी-नाले भी सुखा देता है। सब ओर ताप-ही-ताप व्याप्त हो जाता है। फिर सैकड़ों वर्षों तक आँधी-तूफान बने रहते हैं। सारे ब्रह्मांड में जल-ही-जल भर जाता है। पृथ्वी विलीन हो जाती है। सबकुछ एक-दूसरे में मिलकर समाप्त हो जाता है। केवल प्रकृति-ही-प्रकृति अर्थात्

भगवान् की माया शेष रह जाती है। सब शून्य हो जाता है। प्रकृति एवं पुरुष—दोनों ही शक्तियाँ क्षीण होकर अपने स्वरूप में लीन हो जाती हैं। परमात्मा तत्त्व ही शेष रह जाता है।



## राजा परीक्षित की परमगति

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा, “राजन्, संपूर्ण श्रीमद्भागवत कथा में आपने बार-बार सुना है कि भगवान् कृष्ण का संकीर्तन ही परमतत्त्व है। ब्रह्मा तथा शिव भी श्रीहरि से अलग नहीं हैं। अब तुम भूल जाओ कि तुम मरोगे। शरीर का धर्म है जन्म लेना और मरना। तुमने जन्म लिया नहीं है, तुम मरोगे भी नहीं। आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। तुम आत्मा हो। वह परमात्मास्वरूप है। मन ही आत्मा के लिए अनेक शरीर, विषय एवं कर्म निर्माण करता है। वही जीव को कर्मबंधन में बाँधता है और संसारचक्र में घुमाता है। संसार के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है। आत्मा ही परमात्मा एवं अनंत है। अब तुम विवेक-बुद्धि से परमात्मा का चिंतन करो और स्वयं को परमात्मा समझो। तक्षक नाग तुम्हें डस भी लेगा तो तुम्हारा कुछ नहीं जाएगा। तुम आत्मस्वरूप में होगे। विश्व तुम्हारे में होगा। तक्षक तुम्हारे शरीरमात्र को डसेगा।”

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को भागवत-तत्त्व के सार का अमृतपान कराया। राजा अमर हो गए। उसने शुकदेवजी के चरणों में शीश झुकाकर कहा, “मैंने आपकी कृपा दृष्टि से श्रीहरिकथा का अमृतपान किया। श्रीमद्भागवत में पद-पद पर भगवान् कृष्ण की लीला एवं कथा का वर्णन सुना। आपने मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार करा दिया। मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। भगवन्, अब मुझे आज्ञा दें कि इंद्रियों को जीतकर मैं परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाऊँ।”

इतना कहकर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी की विधिवत् पूजा की। व्यासनंदन शुकदेवजी वहाँ से विदा होकर चले गए।

राजा परीक्षित ने मौन होकर नेत्र बंद कर लिये और अंतरात्मा को ब्रह्म में विलीन कर ब्रह्ममय हो गए।

शृंगी ऋषि के शाप से तक्षक नाग राजा को डसने के लिए चला। रास्ते में कश्यप नाम का ब्राह्मण मिला। ब्राह्मण सर्पविष की चिकित्सा में निपुण था। तक्षक ने ब्राह्मणवेश में जाकर कश्यप को राजा के पास जाने से रोका। तक्षक ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर वापस कर दिया। स्वयं तक्षक राजा के पास ब्राह्मणवेश में आया और उन्हें डस लिया। लेकिन राजा परीक्षित तो ब्रह्म में विलीन हो चुके थे। उनका शरीर जलकर भस्म हो गया।

### नागयज्ञ

राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने जब सुना कि तक्षक ने पिता को डस लिया है तो उसे अत्यंत क्रोध आया। उसने नागों के विनाश के लिए नागयज्ञ करने की प्रतिज्ञा की। ऋषि एवं होता एकत्रित हुए और यज्ञ प्रारंभ हुआ। असंख्य नाग प्रज्वलित अग्नि में भस्म होने लगे। तक्षक भयभीत होकर देवराज इंद्र के सिंहासन के नीचे छिपकर बैठ गया। जनमेजय ने होता से कहा, “अभी तक तक्षक आहुति द्वारा हवनकुंड में क्यों नहीं गिरा?”

होता ने कहा, “राजन्, वह इंद्रदेव की शरण में सिंहासन के नीचे बैठा है।” जनमेजय ने कहा, “इंद्र-सिंहासन के साथ ही उसे अग्निकुंड में भस्म कर दो। ऋषियों ने आह्वान किया तो इंद्र का सिंहासन हिल उठा और तक्षकसहित इंद्र भी आकाश में मँडराने लगा। गुरु बृहस्पति ने यह दृश्य देखा तो वे आकाश में ही स्थिर होकर जनमेजय से बोले, “राजन्, तक्षक अमृत पी चुका है, यह अमर है। इसे मारना उचित नहीं है। अमृत की शक्ति समाप्त हो जाएगी! शास्त्रीय मर्यादा का भी नाश होगा। प्राणी अपने कर्म के अनुसार जन्म-मृत्यु को पाता है। नागदंश आदि तो बहाना मात्र है। अब तुम नागयज्ञ बंद कर दो।”

उसी समय वासुकि के भानजे ऋषिपुत्र आस्तीक वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आते ही इंद्रसहित तक्षक को आकाश में ही रोक दिया। राजा जनमेजय ने नागयज्ञ बंद कर दिया, इससे शेष बचे नागों की रक्षा हो गई।

